दुग्ध-गंगा

पंचम अंक

2015-16

भाकृअनुप-राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान

(मान्य विश्वविद्यालय)

करनाल-132 001 (हरियाणा)

प्रथम कृषक क्षेत्र स्कूल कार्यक्रम का दिक्षान्त समारोह

डेरी मेला 2015 में पुरस्कृत गाय

RNI:HAR/H-4834/2009

दुग्ध-गंगा
2015-16

पंचम अंक

भाकृअनुप-राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान
(मान्य विश्वविद्यालय)
करनाल-132 001 (हरियाणा)

संरक्षक एवं प्रकाशक

डा. अनिल कुमार श्रीवास्तव

निदेशक एवं कुलपति

मुख्य सलाहकार

डा. रविन्द्र कुमार मलिक, संयुक्त निदेशक (अनुसन्धान)

डा. राम रण बीजय सिंह, संयुक्त निदेशक (शैक्षिक)

सलाहकार

श्री कृष्ण पाल सिंह गौतम, मुख्य प्रशासनिक अधिकारी एवं प्रभारी राजभाषा एकक

हिन्दी संपादक

श्रीमति कंचन चौधरी, तकनीकी अधिकारी

तकनीकी संपादक

डा. राकेश कुमार, वरिष्ठ वैज्ञानिक (शस्य)

डा. चन्द्र दत्त, प्रधान वैज्ञानिक (पशु पोषण)

डा. हंस राम मीणा, वरिष्ठ वैज्ञानिक (डेरी विस्तार)

डा. चित्रनायक, वरिष्ठ वैज्ञानिक (डेरी अभियांत्रिकी)

आधार टाइपिंग

श्रीमती मीरा रानी, सहायक

फोटोग्राफी

डा. गोपाल सांखला, प्रभारी संचार केन्द्र

संपर्क सूत्र : **कृष्ण पाल सिंह गौतम**, प्रभारी राजभाषा एकक
भाकृअनुप - राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल 132001
(मान्य विश्वविद्यालय)
फोन : 0184-2259045/78, फैक्स: 0184-2250646, 2272372
Website : www.ndri.res.in

इस अंक में प्रकाशित आलेखों एवं रचनाओं में
व्यक्त विचारों/आंकड़ों आदि
के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी है।

प्रकाशन वर्ष : 2015-2016

कवर फोटो : पशुशाला का एक दृष्य

Printed at : **Aaron Media**
UG-17, Sector-12, Super Mall, Karnal-132 001
M. 98964-33225

डा. ए.के. श्रीवास्तव
निदेशक एवं कुलपति

भाकृअनुप-राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान
ICAR - NATIONAL DAIRY RESEARCH INSTITUTE
(मान्य विश्वविद्यालय)
(Deemed University)
करनाल-132001, (हरियाणा) भारत
KARNAL-132001, (Haryana) India

प्राक्कथन

भारत एक कृषि प्रधान देश है। कृषि भूमि के विभिन्न उपयोगों तथा कृषकों में बंटवारे के फलस्वरूप लघु एवं सिमान्त कृषकों की संख्या में लगातार वृद्धि हो रही है। ऐसी परिस्थिति में कृषि की उत्पादकता को बनाए रखने में समन्वित कृषि प्रणाली का महत्वपूर्ण योगदान है। इस प्रणाली में कृषि फसलों के पश्चात् पशु पालन महत्वपूर्ण घटक है। साथ ही जलवायु परिवर्तन के फलस्वरूप कृषि क्षेत्र के समक्ष कई चुनौतियाँ आ खड़ी हुई हैं, जिनका समाधान समन्वित कृषि प्रणाली में निहित है। जलवायु की विपरीत परिस्थितियों में जब फसल उत्पादन कठिन होता है, पशु पालन कृषक की आय को स्थिरता प्रदान करता है। पशु पालन के विभिन्न पहलुओं में डेरी व्यवसाय उपरोक्त चुनौतियों का सामना करने में सहायक है। विभिन्न डेरी एवं पशु पालन से संबंधित संस्थान अपने अनुसंधान एवं विस्तार कार्यक्रमों के माध्यम से तकनीकी विकास एवं प्रसार द्वारा खाद्य सुरक्षा, स्वरोजगार के अवसर निर्धनता उन्नमूलन तथा आर्थिक संपन्नता के लिए निरंतर कार्य कर रहे हैं।

वैज्ञानिक और तकनिकी विचारों को सरल एवं सहज भाषा में उपलब्ध करवाने हेतु राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान की वार्षिक पत्रिका ''दुग्ध-गंगा'' के पंचम अंक वर्ष 2015-16 आपके समक्ष प्रस्तुत करते हुए मुझे अपार हर्ष का अनुभव हो रहा है, क्योंकि आज भी खेती मुख्यरूप से जीवन-निर्वाह का ज़रिया बनी हुई है तथा तकनीक आधारित समन्वित विकास एवं खेती के व्यावसायीकरण के लिए सूचनाओं की उपलब्धता महत्वपूर्ण है। वैज्ञानिक और तकनीकी विचारों को प्रसारित करने का सबसे सशक्त साधन पुस्तकें एवं शोध पत्रिकाएं हैं। मुद्रित रूप में उपलब्ध ज्ञान साहित्य न केवल पीढ़ियों तक सुरक्षित रहता है बल्कि विश्वभर के जिज्ञासुओं को तत्काल सुलभ भी होता है। भारत जैसे देश में हिंदी माध्यम से विज्ञान, तकनीकी व्यवसाय, डेरी विज्ञान, पशु-चिकित्सा विज्ञान, मौसम विज्ञान आदि विषयों पर तकनीकी साहित्य उपलब्ध होने से विभिन्न स्तर को लोगों को तकनीकी जानकारियाँ पाने एवं ग्रहण करने में आसानी होगी। मौलिक वैज्ञानिक लेखन न केवल वैज्ञानिक चिंतन, ज्ञान-विज्ञान तथा शोधकार्य को आगे बढ़ाता है बल्कि भाषा के विकास में भी महत्वपूर्ण योगदान देता है। आज कोई भी देश अपने द्वारा विकसित वैज्ञानिक ज्ञान के सहारे ही अपना सर्वांगीण विकास कर सकता है।

संस्थान के डेरी विकास कार्यक्रमों की प्रगति और सफलता में यहां के वैज्ञानिकों, छात्रों, कृषकों एवं डेरी उद्यमियों का समन्वित योगदान रहा है। कृषकों तक ज्ञान की गंगा यदि उनकी ही भाषा में पहुंचाई जाएं तो वे अधिक सरलता से वैज्ञानिक प्रौद्योगिकियों को अपना सकते हैं। इसी दिशा में **''दुग्ध-गंगा''** संस्थान का एक सफल प्रयास है जिसके प्रकाशन में संपादक मंडल के सदस्यों व राजभाषा एकक ने अथक प्रयास किया है। आशा है **''दुग्ध गंगा''** का यह पंचम अंक आप सब के लिए अत्यंत लाभाकारी व उपयोगी सिद्ध होगा क्योंकि प्रयोगशाला में विकसित तकनीकियों को सरल रूप में उपयोगकर्ताओं तक पहुँचाने में इस प्रकार के प्रकाशन महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। वर्तमान अंक हेतु प्राप्त आलेखों को विभिन्न उपखण्डों जैसे प्रसंस्करण, पशु प्रजनन एवं आनुवांशिकी, पशु पोषण, डेरी प्रबंधन, चारा एवं कृषि उत्पादन तथा विविध विषयों में बांटा गया है, जिससे कि पाठकों को विभिन्न विषयों की जानकारी सरलता से उपलब्ध हो सके। मैं उन सभी वैज्ञानिकों, विशेषज्ञों एवं सभी लेखकों को भी बधाई देता हूँ जिन्होंने अपने आलेख/शोधपत्रों को भेज कर राजभाषा (हिन्दी) के लिए अपना बहुमूल्य योगदान प्रदान किया है। प्रस्तुत अंक सबके लिए महत्वपूर्ण एवं संग्रहणीय होगा। मैं इस प्रकाशन के लिए सम्पादक मण्डल तथा राजभाषा एकक के स्टॉफ को बधाई देता हूँ जिनके सम्मिलित प्रयासों से इस अंक का प्रकाशन सफलतापूर्वक हो पाया है।

(ए.के. श्रीवास्तव)

विषय सूची

1. **राइबोफ्लेविन नामक विटामिन का उत्पादन करने वाले लैक्टोबैसिलाई की पहचान** 01
किरन ठाकुर एवं सुधीर कुमार तोमर

2. **स्वच्छ दुग्ध उत्पादन : क्यों और कैसे** 04
अनुश्री मेश्राम, पुष्पराज शिवहरे, अर्चना वर्मा, ए.के. गुप्ता एवं अजय प्रताप सिंह

3. **घी में वनस्पती तेलों की मिलावट जांच करने के तरीके** 06
अनुपमा रानी एवं विवेक शर्मा

4. **पनीर क्षेय की गुणवत्ता और उपयोगिता** 09
प्रिंयका कुमारी एवं शिल्पा विज

5. **स्वच्छ दुग्ध उत्पादन की महत्ता** 14
बी. एस. मीणा एवं गोपाल सांखला

6. **प्रायोबायोटिक किण्वित दुग्ध पदार्थों से हृदय रोगों की रोकथाम** 17
चाँद राम, सुमन कुमार एवं नरेन्द्र कुमार

7. **दूध और उत्पादों की मधुमेह प्रकार-2 के प्रबंधन में भूमिका** 21
प्रसाद पाठिल, आकांक्षा वधेरा, प्रदीप बेहरे, सुरजीत मंडल एवं सुधीर कुमार तोमर

8. **दूध जनित जूनेटिक रोग** 24
लक्ष्मी प्रियदर्शिनी एवं अंजली अग्रवाल

9. **माईक्रोवेव (सूक्ष्म तरंग) प्रसंस्करण द्वारा खाद्य सरंक्षण व पनीर की शेल्फ-लाईफ में वृद्धि** 27
चित्रनायक, मंजुनाथ एम., पी. बर्नवाल पी.एस. मिंज, अमिता वैराट एवं ए.के. सिंह

10. **कैसिइन से व्युत्पन्न जैव सक्रिय पेप्टाइड्स और उनका मानव स्वास्थ्य पर प्रभाव** 29
अलका परमार एवं राजेश कुमार

11. **कृत्रिम गर्भाधान-एक वरदान** 32
अनुश्री मेश्राम, पुष्पराज शिवहरे, अर्चना वर्मा, ए.के.गुप्ता एवं अजय प्रताप सिंह

12. **पालतु पशुओं में गर्भ निदान की विभिन्न विधियाँ** 35
आलोक कुमार यादव, अनुपमा मुखर्जी,अर्चना वर्मा एवं ए.के.गुप्ता

13. **भारत में भैसों की प्रमुख नस्लें** 37
अविनाश सिहं, आलोक कुमार यादव एवं आई.डी.गुप्ता

14. **सांड प्रबंधन एवं देखभाल संबंधी महत्वपूर्ण विवेचना** 39
विजय कुमार

15. **शुक्राणु धारिता: वीर्य उर्वरता का आधार** 41
विवेक कुमार सिहं, सुनिता मीणा, धीर सिंह तथा सुरेश कुमार अत्रेजा

16. **दुधारू पशुओं में गर्भाशयशोथ** 44
पुष्पराज शिवहरे, एम.भक्त, ए.के.गुप्ता, अनुश्री मेश्राम, एन. के. वर्मा एवं ए. के. चक्रवर्ती

17. **पशुओं में ब्रूसेल्लोसिस रोग एवं उसका प्रबंधन** 47
निशांत कुमार, सुरेन्द्र सिंह लठवाल, मिलिन रहेजा, बृजेश पटेल, वर्षा जैन एवं पूनीता कुमारी

18. **दुधारू पशुओं में दूध उत्पादकता बढ़ाने योग्य चारे एवं दाने** 49
अवनीष कुमार गौतम, संजय कुमार भारती, गौतम कुमार पंकज एवं सुदर्शन कुमार

19. **जुगाली करने वाले पशुओं के आहार में पेड़ की पत्तियों का उपयोग** 51
वीनु एम., नम्पूथीरी, मधुमोहिनी, सौरभ राजवैद्य एवं सरोबना सरकार

20. **पशुओं के आहार में नमक की आवश्यकता** 54
संजय कुमार निरंजन, पापोरी तालुकदार एवं गौतम मंडल

21. **पशुओं के लिए यूरिया शीरा-खनिज पिण्ड: एक पौष्टिक आहार** 57
अनिता मीणा, सत्यवीर सिंह, अजय वर्मा,अनुज कुमार, अनिल खिप्पल,
जितेन्द्र कुमार एवं नीतू मीणा

22. **चारा वाली फसलों में पाया जाने वाले गुणवत्तारोधी घटक** 59
पुजा गुप्ता सोनी, तारामणी यादव, गोविन्द मकराना, सौरभ कुमार, आकांक्षा टमटा एवं राकेश कुमार

23. **सूचना प्रोद्योगिकी द्वारा प्रभावी कृषि प्रसार** 61
एच.आर.मीणा, राकेश कुमार एवं सीता राम बिश्नोई

24. **भारतीय कृषि अर्थव्यवस्था में महिलाओं का योगदान** 65
सोनिका अहलावत, रेखा शर्मा एवं रीना अरोड़ा

25. **भारत के उत्तर पूर्वी राज्यों में डेरी की संभावनाएँ** 68
प्रिसीला, ए. के. चौहान एवं बुलबुल जी नगराले

26 **मृदा की घटती उर्वरता में टिकाऊ खेती के लिए उपाय** 72
बाबू लाल मीना, प्रंशनजीत रे एवं दिनेश कुमार शर्मा

27. **पौधो के लिए आवश्यक पोषक तत्वों का वर्गीकरण एवं उनकी कमी के लक्षण** 77
उत्तम कुमार, राकेश कुमार, हरदेव राम, विजेन्द्र कुमार मीना, मगन सिंह एवं राजेश कुमार मीणा

28. **बेबी कार्न की खेती, किसानों की आत्मनिर्भरता का एक उत्तम विकल्प** 82
हरदेव राम, राजेश कुमार मीणा, राकेश कुमार, मगन सिंह, उत्तम कुमार, मालू राम यादव एवं वी.के.मीणा

29. **बकरी पालन का आर्थिक महत्व** 85
आलोक कुमार यादव, अनुपमा मुखर्जी एवं अविनाश सिंह

30. **बकरी के दूध व मांस से निर्मित उत्पाद** 88
आलोक कुमार यादव, अनुपमा मुखर्जी,आई.डी.गुप्ता, ए.के.गुप्ता राज कुमार साह एवं पुष्पराज शिवहरे

31. **बकरियों में नस्ल सुधार हेतु चयन व प्रजनन पद्धतियाँ** 91
आलोक कुमार यादव, अनुपमा मुखर्जी, ए.के.गुप्ता एवं ए.के.चक्रवर्ती

32. **ऊँटनी के दूध के गुणकारी प्रभाव** 95
सुनिता मीणा, विवेक कुमार सिंह, सुमन कपिला एवं वाई.एस.राजपूत

33. **वर्तमान परिदृश्य में गधों के दूध की महत्ता : एक उपेक्षित प्रजाति को सुरक्षित करने का आधार** 97
तन्मय हजरा, पुष्प राज शिवहरे, सोनिका अलावत, रेखा शर्मा, विवेक शर्मा एवं एन.के. वर्मा

34. **एमू पालन - एक नवीन व्यवसाय** 100
अविनाश सिंह, अलोक कुमार यादव एवं आई.डी. गुप्ता

35. **मुदा एवं जल परिक्षण का कृषि में महत्व** 103
मालु राम यादव, हरदेव राम, राकेश कुमार, अविनाश गोयल, तारामणी यादव एवं महेश कुमार

36. **डेरी विकास में चरागाह घासों, वृक्षों एवं झाड़ियों का महत्त्व** 105
राकेश कुमार, बी.एस. मीणा, पुजा गुप्ता सोनी एवं सुब्रमणयम डी.जे.

37. **पशुपालन व्यवसाय में जैव सुरक्षा की भूमिका एवं महत्व** 110
स्वाति शिवानी, ऋतिका गुप्ता, मयंक गौतम, दिग्विजय सिंह, आकाश मिश्रा, खुशबु जैन एवं चन्द्र दत्त

38. **राजभाषा कार्यकलाप** 115

डेरी प्रसंस्करण ईकाई

महिला समूह को डेरी उत्पाद प्रशिक्षण

डेरी
प्रसंस्करण

तीन चरणों वाला उष्मा विनियामक

जरूरी खनिजों की उचित मात्रा उपलब्ध होते हैं। व्हेय का उपयोग त्वचा में खुजली और धूप की कालिमा के लिए एक इलाज के रूप में किया जाता है।

पनीर व्हेय का उपयोग

व्हेय एक तरल है जो दूध में विधमान आधा ठोस पदार्थ रखता है। व्हेय में निवारक और उपचारातमक तत्व मौजूद होता है जो बहुत सारी बीमारीयां जैसे गठिया, एनीमिया और जिगर की शिकायत को ठीक करने में उपयोग किया जाता है। जो लोग सक्रिय जीवन शैली में संलग्न है वो आहार में पोषक तत्वों को उचित मात्रा में चाहते हैं जिससे शारीरिक विकास अच्छे से किया जा सके। व्हेय प्रोटीन्स को खुराक में उपयुक्त संयोजन करने से मांसपेशियों की अच्छी वृद्धि में मदद करता है। कई शारीरिक परिवर्तनों, तनाव हॉर्मोन्स की रिहाई, शरीर में ऊर्जा की उपलब्धतता की कमी के कारण शारीरिक गतिविधियों पर एक चयापचय तनाव डालती है जिसके दौरान शरीर द्वारा भंडार किया गया कार्बोहाइड्रेट्स, वसा एवं कुछ डिग्री प्रोटीन्स के व्यायाम सम्बन्धी मांग को पूरा करने के लिए टूट जाती है जिसे व्हेय प्रोटीन्स की उच्च गुणवत्ता वाले प्रोटीन्स एवं शाखा श्रृंखला एमिनो एसिड जो किसी और स्त्रोत से अपेक्षाकृत अधिक अनुपात में होते है इसकी कमी को पूरा करने के लिए सक्षम है। जो लोगों जीवन शैली जैसे खिलाड़ी, पहलवान, प्रतियोगी एथलीटों, खुशी के लिए अभ्यास करने वाले व अन्य लोग जो समान प्रकार की गतिविधियों के साथ काम करते है अतिरिक्त सेलुलर द्रव से कार्बनिक और अकार्बनिक पोषक तत्वों की क्षति हो जाती है वैसे लोग सामान्यतः प्रोटीन विटामिन और खनिजों के एक स्त्रोत के रूप में व्हेय से बने खाद्य पदार्थो का उपयोग करते है।

व्हेय में विद्यमान स्वास्थ्यवर्धक घटकों को ध्यान में रखते हुए बहुत सारी दवा कंपनियों और खाद्य उद्योग ३० साल से खास ध्यान दे रहे हैं। इसके घटकों को डिजाइनर खाद्य पदार्थ बनाने में आजकल खूब उपयोग किया जा रहा है। डिजाइनर खाद्य पदार्थ वैसे खाद्य पदार्थ हैं जो किसी खास अवयवों से भरपूर होते हैं जो मनुष्यों में इसकी कमी को पूरा करने के लिए उपयोग किये जाते हैं।

व्हेय का कैंसर विरोधी प्रभाव

व्हेय प्रोटीन और पेप्टाइड्स कुछ ट्यूमर के खिलाफ कैंसर विरोधी संभावित प्रभाव दिखाता है जो अन्य आहार प्रोटीन (कैसिइन,मांस, और सोया) की तुलना में पेट के ट्यूमर के बोझ को कम करने में अधिक प्रभावी है।

मोटापा विरोधी प्रभाव

बढ़ता मोटापा दुनिया में व्यापक चिंता का विषय है। मोटापा स्लीप एपनिया, पुराने ऑस्टियोआर्थराइटिस असामान्यताएं और स्वास्थ्य संबंधी मुद्दों जो वसा कोशिकाओं के चयापचय प्रभाव के कारण होते हैं जैसे टाइप 2 मधुमेह, इंसुलिन प्रतिरोध, उच्च रक्तचाप, गैर – मादक फैटी लीवर रोग, हृदय रोग, पित्ताशय की थैली रोग और कैंसर। शरीर के वसा द्रव्यमान के घटने से स्वास्थ्य संबंधी मुद्दों को कम किया जा सकता है जो मनुष्य के वृद्धि हुई वसा द्रव्यमान के कारण होता है। व्हेय प्रोटीन शरीर की संरचना करने वाले कई हार्मोन को प्रभावित करता है। व्हेय प्रोटीन कम अवधि में शरीर की संरचना में तीव्र परिवर्तन की पुष्टि करता है। व्हेय प्रोटीन को पॉलीसिस्टिक अंडाशय सिंड्रोम (पीसीओ) के साथ अधिक वजन और मोटापे से ग्रस्त महिलाओं में मोटापे संबंधित हार्मोन पर इसके प्रभाव के लिए मूल्यांकन किया गया है। तीव्र हार्मोनल प्रतिक्रिया काफी कम ह्यपेईन्सुलिनेमा (कम लिपोजेनेसिस), कम कोर्टिसोल के स्तर (दुबला मांसपेशियों के संरक्षण) और तृप्ति वृद्धि दिखाता है।

व्हेय अपने आप में एक बेहद पौष्टिक पेय है जो, विटामिन, खनिज और प्रोटीन के बहुत सारे गुण बरकरार रखती है, लेकिन इसके स्वाद विशेष रूप से आकर्षक नहीं है जिसके कारण लोग इसे पोषक तत्वों से भरपूर होने के बावजूद भी पसंद नहीं करते हैं। व्हेय का उपयोग खाना पकाने में पानी या दूध के स्थान पर कर सकते हैं। व्हेय को क्रीम या डेयरी आधारीत सूप, करी व्यंजन और उनके सॉस के लिए एक प्राकृतिक और मितव्ययी सामग्री के रूप में इस्तेमाल किया है। इसका उपयोग विभिन्न प्रकार के सुगन्धित पेय एवं किण्वित पेय में किया जाता

राइवोफ्लेविन नामक विटामिन का उत्पादन करने वाले लैक्टोबैसिलाई की पहचान

किरन ठाकुर एवं सुधीर कुमार तोमर

सूक्ष्म जीव विज्ञान प्रभाग, भाकृअनुप - राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल - 132001

सारांश

राइवोफ्लेविन, कोशिकाय उपापचय का एक बुनियादी घटक है और सहऐनजाइमो का अग्रदूत है। राइवोफ्लेविन उत्पादन करने वाले लैक्टिक एसिड बैक्टिीरिया संभवत: महत्व के हैं एवम् किणवित खाद्य उद्योग के लिए ये बैक्टीरिया बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। राइवोफ्लेविन उत्पादन के लिए जैव प्रौद्योगिकी विधियाँ, रासायनिक विधियों का स्थान ले रही हैं। वर्तमान अध्ययन में मानव मल से निकाले गये लैक्टोबैसिलाई को राइवोफ्लेविन उत्पादन करने के लिए जाँचा गया। जाँच में उपयोग किए जाने वाले बैक्टीरिया में, लैक्टोबैसिलस फरमैन्टम और लैक्टोबैसिलस प्लानटैरम, राइवोफ्लेविन उत्पादन करने के लिए प्रमुख रूप से सक्षम पाए गए। ये बैक्टीरिया दुग्ध उद्योग में नए जामन के रूप में उपयोग होने के साथ-साथ किणवित खाद्य पदार्थों को राइवोफ्लेविन के साथ दृढ़ करने में सहायता कर सकते हैं और राइवोफ्लेविन उत्पादन करने वाले लैक्टोबैसिलाई, राइवोफ्लेविन का पोषण करने वाले लैक्टोबैसिलाई का स्थान ले सकते हैं। अत: यह प्रणाली कुपोषण से लड़ने का अव्वल समाधान है।

परिचय

लैक्टिक एसिड बैक्टीरिया, अपने किणवित गुणों के कारण दुग्ध और खाद्य पदार्थों में मुख्य रूप से उपयोग होने वाले जीवाणु हैं। इस वर्ग के साधारणतया सुरक्षित और सेहत के लिए हितकारी पाए जाने के कारण प्रोबायोटिक के रूप में इस्तेमाल होते हैं अथवा विभिन्न प्रकार के तत्वों जैसे बी विटामिन (बी 2 राइवोफ्लेविन, बी 11 सैल्सिलिक एसिड, बी 12 कोबालामिन), कम कैलोरी सुगर (मैन्निटोल, सोरबिटोल), एक्जोपोलीसेक्राइड और डाइएसि्टोल के उत्पादन में सक्षम पाए गए हैं। उपरलिखित तत्वों में से एक राइवोफ्लेविन बी 2 जो कि मानव, जीव जन्तु, पेड़ और जीवाणुओं के लिए अनिवार्य घटक हैं और कई प्रकार की शारीरिक प्रक्रियाओं में सहायक हैं। स्तनधारी जीव इसका उत्पादन नहीं कर सकते, इसलिए यह विटामिन दिन प्रतिदिन के आहार में लेना जरूरी है या अन्य किसी रूप में (2 मिली ग्राम) की मात्रा में लेना चाहिए। इसकी कमी से बालों का झड़ना, चमड़ी में सूजन और जलन, मुँह में छाले, कष्टप्रद रक्तचाप, शरीर के विभिन्न अंगों में तरल पदार्थों का जमा होना, होंठों का फटना और जीभ की सूजन इत्यादि प्रमुख हैं। यद्यपि राइवोफ्लेविन विभिन्न प्रकार के आहार (खाद्य और दुग्ध) पदार्थों में उपस्थित हैं, परन्तु इसकी कमी विश्व के अनेक भागों, विशेष रूप से विकासशील देशों में पाई जाती है। इस कमी को राइवोफ्लेविन अनुपूरक दैनिक आहार और राइवोफ्लेविन युक्त हरी सब्जियों, अन्य किणवित खाद्य पदार्थों के पोषण से पूरा किया जा सकता है। इस शोध का मुख्य उद्देश्य राइवोफ्लेविन उत्पादन करने वाले जीवाणुओं का अध्ययन और लक्षणों का वर्णन करना था।

सामग्री एवम् विधियाँ

वर्तमान शोध में तीस मानव मल के नमूने एन.डी.आर.आई., करनाल (हरियाणा) छात्रावास से एकत्रित किए गए। इन नमूनों को काँच की शीशियों में 5 मिली लीटर साधारण लवण युक्त घोल में एकत्रित किया गया और डी.मैन.रोगोसा. शॉप (एम.आर.एस.) अगार और ब्रोथ में सीरियल डाइल्यूसन के बाद 38° से. पर 24 घंटे के लिए उष्मयान किया गया। बाद में एम.आर.एस. प्लेट और ब्रोथ से जीवाणुओं की जाति और प्रजाति का वर्णन किया गया। प्रत्येक प्रयोग से पूर्व इन जीवाणुओं को दो बार एम.

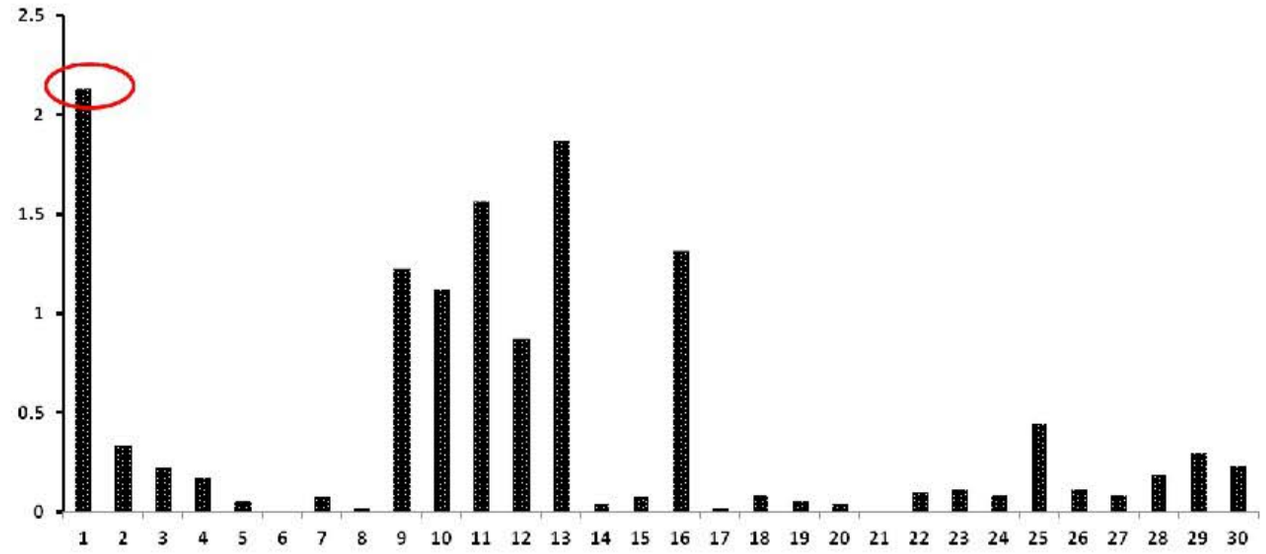

चित्र 1 विभिन्न लैक्टोबैसिलाई प्रजातियों द्वारा राइवोफ्लेविन उत्पादन मात्रा (मि.ग्रा./ली.) का आकलन।

आर.एस. ब्रोथ में उपसंवर्धि किया गया। जाति और प्रजाति के अध्ययन के बाद इन जीवाणुओं को राइवोफ्लेविन उत्पादन की क्षमता के लिए जाँचा गया।

राइवोफ्लेविन उत्पादन की जाँच

राइवोफ्लेविन एस्से

सौर एवं सहकर्मी (1996) के माध्यम से वर्णित अध्ययन की सहायता से, जीवाणुओं की राइवोफ्लेविन उत्पादन क्षमता का अनुमान लगाया गया। इस विधि में जीवाणु ब्रोथ को 800 माइक्रोलीटर 1 मोलर सोडियम हाइड्रोक्साइड में घोला गया। इस घोल में से 400 माइक्रोमीटर लेकर 0.1 मोलर पोटाशियम फास्फेट वफर (पी.एच. 6) से निष्प्रभावित किया गया और 444 नैनो मीटर एवजोरवेन्स पर प्लेट रीडर की सहायता से प्रकाशीय घन्तव को आंका गया और राइवोफ्लेविन की मात्रा को अनुमानित किया गया।

माइक्रोबाइलोजिकल एस्से

इस प्रयोग में लैक्टोबैसिलस के.जी.आई. एक्स.टी.सी. सी. 7469 को राइवोफ्लेविन आक्जोटरीम के रूप में इस्तेमाल किया गया। इसके विकास के लिए राइवोफ्लेविन एक अनिवार्य घटक है। इस प्रयोग में (राइवोफ्लेविन एस्से मिडियम) जो कि राइवोफ्लेविन रहित ब्रोथ है का इस्तेमाल किया गया। जीवाणुओं को जीन्स और प्रजाति स्तर पर जाँचने के बाद इस प्रयोग में राइवोफ्लेविन उत्पादन की क्षमता के लिए जाँचा गया। (आर.एस.एम.) 2 यू.एल. में इनौलुतम को स्पौट लगाया गया और इसके चारों तरफ मानव मल से निकाले गए जीवाणुओं के 2 यू.एल. के स्पौट लगाए गए और ओ.डी. को 0.2 पर सैट किया गया। इस तरह से हर जीवाणु को औक्ज़ोट्रोफ के स्पौट के चारों ओर स्पौट के रूप में लगाया गया और (आर.एस.एम.) प्लेटस् को 37° से. पर 24 घण्टे के लिए उल्टा करके रखा गया। राइवोफ्लेविन उत्पादन की जाँच में प्रयोग किए गए जीवाणुओं को

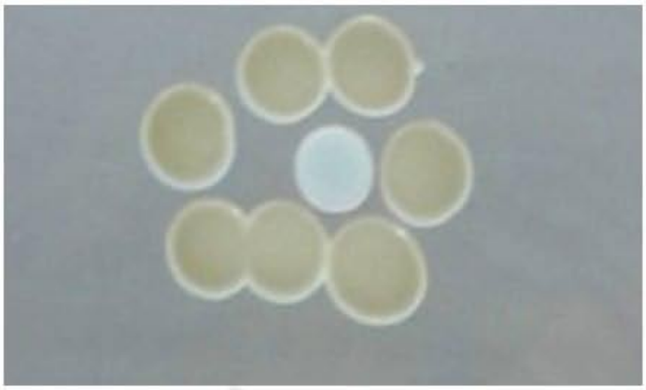

चित्र 2 : राइवोफ्लेविन उत्पादन करने वाले लैक्टोबैसिलाई की उपस्थिति में राइवोफ्लेविन आक्सोट्रोफ के विकास में वृद्धि (राइवोफ्लेविन एस्से मीडियम)।

एम.आर.एस. से निकालने के बाद 3800 ग्राम पर 10 मिनट के लिए सैन्टीफ्यूज किया गया और 3-4 बार साधारण लवणयुक्त घोल से धोया गया और ओ.डी. को (0.2) पर सैट किया गया।

टरबीडोमिटरिक प्रक्रिया को ए.ओ.ए.सी 1980 के अनुसार दोहराया गया। संक्षेप में (आई.एम.पी.)जीवाणु निलंघन को 100 एम.एल. आर.एम.एम. डाला गया। आर.ए.एम. को राइवोफ्लेविन की विभिन्न मात्रा जैसे कि (0-50 मी.ग्रा./मि.ली) से दृढ़ किया गया ताकि स्ट्रैन्डर्ड कर्व बनाया जा सके।

इस जाँच में मानव मल से निकाले जीवाणु जो कि राइवोफ्लेविन के द्वारा राइवोफ्लेविन उत्पादन के लिए जाँचे गए, उन सब को इस प्रयोग में राइवोफ्लेविन उत्पादक के लिए जाँचा गया। उन जीवाणुओं को 24 घण्टे तक ए.आर.एस. में 37° से. पर रखा गया। अंधेरे में (प्रकाश से वंचित)और उनके सुपरनेटैन्ट को 100 एम.एल. आर.ए.एम. में डाला गया और 100 एम.एल. 1 एम.एल. ए.टी.सी.सी. 7469 को इनौकुलेट किया गया। 32° सैल्सियस – 24 घण्टे पर औसोट्रौफ के विकास के लिए जाँचा गया।

परिणाम और विमर्श

मानव मल से निकाले गए जीवाणुओं में लै. फरमैन्टम और लै. प्लानटैरम मुख्य थे। इन दो प्रजाति के जीवाणुओं में से लै. फरमैन्टम ने (2.2 मि.ग्रा./ली.) की मात्रा में राइवोफ्लेविन का उत्पादन किया (चित्र 1)। जीवाणु तत्व सम्बन्धी जाँच के बाद 10 जीवाणु ऐसे पाये गये जोकि औक्जोट्रौम लै. फारमैन्टिम और 2 प्लान्टैरस के विकास को बढ़ावा दे रहे थे (चित्र 2)। इससे यह सिद्ध होता है कि राइवोफ्लेविन जोकि एमोट्रोफ के विकास में अनिवार्य घटक है, मानव मल से निकाले गए जीवाणुओं द्वारा आर.ए.एम. मीडियम में पैदा किया गया और ओक्ज़ोट्रोफ द्वारा इस्तेमाल किया गया जिसका अनुमान विकास की गति से लगाया गया।

निष्कर्ष

वर्तमान अध्ययन में लै. फरफैन्टम द्वारा अधिक मात्रा में राइवोफ्लेविन उत्पादन की क्षमता पाई गई। अत: इस जीवाणु का उपयोग विभिन्न प्रकार के दुग्ध खाद्य पदार्थों में किया जा सकता है ताकि इन पदार्थों को राइवोफ्लेविन से दृढ़ किया जा सके और साथ ही साथ इनसीटू विटामिन की दृढ़ता के अभियान की लागत को कम किया जा सकता है।

यह राइवोफ्लेविन दृढ़ता की प्रणली लगात प्रभावी होने के साथ-साथ ग्राहकों की सेहत के लिए लाभदायक है क्योंकि लैक्टोबैसिलाई मानव शरीर में नई तरह के अनिवार्य तत्वों का निर्माण करते हैं।

स्वच्छ दुग्ध उत्पादन : क्यों और कैसे

अनुश्री मेश्राम[1], पुष्पराज शिवहरे[1], अर्चना वर्मा[1], ए.के.गुप्ता[1] एवं अजय प्रताप सिंह[2]

1. पशु आनुवंशिकी एवं प्रजनन प्रभाग, भाकृअनुप - राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान करनाल - 132001
2. पशु चिकित्सक, हमीरपुर (उ. प्र.)

गांवों के अधिकतर परिवारों में दुधारू पशु पाले जाते हैं। हालांकि दुधारू पशु पालना एक बात है और स्वच्छ दुग्ध उत्पादन अलग। स्वच्छ दुग्ध उत्पादन से हम दूध को जल्दी खराब होने से बचा सकते हैं जिनका सीधा सम्बन्ध आर्थिक लाभ से है।

स्वच्छ दूध उत्पादन क्यों?

स्वच्छ दूध मानव स्वास्थ्य के लिए सुरक्षित होता है, अर्थात इसके सेवन से बीमारी का कोई खतरा नहीं रहता। दूध से फैलने वाली बिमारियों में टी.बी., टाइफाईड, पैरा टाइफाईड, अन्डूलेन्टिंग फीवर, पेचिश तथा गैस्ट्रोइन्टेराइटिस प्रमुख हैं। इनमें से कुछ के जीवाणु दुधारू पशु के थन से सीधे आ जाते हैं तथा कुछ जीवाणु वातावरण, मल अथवा मूत्र के प्रदूषण द्वारा तथा कुछ दूध निकालने वाले व्यक्ति द्वारा दूध में आते हैं।

स्वच्छ दूध क्या है?

स्वच्छ दूध का अर्थ दूध में बाहरी पदार्थो जैसे धूल, मिट्टी, गोबर, बाल, मक्खी आदि के न होने से ही नहीं बल्कि बीमारी फैलाने वाले एवं जीवाणुओं की अनुपस्थिति से भी होता है। स्वच्छ दूध उत्पादन के लिए बहुत सी बातें, जैसे स्वच्छ वातावरण व दुग्धशाला, साफ बर्तन, स्वच्छ एवं स्वस्थ पशु, स्वच्छ दूध दूहने का तरीका एवं स्वच्छ दूधिया होना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त दूध दवाईयों के बचे अंश, कीटाणुओं आदि की सुरक्षा के लिए प्रयुक्त रसायनों के अवशेष, हारमोन के अवशेष, प्रिजरवेटिव आदि से भी मुक्त हो।

दुहाई बरतन कैसा हो?

दूध दुहने का बर्तन स्टेनलेस स्टील का होना अच्छा है। अन्यथा एल्यूमीनियम या गैलवेनाइज्ड शीट का हो। पीतल और तांबे का बर्तन बिल्कुल इस्तेमाल न करें। खुली बाल्टी के स्थान

पर गुम्बदाकार छत वाली बाल्टी में दूध दुहना चाहिए, क्योंकि इसमें बाहरी गन्दगी तथा पशु के शरीर के बाल नहीं गिरते। दूध दूहने के लिए साफ बर्तन का उपयोग करना चाहिए। गन्दा बर्तन बिमारी फैलाने वाले कीटाणुओं का मुख्य स्रोत होते हैं। दूध दूहने के पश्चात बर्तन को साबुन/सोड़ा व गर्म पानी से धोना चाहिए। अगर बर्तन राख से साफ करना हो तो बर्तन को दो-तीन बार पानी से अच्छी तरह खंगाल लेना चाहिए। बर्तन को धोकर सुखाना अतिआवश्यक है। साफ बर्तन को पलट कर रखना चाहिए। हो सके तो बर्तन को तेज धूप में कम से कम तीन घंटे अवश्य रखे ताकि वह कीटाणु रहित हो जाए। बर्तन धोने के लिए साफ पानी का ही इस्तेमाल करना चाहिए।

दूध दुहने से पहले क्या करें?

- दूध दुहने से पूर्व पशु का पिछला हिस्सा अच्छी तरह रगड़कर धो लें।
- दुहने से पूर्व थनों को कीटाणुनाशक (एक बाल्टी पानी में एक चुटकी पोटेशियम परमैगनेट) घोल में स्वच्छ

कपड़ा डुबोकर पोंछ दे।

- दूध दुहते समय पशु की पूँछ पैर से बाँध दे जिससे पूँछ हिलाने से धूल, मिट्टी या गन्दगी दूध में नहीं गिरे।
- पशु के थनों का रोज निरीक्षण करें। यदि कोई दरार हो तो उसको साफ करके एन्टिसेप्टिक क्रीम लगा दें। यदि थनों में सूजन हो या मवाद अथवा खून दूध के साथ आ रहा हो तो वह थनैला रोग का सूचक है। अत: तुरन्त पशु-चिकित्सक को दिखाएं।

स्वच्छ दूध दोहन कैसे करें?

- दूध दूहने से पहले दूधिया को अपने हाथों को साबुन से अच्छी तरह साफ कर सुखा लेना चाहिए।
- हाथ के नाखून समय समय पर काटते रहे।
- स्वच्छ और कसे कपड़े पहने तथा सिर को टोपी द्वारा ढक कर रखे ताकि कोई बाल आदि दूध में न गिरे।
- दूध को 'पूर्णहस्त विधि' द्वारा दुहना चाहिए। दूध की पहली एक-दो धार को स्ट्रिप प्याले में डालना चाहिए ताकि थनैला की बीमारी का पता चल सके। प्रारम्भ के दूध को स्ट्रिप-प्याले में निकालने से जीवाणु भी थन से निकल जाते हैं और बाद में दूध जीवाणू मुक्त हो जाता है।
- दूध दुहने वाला व्यक्ति पूर्ण रूप से स्वस्थ होना चाहिए। यदि दूधिया किसी बीमारी जैसे-कालरा, टायफाईट या टी.बी. के रोग से ग्रसित हैं तो बीमारी के कीटाणु दूध द्वारा स्वस्थ व्यक्ति में भी फैल सकते हैं।

दूध संरक्षण कैसे करें?

- एल्युमीनियम या स्टेनलेस स्टील की ढक्कन वाली कैन दूध रखने एवं परिवहन के लिए अच्छी रहती है।
- दूध का बर्तन यदि ढक्कन युक्त नहीं है तो उस पर साफ कपड़ा बाँध दें ताकि दूध में धूल, मक्खी आदि न गिरे।
- दूध को सीधी धूप में नहीं रखें क्योंकि इससे दूध का स्वाद खराब होने का भय रहता है।
- दूध को ठंडा रखने के लिए बर्तन को ठंडे पानी में रखें।
- ताजा दूध को पहले से रखें दूध में नहीं मिलायें।

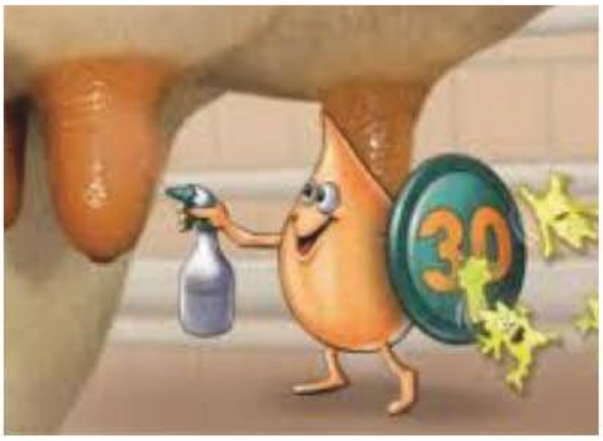

घी में वनस्पती तेलों की मिलावट जांच करने के तरीके

अनुपमा रानी एवं विवेक शर्मा

डेरी रसायन विभाग, भा.कृ.अनु.प. - राष्ट्रीय डेरी अनुसन्धान संस्थान, करनाल-132001

घी सबसे महत्त्वपूर्ण एवं शक्तिवर्धक स्वदेशी दूध उत्पाद है। वैदिक काल से ही घी का भारतीय आहार में एक महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है इसका विवरण वेदों में मिलता है। घी का उपयोग भारत के अलावा अन्य दक्षिण एशिया के देशों में भी होता है। भारत एक धार्मिक देश है जिसके सभी धार्मिक कार्यों में घी की आवश्यकता होती है। घी अन्य वसा से अधिक बेहतर होता है क्योंकि यह वसा में घुलनशील विटामिन और आवश्यक फैटी एसिड जैसे पोषक तत्वों से समृद्ध माना जाता है। अधिकतर भारतीय शाकाहारी हैं अत: उनके भोजन में घी का मुख्य स्थान है। यही कारण है कि भारत में उत्पन्न होने वाले कुल दूध का लगभग 43%भाग घी बनाने में प्रयोग होता है। यही कारण है कि भारत में गर्मी के महीनों में दूध और घी की आपूर्ती में कमी एक बहुत ही जटिलस्थिति पैदा करती है। ऐसी स्थिति का अनुचित लाभ लेने के लिए धोखाधड़ी से व्यापारी घी में अन्य सस्ता वसा/तेलों जैसे परिष्कृत वनस्पति तेल/घी, पशु शरीर वसा और तरल पैराफिन जैसे अखाद्य खनिज तेलों के साथ मिलावट करते हैं। आज के वैश्विक प्रतिस्पर्धा में दूध और दूध के उत्पादों की गुणवत्ता बनाए रखना एक विकल्प नहीं अपितु एक दायित्व है। तथापि दूध में वसा की शुद्धता ज्ञात करना एक बहुत ही जटिल कार्य है। हालांकि, घी में वनस्पति तेलों की मिलावट की पता लगाने के लिए कई तकनीकों को विकसित किया गया है। इनमें से कुछ इस प्रकार हैं :-

1. बौडोवीन टेस्ट

यह परिक्षण घी में वनस्पति घी की मिलावट ज्ञात करने के लिए किया जाता है। शुद्ध घी में वनस्पति घी की मिलावट रोकने के लिए सरकार ने वनस्पति घी के उत्पादकों में 5 प्रतिशत तिल का तेल मिलाना अनिवार्य किया हुआ हैं ताकि वनस्पति घी का देशी घी में मिलावट का पता लगाया जा सकें। हाईड्रोक्लोरिक अम्ल की उपस्थिति में सेसामोलिन (तिल के तेल में मौजूदा) के हाईड्रोक्लोरिक के द्वारा गठित सीसेम और फरफूरल के बीच की प्रतिकिया के कारण एक स्थायी क्रिमसन रंग के उत्पन्न होने पर आधारित है।

विधि (IS: 3508, 1966)

एक परखनली में 5 ग्राम संदिग्ध पिघला हुआ घी ले। इसमें 5 मिलीलिटर हाईड्रोक्लोरिक अम्ल मिलाए। तब फरफूलर रिएजेंट 0.4 मिलीलिटर डालें और परखनली को 2 मिनट तक अच्छी तरह हिलाएँ। घोल दो परतो में बंट जाएगा। घोल के नीचे वाली परत का रंग गुलाबी या लाल होना वनस्पति की उपस्थिति इंगित करता है। पुष्टिकरण के लिए, 5 मिलीलीटर पानी डालें और फिर से हिलाये। यदि रंग अम्ल परत में बना रहता है तो वनस्पति मौजूदा है। अगर रंग गायब हो जाता है, तो यह अनुपस्थित है।

2. बिडटैरो रेफ्रक्टोमीटर (बी.आर.) परिक्षण

बी.आर. परिक्षण या अपवर्तक सूचकांक की डिग्री के एक तरल या एक पारदर्शी ठोस के माध्यम से गुजर रही प्रकाश तरंगों के झुकने से संबंधित है जो कि विशेषता है। शुद्ध घी के मामले में यह गुण आसानी से 40 डिग्री सेल्सियस पर एक एब्बे रेफ्रक्टोमीटर माध्यम से निर्धारित किया जा सकता है। शुद्ध घी का बी.आर. मान या अपवर्तक सूचाकांक अन्य वसा और तेलों की तुलना में कम है। इसका मुख्य कारण घी में Glyeerides और लघु श्रृंखला फैटी एसिड की अधिक संख्या है।

विधि (IS: 3508, 1966)

बिडटैरो रेफ्रक्टोमीटर का तापमान 40 डिग्री सेल्सियस

बनाये रखे। संदिग्ध पिघालाए हुए घी की एक बूंद प्रिज्म के बीच में रखें। बी.आर. का मान तापमान बढ़ने के साथ घट जाती है। गाय एवं भैंस का बी.आर. का मान 40 डिग्री सेल्सियस पर क्रमशः 40–43 एवं 40–45 होता है। मानक मूल्य के साथ सुसंगत होना चाहिए। इसमें विचलन, विशेष रूप से वनस्पति तेल और वसा के साथ घी की मिलावट इंगित करता है।

3. थिन लेयर क्रोमैटोग्राफी (टी. एल. सी.)

कॉलेस्टेरॉल घी और शरीर के वसा का मुख्य स्टेरॉल है जबकि फाइटोस्टेरॉल वनस्पति वसा में पाया जाता है। फाइटोस्टेरॉल – बीटा साइटोस्टेरॉल, स्टिगमास्टरॉल, कम्पस्टरॉल एवं ब्रस्सिकास्टेरॉल का समूह है। इसलिए शुद्ध घी में फाइटोस्टेरॉल की उपस्थिति आदि, वनस्पति तेल से मिलावट को दर्शाता है। इसे टी.एल.सी. के द्वारा जाँचा जा सकता है। घी में सोयाबीन, सूर्यमुखी, मूंगफली इत्यादि तेलों की मिलावट को रिवर्स फेज – टी.एल.सी के द्वारा 1 प्रतिशत की भिन्नता एवं कपास के बीज के तेल की घी में मिलावट साइक्लाप्रेप्नोइक फैटी एसिड कपास के बीज के तेल में होता है जो MBRT परिक्षण में मेथाइलिन ब्लू डाई को तुरंत रंगहीन, और हालफेन रिएजेंट के साथ क्रिमसन रंग उत्पन्न करता है।

(अ) मेथाइलिन ब्लू रिडक्शन टेस्ट (MBRT)

यह परिक्षण साइक्लोप्रोपेन रिंग फैटी एसिड जैसे कि मावेलिक (C 18:1)और स्टेरकुलिक एसिड (C19:1) पर आधारित है, जो कि कपास के बीज के तेल में मौजूद होते हैं। पिघले हुए संदिग्ध घी के 5 ग्रा नमूने को एक परखनली में ले। इसमें 0.1मिलीलीटर 0.1% मेथाइलिन ब्लू डाई रिएजेंट (मेथनॉल: क्लोरोफार्म,1:1) मिलायें। परखनली को हिलायें एवं यह ध्यान रखें की घी जमना नहीं चाहिए। डाई का रगंहीन होना घी में कपास के बीज के तेल का मिलावट या कपास क्षेत्र से घी को इंगित करता है।

(ब) हालफेन परीक्षण

पिघले हुए संदिग्ध घी के 5 मिलीलीटर नमूने को एक परखनली में लें। उसमें 5 मिलीलीटर हालफेन रिएजेंट (कार्बन डाइसल्फाइड में 1: सल्फर सोल्यूशन + बराबर मात्रा आइसो एमाइल) डालें। अब इन्हें अच्छी तरह मिलायें। परखनली को उबलते हुए संतृप्त सोडियम क्लोराइड के सोल्यूशन में 1 घंटा के लिए रख दें। क्रिमसन रंग की उपस्थिति घी में कपास के बीज के तेल का मिलावट या कपास क्षेत्र से घी को इंगित करता है।

4. फाइटोस्टेराइल एसीटेट परिक्षण (IS: 3508, 1966)

इस परिक्षण को घी में वनस्पति वसा का पता लगाने के लिए विशेष रूप से किया जाता है। घी में कोलेस्ट्रॉल होता है जबकि सभी वनस्पति तेलों में फाइटोस्टेरॉल होते हैं इस तथ्य पर यह परिक्षण आधारित है।

फाइटोस्टेरॉल एसीटेट के गलनांक को ज्ञात करने के लिए घी के नमूने को पहले सपोनिफाइ करें। उसके बाद उसमें अल्कोहलिक डिजिटोनिनघोल डाल कर प्रेसिपिटेट करें। स्टेरॉल डिजिटोनिन प्रेसिपिटेट को एसिटिक एनहाइड्रीड के साथ एसिटाईलेट करें व सुखा लें। यदि स्टेराइल एसीटेट का गलनांक 115 डिग्री सेलसियस हो तो घी को शुद्ध माना जाता है, पर यदि स्टेराइल एसीटेट का गलनांक 117 डिग्री सेलसियस से अधिक हो तो घी में वनस्पति तेल की मिलावट मानी जाएगी।

5. मॉडिफाइड बीबर परीक्षण

इस परीक्षण के द्वारा शुद्ध घी में वनस्पति तेल की मिलावट को 5–7 प्रतिशत की दर तक ज्ञात कर सकते हैं।

विधि

एक परखनली में 1 मिलीलीटर संदिग्ध घी के नमूने को ले। उसमें 1.5 मिलीलीटर हेक्सेन मिलायें। फिर अम्ल रिएजेंट मिलाये और अच्छी तरह परखनली को हिलायें उसमें 1.5 मिलीलीटर हेक्सेन मिलाये। रंग विकसित होने के लिए कुछ देर

तक परखनली को छोड़ दें। घोल में दो परत बन जाएँगी। शुद्ध घी का ऊपरी परत रंगहीन होता है जबकि वनस्पति तेल से मिलावट वाले नमूने की ऊपरी परत में सुनहरा पीला रंग विकसित होता है।

निष्कर्ष

साहित्य की समीक्षा के आधार पर, निष्कर्ष निकाला जा सकता कि बौडोवीन टेस्ट, बी.आर., थिन लेयर क्रोमैटोग्राफी, मेथाइलिन ब्लू रिडक्शन टेस्ट, हालफेन परिक्षण, फाइटोस्टेराइल एसीटेट परिक्षण, मॉडिफाइड बीबर परिक्षण आदि घी में विदेशी वसा का उपस्थिति का पता लगाने के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है। रिवर्स फेज – टी.एल.सी के द्वारा मिलावट को न्यूनतम दर तक पता लगाया जा सकता है जबकि मॉडोफाइड बीबर परिक्षण कम समय लेता है। भविष्य में मिलावट को रोकने के लिए और अच्छे एवं कारगर तरीके जो कम समय ले और कम से कम मिलावट दर को जाँच सके विकसित किये जा सकते हैं।

पनीर व्हेय की गुणवत्ता और उपयोगिता

प्रियंका कुमारी एवं शिल्पा विज

डेरी सूक्ष्मजीव विज्ञान विभाग, भाकृअनुप - राष्ट्रीय डेरी अनुसन्धान संस्थान, करनाल-132001

पनीर व्हेय

पनीर बनाने के दौरान पनीर अलग करने के बाद बचे हुए पीले रंग के तरल को व्हेय करते है। व्हेय के बारे में ३००० साल पहले खोज की गयी थी। इसे एक औषधीय एजेंट के रूप में महत्वपूर्ण होने के वाबजूद भी १७ वीं और १८ वीं शताब्दी में व्हेय मुख्य रूप से डेयरी उद्योग द्वारा बेकार माना जाता था। शुरू में इसे नाली में बहा दिया जाता था और इसका कोई उपयोग नही होता था। इसे नाली में बहाने से पर्यावरण प्रदुषण का खतरा रहता था। अत: प्रदुषण के खतरे को कम करने के लिए २० वीं सदी में विनियमन अधिनियम अनुपचारित व्हेय के निपटान को रोका और इसी समय व्हेय घटकों के मूल्य की मान्यता त्वरित हुई। व्हेय से वाणिज्यिक उत्पादों को बनाने के लिए उपयोग किया जाने लगा। लेकिन आजकल इसका उपयोग खाद्य परिशिष्ट के रूप में होता है क्योंकि इसमें अनमोल पोषक तत्वों जैसे लैक्टोज व्हेय प्रोटीन्स खनिज एवं विटामिन्स प्रचुर मात्रा में रहते हैं, जिसमें इसके अतिरिक्त थोड़ी मात्रा में वसा भी रहते है। विश्व स्तर पर कुल १०० मिलियन टन से ज्यादा व्हेय का उत्पादन होता है जिसमें ५ मिलियन टन भारत में होता है। व्हेय विभिन्न पोषक तत्वों का साधन है। व्हेय भोजन तैयार करने के कई अलग अलग प्रकार में उपयोग के लिए पाउडर और तरल दोनों रूपों में उपलब्ध है।

व्हेय उच्च गुणवत्ता और जैविक रूप से सक्रिय प्रोटिन, कार्बोहाइड्रेट और खनिजों का एक विश्वसनीय स्रोत है। व्हेय प्रोटीन खाद्य और कृषि संगठन / विश्व स्वास्थ्य संगठन (एफएओ / डब्ल्यूएचओ) द्वारा निर्धारित एक एमिनो एसिड प्रोफाइल रखता है जो सभी आवश्यक अमीनो एसिड की आवश्यकताओं को पूरा करता है और आसानी से पच जाता है। व्हेय प्रोटीन दूध में विद्यमान प्रोटीन्स का २०% होता है जो बहुत ही पौष्टिक होता है । साथ ही ये आवश्यक एमिनो एसिड्स का भी एक अच्छा साधन है। व्हेय में मौजूदा एमिनो एसिड बहुत ही लाभकारी भूमिका निभाता है। ये मुख्यत: एलर्जी के खिलाफ लड़ता है।

व्हेय प्रोटीन जैविक कार्यो से जुड़े हुए कार्यात्मक और पोषण संबंधी विशेषता रखते हैं क्योंकि इसमें A-लैटल्गुमिन, B-लैक्टोग्लॉग्युलिन, इम्युनोग्लोबुलिन, गोजातीय सीरम एल्बुमिन, लैक्टोफेरिन, लक्टोपेरोक्सिडेस, ग्ल्यकोमक्रोपेप्टिड विधमान होते हैं जो विभिन्न प्रकार के जैविक - कार्य में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

B-लैक्टोग्लॉब्युलिन

B- लैक्टोग्लॉब्युलिन कुल व्हेय प्रोटीन का लगभग ७०%है। यह प्रोटीन की परिणामों के रूप में खनिजों के लिए कई बाध्यकारी साइटों को रखते है जो मिनरल्स, वसा में घुलनशील विटामिन और लिपिड को बाँध कर रखते हैं। यह वांछनीय वसारागी यौगिकों जैसे टोकोफेरॉल और विटामिन के लिए एक से परिवहन प्रोटीन के रूप में काम करता है।

B- लैक्टोग्लॉब्युलिन में संशोधन के परिणाम स्वरूप, इम्मुनोडेफिसिएंट मानव में वायरस प्रकार 1 और 2 के खिलाफ मजबूत एंटीवायरल गतिविधि होती है।

A-लैटल्बुमिन

A- लैटल्बुमिन कुल व्हेय प्रोटीन की २७ % हैं। इस प्रोटीन एक उत्कृष्ट अमीनो एसिड प्रोफाइल लाइसिन, लेउसीन, थ्रेओनीन , नियासिन और सीस्टीन में समृद्ध है , A- लैटल्बुमिन की मुख्य ज्ञात जैविक समारोह में स्तन ग्रंथि में लैक्टोज के संश्लेषण है । इसके अलावा इस प्रोटीन को दृढ़ता से उपयोग मानवीय दूध " शिशु फार्मूले " या अन्य उत्पादों को बनाने के लिए किया जाता है। ये प्रतिबंधित प्रोटीन सेवन करने वाले लोगों के लिए भी लाभकारी है। A- लैटल्बुमिन कैंसर के कई अलग अलग प्रकार में एक कैंसर विरोधी एजेंट के रूप में प्रभावी है।

इम्युनोग्लोबुलिन

इम्युनोग्लोबुलिन प्रोटीन का एक जटिल समूह है जो प्रोटीन सामग्री महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है साथ ही प्रतिरक्षा विज्ञानी कार्यों को करता है। यह एक अच्छी तरह से पहचानी हुई प्रणाली है जो नवजात शिशुओं को निष्क्रिय प्रतिरोधक क्षमता के माध्यम से बीमारी संरक्षण प्रदान करने के लिए मान्यता प्राप्त है। साथ ही वयस्कों में भी रोग के नियंत्रण के लिए अहम योगदान देता है और इम्युनोग्लोबुलिन ई कोलाई ९९ के लिए पर्याप्त होता है। गोजातीय सीरम एल्बुमिन (बीएसए) आवश्यक अमीनो एसिड का एक अच्छा प्रोफाइल है। बीएसए फैटी एसिड, अन्य लिपिड और स्वाद यौगिकों को बांधता है। बीएसए का प्राथमिक कार्य लिपिड बंधन के साथ संबंध किया गया है। ये लिपिड ऑक्सीकरण में एक मध्यस्थत भूमिका निभाता है। विकृत बीएसए व्यक्ति की इंसुलिन निर्भर मधुमेह या ऑटो इम्यून बीमारी के रूप में कुछ ऐसे बीमारियों की संभावना को कम करता है।

लैक्टोफेरीन

लैक्टोफेरीन एक लोहे की बाध्यकारी प्रोटीन होता है और यह एक रोगाणुरोधी एजेंट के रूप में कार्य करता है। इसकी अन्य शारीरिक और जैविक कार्यों में संभावित क्षमता है। जैविक गतिविधियों में लैक्टोफेरीन की भूमिका लोहे परिवहन, रोगाणुरोधी गतिविधि, एंटीवायरल गतिविधि, विष बाध्यकारी गुण, इम्युनोमोडुलेटिंग प्रभाव और घाव भरना शामिल है।

लक्टोपेरोक्सिडेस

लैक्टोपेरोक्सिडेस की दूध, लार और आँसू में एक रोगाणुरोधी एजेंट के रूप में पहचान की गई है। लक्टोपेरोक्सिडेस प्रणाली, सूक्ष्म जीवाणुओं की एक विस्तृत विविधता के लिए जीवाणुनाशक और बैक्टीरियोस्टेटिक दोनों का सिद्ध किया है और इसका जीवों से उत्पादित प्रोटीन और एंजाइमों पर कोई प्रभाव नहीं होता है। नैदानिक अध्ययन में पट्टिका संचय, मसूडे की सूजन और जल्दी जल्दी शुरू होने वाले को उपयुक्त लक्टोपेरोक्सिडेस तैयारी से कम किया जा सकता है।

ग्ल्यकोमक्रोपेप्टिड

ग्ल्यकोमक्रोपेप्टिड (जीएमपी) एवं कसेंओमेरोपेप्टिड (सीएमपी) ग्लाइकोसिलेटेड के भाग है। जीएमपी या इससे व्युत्पन्न पेप्टाइड्स को कई जैविक और शारीरिक कार्यों के लिए जिम्मेदार माना गया है जैसे : गैस्ट्रिक स्त्राव में कमी, दंत पटिट्का और दंतशय निषेदध, बिफिडोबैक्टेरिअ के लिए विकास को बढावा देने की गतिविधी, फेनिलकेतुनोरिआ के उत्पादन को नियंत्रण के लिए, प्लेटलेट एकत्रीकरण आदि। जीएमपी अग्नाशय हार्मोन कोलेस्ट्यॉकिनीं (CCK) से भूख को दबाने में मदद मिलती है। यह मेलनॉइट्स में वर्णक उत्पादन, प्रेबिओटिक और इम्मुनोमोडुलतोरय के रूप में कार्य करता है। जीएमपी की शारीरिक गतिविधि अपने ग्लाइकोसिलेशन पर निर्भर करता है।

लैक्टोज

लैक्टोज व्हेय में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होता है। लैक्टोज का उपापचय आहारनाल में बहुत धीरे धीरे होता है इसके कारण ये बड़ी आंत तक पहुँचता है और वहां पर विधमान लाभकारी बैक्टीरिया जो लैक्टिक एसिड का उत्पादन करते हैं एवं उसके विकास को बढ़ाता है। लैक्टिक एसिड व्हेय में एक स्वाद देता है और साथ ही बहुत सारे रोगाजनक नुकसानदायक जीवों को नष्ट करने की क्षमता रखता है। लैक्टोज बैक्टीरिया के पोषण गुण को बढ़ाते है और किण्वन के दौरान रोगाणुरोधी पदार्थ बनता हैं जो गैस्ट्रो आंत्र सम्बन्धी बिमारियों को ठीक करने की क्षमता रखते हैं। लैक्टोज कैल्शियम मैग्नीशियम और फॉस्फेट के अवशोषण को बढ़ाता है ये खनिज हड्डियों के लिए बहुत जरूरी होता है।

खनिज

व्हेय में इलेक्ट्रोलाइट्स (खनिज) उपलब्ध होते हैं जो इसे एक स्वास्थ्य वर्धक पेय बनाता है इसकी पोषक तत्व मानव आवश्यकताओं में अनिवार्य भूमिका निभाते हैं। दस्त होने पर खनिजों की कमी हो जाती है इस परिस्थिति में व्हेय ओ आर एस (मौखिक पुनर्जलीकरण समाधान) की तरह खनिजों की क्षतिपूर्ति के लिए उपयोग किया जाता है क्योंकि व्हेय में सारे

है। सुगन्धित पेय बनाने के लिए फलों के रस, फलों के गूदे आदि का उपयोग किया जाता है जिसके कारण व्हेय की उपयोगिता और बढ़ जाती है साथ ही स्वाद भी अच्छा हो जाता है। प्रोटीन शेक बनाने में व्हेय को तरल के हिस्से के रूप में जोड़ सकते हैं।

व्हेय ड्रिंक (व्हेवित या असिदोही)

आजकल बहुत तरह के पेय जैसे सादा, कार्बोनेटेड अल्कोहलिक एवं फलों के स्वाद वाला व्हेय आधारित पेय उपलब्ध है। इस तरह पेय व्हेय में मौजूदा ठोस पदार्थ को उपयोग करने का बहुत ही अच्छा साधन है। यह एक ताजगी प्रदान करने वाले एजेंट की तरह काम करता है। भारत में मुख्यत: व्हेवित या असिदोही कम मूल्य पर उपलब्ध पेय है, व्हेवित नारंगी, अनानास, नींबू और आम के स्वाद का एक उत्तम पेय है जो व्हेय से बनाया जाता है। सबसे पहले इसे राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान करनाल में १९७५ में बनाया गया था। यह एक बहुत ही पौष्टिक पेय है। ये बहुत सारे व्याधियों को ठीक करने की क्षमता रखता है। इसे घर पर भी बना सकते हैं।

बनाने की विधि

ताजा व्हेय लें, इसे उच्च तापमान पर गर्म करें और उसके बाद कमरे के तापमान तक ठंडा कर लें। इसे साफ कपड़े से छान लें और इसमें चीनी डालें साथ ही १०% के सिट्रिक एसिड २% की दर से मिलाएं। फ्रीज में ठंड़ा करें और इसे एक रिफ्रेसिंग एजेंट की तरह उपयोग करें।

फल पेय के लिए आधार के रूप में व्हेय का उपयोग

विभिन्न प्रकार के फलों के गूदे तथा रसों को फल आधारित व्हेय पेय बनाने के लिए उपयोग किया जाता है जो बहुत ही स्वास्थ्यवर्धक होता है। आम सभी जगह पाया जाने वाला फल है जो पोषक तत्वों से भरपूर है। आम विटामिन A , पोटैशियम एवं बीटा कैरोटीन का बहुत अच्छा स्रोत है। आम में फाइबर उच्च मात्रा में और कम कैलोरी (औसत आकार के प्रति आम लगभग 110) होती है। वसा और सोडियम भी उपलब्ध रहता है और जब इसके गूदे को व्हेय में मिलाया जाता है तो दोनों का गुण मिलकर इसे और गुणकारी बना देता है।

आम आधारित व्हेय पेय बनाने की विधि

१ लीटर पनीर व्हेय में १०० ग्राम चीनी मिलाकर छान लें, इसके बाद ३०० ग्राम आम के गूदे को अच्छी तरह से मिलाएं और इसे बोतल में भरकर स्टर्लाइज्ड़ करें फिर ठंडा कर के फ्रीज में रख दें और इसे प्यास शमन की तरह उपयोग करें यह एक बहुत ही गुणकारी पेय है जो शरीर को तुरंत ऊर्जा देता है। एथलीट सामान्यत: नींबू और अनानास आधारित व्हेय पेय का उपयोग करते हैं।

पनीर व्हेय आधारित सूप

सूप एक क्षुधावर्धक की तरह काम करता है जिससे, लोग अक्सर खाने के पहले लेते हैं, जिसके कारण गैस्ट्रिक एंजाइमों का स्त्राव होता है और तेज भूख महसूस होती है। बाजार में बहुत तरह के तैयार सूप मिश्रण उपलब्ध हैं जो उपभोक्ताओं के तालू के लिए सूट करता है लेकिन इसमें रासायनिक योजक होने के कारण प्राय: यह बच्चों के लिए हानिकारक होता है। इसके अलावा न ही ये गुणवत्ता और पोषक तत्व प्रदान करते है जो व्हेय आधारित सूप से मिलता है।

व्हेय आधारित टमाटर सूप बनाने की विधि

टमाटर को कूकर में पका कर अच्छी तरह से मिला लें प्याज अदरक और लहसुन को तेल में तल लें और इसमें मकई का आटा मिला कर 2 मिनट तक पकाएं। इसके बाद इसमें पनीर व्हेय डाल कर अच्छी तरह मिला लें, स्वादानुसार नमक डाल कर 2 मिनट और पकाएं।

किण्वित व्हेय पेय पदार्थ

किण्वन खाद्य पदार्थों को संरक्षित करने का सबसे पुराना तरीका है और यह खाद्य पदार्थों को और भी पोषक एवं स्वादिष्ट बना देता है। पहले व्हेय का उपयोग पीलिया, त्वचा के संक्रमण, सूजन और मिर्गी के उपचार के लिए किया जाता था। व्हेय में विधमान पोषक तत्वों और स्वास्थ्य संबंधी गुण को देखते हुए इसे और ज्यादा गुणकारी एवं स्वादिष्ट बनाने के लिए किण्वित किया

जाता है। जिससे इसके प्रोटीन्स छोटे-छोटे टुकड़े तथा स्वतंत्र एमिनो एसिड्स में टूट जाते हैं जिसके कारण इसकी गुणवत्ता और बढ़ जाती है।

किण्वित व्हेय बनाने की विधि

सबसे पहले ताजे पनीर व्हेय कमरे के तापमान (27 डिग्री सेल्सियस) तक ठंडा करते हैं। किण्वन के लिए इसमें दही कल्चर (बैक्टीरिया या खमीर)डालते हैं और 8 घंटे के लिए इसे इंक्युबएट करते हैं फिर, फ्रीज में ठंडा करके वितरित करते हैं।

किण्वित पनीर व्हेय के पोषक मूल्य

- किण्वित व्हेय ज्यादा पौष्टिक होता है क्यूंकि किण्वन से बड़े अवयव छोटे छोटे अवयव में टूट जाते है जिससे ये आसानी से पच जाते हैं अवशोषित हो जाते हैं।
- पानी में घुलनशील सारे विटामिन्स और पिगमेंट्स किण्वित व्हेय में मौजूद रहतें हैं।
- यह कढ़ी के लिए एक उत्कृष्ट आधार सामग्री है क्यूंकि ये उच्च पोषक मूल्य रखते हैं।

स्वच्छ दुग्ध उत्पादन की महत्ता

बी. एस. मीणा एवं गोपाल साखंला

डेरी विस्तार प्रभाग, भाकृअनुप - राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल-132001

दूध एक अमृत तुल्य खाद्य पदार्थ है जो मानव जाति के लिये ईश्वर प्रदत्त एक वरदान है। दूध पोषक गुणों से भरपूर स्वास्थ्य निधि को सुरक्षित रखने वाला महत्वपूर्ण खाद्य पदार्थ है। न केवल मनुष्य, बल्कि अन्य प्राणी भी अपने नवजात शिशु के आगमन पर उसका स्वागत दूध से ही करते हैं। दूध की गुणवत्ता आदि काल से हमारे वेदों पुराणों में वर्णित है। हमारी सभ्यता, संस्कृति में दुग्ध उत्पादन और पशुपालन रचा बसा है। आज के परिवेश में भी दुग्ध उत्पादन बढ़ाने के प्रयास, दुग्ध क्रान्ति लाने के प्रयास व्यापक स्तर पर किये जा रहे हैं और इन व्यापक प्रयासों के सुखद परिणाम यह रहे हैं कि आज दुग्ध उप्पादन के क्षेत्र में भारत की यश पताका सबसे आगे फहरा रही है। वार्षिक दुग्ध उत्पादन 141 मिलियन टन के स्तर तक पहुँच चुका है।

यद्यपि बढ़ता दुग्ध उत्पादन प्रसन्नता का विषय है, परन्तु दूध एक ऐसा खाद्य पदार्थ है कि यदि दुग्ध उत्पादन के दौरान स्वच्छता का ध्यान न रखा जाये तो स्वास्थ्य के लिए घातक हो जाता है और बीमारियों का एक कारण भी। विश्व दुग्ध बाजार में अपनी प्रभुता बनाये रखने के लिये श्रेष्ठ गुणवत्ता वाला तथा स्वच्छ दुग्ध उत्पादन एक अनिवार्यता है। विशेष रूप से विश्व व्यापार संगठनों के मानकों के अनुरूप दुग्ध और दुग्ध उत्पादों को खरा उतारने के लिये भारत को अच्छी गुणवत्ता वाले दुग्ध और दुग्ध उत्पादन पर अपना लक्ष्य केन्द्रित करना होगा। यह दुर्भाग्य पूर्ण ही है कि दुग्ध की सूक्ष्मजीवाणुविक गुणवत्ता में अभी भी कोई खास सुधार नहीं आया है, क्योंकि ग्राम स्तर पर दुग्ध उत्पादन के दौरान पूर्ण साफ सफाई की समुचित व्यवस्था का ध्यान नहीं रखा जाता है। स्वच्छ दुग्ध उत्पादन बनाने के लिये फार्म स्तर पर अरोग्यकारी में आने से प्रदूषित हो जाता है, अत: फार्म स्तर पर दुग्ध की स्वच्छता, गुणवत्ता बनाये रखने वाले उपाय अपनाने चाहिये। दूध की संघटनात्मक गुणवत्ता तो पशु की खिलाई-पिलाई, प्रबन्ध, आनुवंशिक, प्रजनन इत्यादि पर निर्भर करती है।

हमारे देश में दूध में जीवाणुविक संख्या स्वीकृत सीमाओं से ज्यादा होती है। इसका मुख्य कारण फार्म पर सफाई का न होना, दूध के बर्तनों का साफ सुथरा एवं दोहक का साफ न रहना। दोहन का अनुचित तरीका तथा बीमारी और खराब संग्रहण व्यवस्था का होना है। इस सम्बन्ध में राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान में कृषकों के ज्ञान स्तर पर अध्ययन किये गये, जिससे यह तथ्य सामने आया कि स्वच्छ दुग्ध उत्पादन के बहुत से ऐसे पहलू है जिनकी जानकारी पूरी तरह पर पशु पालकों को नहीं थी।

विशेष रूप से दुग्ध दोहन से लेकर संक्रामक बीमारियों से पशु के बचाव की वैज्ञानिक पद्धत्ति से पशुपालक अनभिज्ञ थे। अत: आवश्यकता इस बात की है कि स्वच्छ दुग्ध उत्पादन की सम्पूर्ण जानकारी डेरी पशुपालकों को होनी चाहिये जिससे कि वे दुग्ध खराब होने से हुई आर्थिक हानि से बच सकें तथा स्वच्छ दुग्ध उत्पादन कर अधिक लाभ प्राप्त कर जन सम्पदा को सुरक्षित रखने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दें सकें।

पशुपालकों और डेरी उद्योगियों को स्वच्छ दुग्ध उत्पादन की तथा अस्वास्थ्यकर परिस्थितियों में उत्पन्न दूध के घातक प्रभाव के सम्बन्ध में जानकारी हेतु प्रशिक्षण दिये जाने चाहिये।

दुग्ध उत्पादन का प्रबन्ध कैसे ?

यद्यपि पास्चुरीकरण से जीवाणुविक संख्या काफी कम हो जाती हैं परन्तु फिर भी जीवाणुविक बीजाणु को नष्ट किया जा सकता है जो कि बाद में सक्रिय हो जाते और संवृद्ध हो जाते है। पास्चुरीकरण के दौरान उच्च तापमान जीवाणु को असक्रिय कर देते हैं लेकिन बाद में जीवाणु सक्रिय हो जाते हैं जो कि दूध को खराब कर देते हैं और इससे स्वास्थ्य को भी खतरा बनता है। कुछ जीवाणु विषाक्तता उत्पन्न करते हैं। जीवाणुओं की अधिक संख्या

विषाक्तता का कारण बनती है। कुछ जीवाणु ताप स्थानीय जीवाणु उत्पन्न करते हैं जो कि बाद में दूध को खराब कर देते हैं। यद्यपि पास्चुरीकरण की प्रक्रिया रोगजनिक जीवाणुओं को समाप्त कर देती है। दूध में प्रारम्भिक उच्च जीवाणुविक गणना अवांछित होती हैं अत: कोडेक्स मानकों के अनुसार तैयार दुग्ध उत्पाद न केवल सुरक्षित और श्रेष्ठ गुणवत्ता वाले होने चाहिये बल्कि कच्चा दूध इस प्रकार उत्पादित किया जाये जिसमें कि जीवाणुविक संख्या कम से कम हो और प्रदूषित न हो। स्वच्छ दुग्ध उत्पादन के लिये पशु का स्वास्थ्य होना आवश्यक है जिसके लिये फार्म स्तर पर समुचित सफाई, निसंक्रमण और संतुलित आहार पर पूरा ध्यान रखना चाहिये। प्रदूषण के खतरों को कम करने के लिये पशुपालक को उत्पादकता स्तर पर समुचित आरोग्य कारी पद्धत्तियों को अपनाना चाहिये।

पशु स्वास्थ्य

स्वस्छ दूध हम स्वस्थ पशु से ही प्राप्त कर सकते हैं। इसके लिये पशु का समय-समय पर परीक्षण किया जाना चाहिये जिससे आश्वस्त हुआ जा सके कि पशु रोगों से ग्रस्त तो नहीं है। दुधारू पशुओं में थनैला रोग प्रमुख रोग है जिसमें पशु पीड़ित रहते हैं। थनैला रोग से ग्रस्त पशु का दूध मनुष्यों के लिए अहितकर है।

टयूबरक्यूलोसिस और ब्रूसियोलोसिस अन्य दो बीमारियाँ हैं जो मनुष्यों को भी प्रभावित कर सकती हैं और दूध के माध्यम से मनुष्यों तक पहुँच सकती हैं जो पशु दवाई ले रहे हों उनके दूध का उपयोग मनुष्यों द्वारा नहीं किया जाना चाहिये। विशेष रूप से एन्टीबायटिक से कुछ व्यक्तियों को एलर्जी होती है। अगर दूध में एन्टीबायटिक हो तो संवर्धक उत्पाद मक्खन, चीज कल्चर्ड दूध में जीवाणुविक प्रर्वतक बढ़ते नहीं हैं जिससे डेरी उद्योग की बहुत अधिक हानि होती है। स्वच्छ दुग्ध उत्पादन के लिये पशु का स्वस्थ होना बहुत आवश्यक है।

भरण पोषण

अच्छी गुणवत्ता वाले दुग्ध उत्पादन के लिये समुचित मात्रा में हरा चारा, भूसा दाना से युक्त संतुलित आहार जिसमें आवश्यक मात्रा में पोषक और खनिज लवण हो, पशु को दिया जाना चाहिये, घटिया भूसा और विटामिन ई की कमी से आक्सीकरण बढ़ जाता है। यह भी आवश्यक है कि पशु का आहार और चारा कीटनाशक से रहित हो। हमें इस बात का भी ध्यान रखना चाहिये कि चारा और पशु आहार का संग्रह आर्द्रता रहित वातावरण में हो ताकि विषाक्तता न उत्पन्न हो सके।

आवास

सफाई की दृष्टि से पशुपालक बाड़े नाँद समुचित स्थान पर स्थित और निर्मित होनी चाहिये। पशुशाला ऊँचे स्थान पर होने चाहिये जिससे कि वर्षा और सतही पानी इकट्ठा न हो सके और मक्खी, मच्छर पैदा न हो सके। अच्छी प्रकार से डिजाइन, कंकरीट फर्श सही निकासी व्यवस्था और प्लास्टर टायल की दीवालें होने से सफाई में आसानी रहती है। यह भी आवश्यक है कि दोहन और दुग्ध रख रखाव की व्यवस्था वाले स्थान पर छत होनी चाहिये और स्थान हवादार होना चाहिये, जिससे मक्खी, मच्छर एवं धूल और वर्षा से दूध पशुशाला को दुग्ध दोहन से पूर्ण रूप से साफ कर लेना चाहिये। खाद, गोबर और मिट्टी के कण वहाँ नहीं बचने चाहिये। दूध दोहन के दौरान बीड़ी, सिगरेट आदि नहीं पीना चाहिये। पशुशाला को साफ करने तथा पशु बर्तन आदि की सफाई के लिये पर्याप्त पानी की व्यवस्था होनी चाहिये। सूअर और मुर्गी पशुशाला में नहीं रखे जाने चाहियें।

सफाई का प्रबन्ध

पशुशाला, पशु बर्तन आदि की सफाई व्यवस्था समुचित होनी चाहिये। इससे धुलाई, रगड़ाई, ब्रशिग, पालिशिंग आदि प्रक्रियाओं को अपनाया जा सकता है। सफाई करने वाले कैमिकल (रसायन) का प्रयोग करे सकते हैं। इनसे अधिकांश कीट, रोगाणु और धूल आदि नष्ट हो जाते हैं। गाय बांधने, दुग्ध दोहन के स्थान को अच्छी प्रकार से साफ करना चाहिये।

रोगाणु नाशन

रोगाणु नाशन क्रिया के द्वारा संक्रमण फैलाने वाले अवयवों को नष्ट कर दिया जाता है और जो एजेन्ट प्रयोग किया जाता है उसको रोगाणुनाशक कहा जाता है। इन रोगजनक घटकों को नष्ट करने के लिये विविध प्रकार रोगणुनाशक फार्म पर प्रयोग

किये जा सकते हैं। ये रोगजनक धूल, मिट्टी दरारो और बिल्डिंग की दरारों में बने रहते हैं। सूर्य के प्रकाश में भी रोगाणु नाशन की क्षमता होती है। अतः पशुओं के घर में सूर्य का प्रकाश अवश्य आना चाहिये। दूध के बर्तनों को पाँच मिनट उबलते पानी में रखकर रोगाणु रहित कर सकते हैं। रोगाणु नाशन के लिये कैमीकल, जैसे एसिड अल्कलाईज और अन्य घटक जैसे पोटैशिम परमैगनेट, हाइड्रोजन पैराक्साइड, अल्कोहल, फारमेलिडिहाइड, फिनौल इत्यादि का उपयोग किया जा सकता है।

बर्तनों की सफाई

दुग्ध दोहन से पूर्व और बाद में खाली बर्तनों को तुरन्त साफ कर लेना चाहिये। इसके लिये उबलता पानी, भाप और रसायनतत्व प्रयोग कर सकते हैं। छोटे और सीमान्त किसान टीपोल जैसे प्रक्षालक का प्रयोग कर सकते हैं। दुग्ध के बर्तनों को अच्छी प्रकार से साफ कर लेना चाहिये जिससे उसमें प्रक्षालक तत्व शेष न रह जाये। बर्तन धोने के पश्चात उलटा करके रख देना चाहिये। बर्तन में हवा लगाने से दुर्गन्ध आदि समाप्त हो जायेगी। गरीब कृषक और पशुपालक जो कैमिकल आदि का प्रयोग करने में असमर्थ हों वे बर्तन को धोने के बाद धूप में सुखा लें। मिट्टी और राख से बर्तन को साफ नहीं करना चाहिये।

हाथ से दूध निकालना

दूध दुहने से पहले अयन और थन के अग्रभाग को साफ करें। ऐसा करने से थनैला और अन्य बीमारियाँ कम फैलेंगी। दूध में धूल आदि नहीं गिरेंगी, जिससे दूध की जीवाणुविक गुणवत्ता बढ़ेगी साथ ही दुग्ध स्रवण में सहायता मिलेगी। अयन और थनाग्र को गुनगुने पानी से धोयें। अच्छा यह रहेगा कि पानी में एक चुटकी पोटेशियम परमैगनेट मिला लें। दूध दोहन से पहले पशु की पूँछ को पीछे की टांगो से बांध लेना चाहिये। अयन धोने के पश्चात कागज/तौलिया या कपड़े से सुखा लें। प्रत्येक पशु के अयन को तौलियां से पोछें और उपयोग किये गये तौलिये को अयन धोने वाले पानी में न डुबायें। अयन को साफ करने के लिये किसी प्रक्षालक का उपयोग नहीं करना चाहिये क्योंकि दूध को प्रदूषित होने का खतरा रहता है।

पूर्व दोहन

दूध की असमान्यता का परीक्षण करने के लिये थोड़ा सा दूध वास्तविक दोहने से पहले निकाले लें। थनैला रोग परीक्षण करें। थनैला रोग से ग्रस्त पशु का दूध अन्य दूध में मिश्रित न करें। इस उद्देश्य के लिये स्ट्रिप या अन्य कोई छोटा बर्तन उपयोग किया जा सकता है।

वास्तविक दोहन

पूर्व दोहन द्वारा दुग्ध स्रवण के लिये साफ हो जाता है। अब हम वास्तविक दोहन आरम्भ कर सकते हैं। पूरे हाथ से दोहन करना चाहिये। दुग्ध दोहक को अपने हाथ अच्छी प्रकार से साफ करने चाहिये और उसे सूखे तौलिया से सुखायें। उसके हाथ में कोई घाव नहीं होना चाहिये। यह आश्वस्त कर लेना चाहिये दुग्ध दोहन की प्रक्रिया से जुड़े लोगों को कोई रोग न हो विशेष रूप से टी.बी जैसी बीमारी से ग्रस्त न हो। दूध दोहन 6-8 मिनट के अन्दर पूरा कर लेना चाहिये। दुग्ध दोहन के पश्चात थनों के अग्रभाग को जीवाणुविक नाशक घोल में डुबायें जिससे संक्रमण की आशंका कम हो।

मशीन द्वारा दोहन

विशेष सावधानी के बावजूद भी हाथ से दुग्ध दोहन के दौरान दूध प्रदूषित हो जाता है। मशीन से दूध दोहन से हाथ से दुग्ध दोहन से जुड़ी समस्याओं से छुटकारा पाया जा सकता है।

प्रोबायोटिक किण्वित दुग्ध पदार्थों से हृदय रोगों की रोकथाम

चाँद राम, सुमन, विजय कुमार एवं नरेन्द्र कुमार

सूक्ष्म जीव विज्ञान प्रभाग, भाकृअनुप - राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल-132001

विश्व स्वास्थ्य संगठन ने ऐसा अनुमान लगाया है कि वर्ष 2030 तक विश्व में लगभग 23,600,000 लोग हृदय रोग से प्रभावित होगें व मौत का प्रमुख कारण बना रहेगा। निम्न एवं मध्यम आय वाले देशों में हृदय रोगों के कारण मृत्यु दर में लगातार वृद्धि हो रही है।

हृदय रोग की परिभाषा

हृदय रोग वे सभी बिमारियाँ है जो हृदय प्रणाली को प्रभावित करती हैं। जिनमें मुख्य रूप से हृदय रोग, मस्तिष्क और गुर्दो की वाहिका रोग एवं परिधीय धमनी रोग आते हैं।

हृदय रोग विविध कारणों से होता है लेकिन हाइपरकोस्ट्रोलेमिया एवं उच्च रक्तचाप प्रमुख हैं। रक्त में कोलोस्ट्रोल एवं एल.डी.एल. कोलेस्ट्रोल की मात्रा अधिक होने से हृदय रोग की संभावना बढ़ जाती है। इसके साथ-साथ बढ़ती उम्र के कारण शारीरिक बदलाव भी हृदय रोगों का कारण है।

हृदय रोगों को मूलत: विभिन्न बिमारियों में विभाजित किया जा सकता है।

हृदय रोगों के प्रकार

1. कोरोनरी धमनी की बिमारी
2. क्रोडियोमायोपैथी- हृदय की मांस-पेशी के रोग
3. उच्च रक्तचाप से ग्रस्त रोग
4. दिल की विफलता तथा दिल का दौरा
5. फेफड़े के हृदय रोग
6. इन्फलेमटरी हृदय रोग
7. परीधीय हृदय रोग
8. जन्मजात हृदय रोग

जोखिम कारक (रिस्क फैक्टर)

हृदय की बीमारियों के लिए नीचे दिए गए कई कारक उत्तरदायी है।

1. रक्त में कोलोस्ट्रोल की उच्च मात्रा
2. उच्च रक्त चाप
3. आयु
4. लिंग
5. मधुमेह
6. मोटापा
7. शारीरिक निष्क्रियता
8. तंबाकू का इस्तेमाल
9. अपौष्टिक आहार
10. हृदय रोग का पारिवारिक इतिहास

क्रं.	दवाई श्रेणी	घटक	दुष्प्रभाव
1.	रिडक्टेज अवरोधक	लोवास्टेटिन	लोवास्टेटिन, मायोपेथी, लीवर एन्जाइम में वृद्धि
2.	कोलेस्ट्रोल अवशोषण अवरोधक	एजिटामइड	सिर दर्द, आन्त रोग
3.	निकोटिनिक एसिड	--	ग्लूकोज की मात्रा बढ़ना, लीवर पर दुष्प्रभाव
4.	फेबरिक एसिड	जैमीफाइब्रोजिल	पथरी मायोपेथी, अपच
5.	बाइल एसिड सिकवसट्रन्ट	कोलेस्टाइरामीन	आंत का असंतुलन, कब्ज

11. वायु प्रदूषण

12. गरीबी एवं अशिक्षा

उपचार

हृदय रोगों के उपचार के लिए कुछ दवाईयां बाजार में उपलब्ध है लेकिन इनके दुष्प्रभाव है जो हमारी रोग प्रतिरोधक क्षमता को कम करते हैं।

हृदय रोगों को रोकने का प्राकृतिक उपाय

हृदय रोग मुख्य रूप से एल.डी.एल. और खराब कोलेस्ट्रोल की मात्रा बढ़ने से होते हैं। विभिन्न प्रकार की रासायनिक दवाएं प्रभावी ढंग से कोलेस्ट्रोल का स्तर कम करती है लेकिन ये महंगी होने के साथ-साथ शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता को भी प्रभावित करती है जिसकी वजह से कब्ज, सिर दर्द, आंत के रोग होने की आंशका बढ़ जाती है। इसलिए ऐसे प्राकृतिक खाद्य उत्पादों का वैज्ञानिक अन्वेषण पर ध्यान केन्द्रित करना अत्यंत आवश्यक है। जो न केवल सस्ते हो बल्कि उनका शरीर पर दुष्प्रभाव भी नहीं होना चाहिए।

पिछले कुछ दशकों में लैक्टिक एसिड पैदा करने वाले जीवाणु (एल.ए.बी.) की प्रोबायोटिक गतिविधियों का अध्ययन किया गया है। इन जीवाणुओं से विभिन्न प्रकार के किण्वित दुग्ध पदार्थ बनाए जाते हैं। किण्वित दुग्ध उत्पाद जैसे दही, लस्सी, योर्गट, श्रीखंड, पनीर इत्यादि सदियों से हमारे भोजन का अभिन्न अंग हैं। ये पदार्थ स्वादिष्ट होने के साथ सुपाच्य भी हैं तथा विभिन्न प्रकार के रोगों की रोकथाम के लिए लाभप्रद भी हैं। वैज्ञानिक दृष्टि से सर्वप्रथम इसका वर्णन डा. इली मैचनीकॉफ ने बीसवीं सदी के प्रारम्भ में किया था। उनके अनुसार किण्वित दुग्ध पदार्थों के सेवन से व्यक्ति स्वस्थ रहता है एवं उसकी आयु लम्बी होती है। इसका मुख्य कारण जीवाणुओं द्वारा किण्वित दुग्ध पदार्थ है जो रोग उत्पन्न करने वाले कीटाणुओं को कम करते हैं और लाभकारी जीवाणुओं की आंत में वृद्धि करते हैं। इन जीवाणुओंको प्रोबायोटिक जीवाणु कहते है। प्रोबायोटिक जीवाणु हमारी रोग प्रतिरोधक क्षमता, पाचन एवं पोषण शक्ति को बढ़ाते हैं। आधुनिक शोधकार्यों से यह साबित हो गया है कि प्रोबायोटिक जीवाणुओं द्वारा किण्वित दुग्ध पदार्थों को लगातार सेवन कई जानलेवा बिमारियों जैसे मधुमेह, मोटापा, हृदय रोग, आंत का कैंसर से बचाव करते है तथा इनकी लागत कम होती है।

प्रोबायोटिक की परिभाषा

ये वे लैक्टिक जीवाणु हैं, जिनकी निर्धारित मात्रा में सेवन करने से हमारे स्वास्थ्य पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। ये जानलेवा रोगों की रोकथाम एवं इलाज में भी एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ऐसे जामन के उदाहरण हैं लैक्टोबेसिलस केजाई, एल प्लानटेरम, एल. रेमनोसस, लैक्टोकोकस, लैक्टिस, बी.लोगम, बीफिडोबैटिरियम, एल बुलगेरिकस, एल फरमन्टम इत्यादि।

प्रोबायोटिक जीवाणुओं द्वारा किण्वित दुग्ध उत्पादों के स्वास्थ्य लाभः

1. हृदय रोगों की रोकथाम
2. मोटापा कम करना
3. मधुमेह नियन्त्रण
4. कैंसर से बचाव
5. आंत का माइक्रोबियल संतुलन
6. जठरात्र पथ में संक्रामक रोगों के लिए प्राकृतिक प्रतिरोध क्षमता में वृद्धि
7. पाचन में सुधार
8. रोग प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि
9. लैक्टोज़ असहिष्णुता में सुधार

प्रोबायोटिक लैक्टिक बैक्टिरिया की चयन प्रक्रिया

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार एक सक्षम प्रोबायोटिक लैक्टिक बैक्टिरिया के चयन के लिए निम्न गुणों का होना अत्यन्त आवश्यक है।

1. वह अम्ल एवं पित्त सहन करने वाला होना चाहिए।
2. मनुष्य की आंत की सतह पर जमा होने में सक्षम होना चाहिए।

3. रोग उत्पन्न करने वाले जीवाणुओं की संख्या कम करने वाला होना चाहिए।
4. बिमारी पैदा करने वाला एवं एंटीबायोटिक प्रतिरोधी को दूसरों बैक्टिरिया में स्थानांतरित करने वाला नहीं होना चाहिए।
5. रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने वाला होना चाहिए।
6. हमारे लिए स्वास्थ्य वर्धक होना चाहिए।
7. जेनेटिकली स्थिर होना चाहिए।
8. खाद्य उत्पादों के साथ समन्वय रखने वाला होना चाहिए एवं सचयन के दौरान जीवित होना चाहिए।
9. इनकी संख्या कम से कम 108 सी एफ यू/ग्रा0 होनी चाहिए।

तालिका 1 राष्ट्रीय डेरी संग्राहलय में उपलब्ध प्रोबायोटिक जामन एवं उनकी क्रियाशीलता

क्रं0	प्रोबायोटिक जीवाणु	क्रियाशीलता	दूध उत्पाद
1.	एल . केजीआई (NCDC-298)	रोगाणुरोधी	श्री खण्ड
2.	एल0 हेलवेटिकस (NCDC-006) NCDC-184, NCDC-292, NCDC-288)	उच्च रक्तचाप रोगाणुरोधी, इमयूनोमोडुलेटरी	दही एवं किण्वित दुग्ध पदा र्थ
3.	एल0 रेमनोसस NCDC-243	विटामिन उत्पादन (फोलिक एसिड, राइबोफलेविन)	दही
4.	एल0 डलबरूकाई उपजाति बुलगरिकस (LB-2)	कोलेस्ट्रोल को कम करना, कैंसर रोधी, रोगाणुरोधी	दही एवं योगर्ट
5.	एल0 एसीडोफिलस (NCDC LA-15) एल0 रेमनोसस (NCDC LA-16)	दस्तरोधी	व्हे पेय
6.	बीफीडो बैक्टिरियम बीफीडम NCDC-231	रोगाणुरोधी	दही एवं योगर्ट
7.	लै. प्लानटेरम LT-7	कैंसर रोधी, रोगाणुरोधी	दही
8.	एल. पेराकेजाईNCDC-161, NCDC-393	डाइऐसीटाइल एवं एसीटॉइन उत्पादन	दही
9.	एल. प्लानटेरम (CRD -2) एल. रेमनोसस (CRD -4) एल. प्लानटेरम (CRD-7) एल. रेमनोसस (CRD -9) एल. रेमनोसस (CRD -11)	कैंसर रोधी कोलेस्ट्रोल को कम रोगाणुरोधी	दही बलूबेरी दही योगर्ट

प्रोबायोटिक द्वारा कोलेस्ट्रोल को कम करने की प्रक्रिया

वसा कोलेस्ट्रोल की हृदय रोगों में एक महत्वपूर्ण भूमिका है। अधिक कोलेस्ट्रोल हृदय धमनियों में जमा हो जाता है जिससे खून का प्रवाह प्रभावित होने से दिल का दौरा, आर्थिक रोस्केलीरीसीस एवं कोरोनिक हृदय रोग इत्यादि बिमारियां हो जाती है। विभिन्न शोधकार्यो ने यह दर्शाया है कि प्रोबायोटिक जीवाणु आंत में पित्त को तोड़कर उसके अवशोषण को रोकते हैं एवं शरीर में कोलेस्ट्रोल के उत्पादन को नियन्त्रित करते हैं साथ ही दुग्ध पदार्थो में उपस्थित कोलेस्ट्रोल को अवशोषित कर, वसा की

मात्रा कम कर देते हैं। ये लैक्टिक जीवाणु ऐसे एन्जाइम उत्पन्न करते है जो कोलेस्ट्रोल को दूसरे पदार्थों में परिवर्तित कर देते हैं जैसे कोलेस्ट्रोल रिडक्टेज एन्जाइम कोलेस्ट्रोल को कोपरोस्टोनोल में परिवर्तित कर देते हैं। कोपरोस्टेनोल आंत द्वारा अशोषित ना होकर शरीर से निकल जाता है जिससे रक्त में कोलेस्ट्रोल की मात्रा नियन्त्रित रहती है। इस दिशा में हमारी प्रयोगशाला ने कुछ ऐसे लैक्टिक अम्लीय जीवाणु विकसित किए हैं जो किण्वित दुग्ध पदार्थों में कोलेस्ट्रोल की मात्रा कम करने में मददगार हैं।

प्रोबायोटिक जीवाणुओं द्वारा उच्च रक्तचाप का नियन्त्रण

अवरोधक रक्तचाप को नियन्त्रण करने का प्रमुख माध्यम है। ACE अवरोधक एंजियोटेनसिन- II के उत्पादन को कम करके एवं बरंडी काइनिन के टूटने को रोककर रक्तचाप का स्तर कम करते हैं।

ACEअवरोधक पेप्टाइड मुख्य प्रोटीन में निष्क्रिय होते हैं परन्तु ये प्रोबायोटिक जीवाणुओं की किण्वन क्रिया से निकल जाते है इसलिए किण्वन बायोएक्टिव पेप्टाइड उत्पन्न करने के लिए एक प्रभावी प्रक्रिया है।

ACE अवरोधक पेप्टाइड विभिन्न किण्वित दुग्ध पदार्थों जैसे पनीर, चीज़, किण्वत दूध, सोयादूध, दही एवं योगार्ट भी प्रोबायोटिक जीवाणुओं की क्रिया द्वारा उत्पन्न किए जा सकते हैं।

योगर्ट जीवाणुओं के साथ-साथ, चीज स्टार्टर जीवाणु एवं प्रोबायोटिक जीवाणु भी दूध में किण्वन के दौरान विभिन्न बायोएक्टिव पेप्टाइड उत्पन्न कर सकते हैं। प्रोबायोटिक जीवाणु दूध में अपनी संख्या परोडियोलाइटिक गतिविधि द्वारा बढ़ाने में सक्षम हैं एवं लेक्टोज हाइड्रोलाइजिंग एन्जाइम द्वारा केजिन को तोड़ देते हैं।

किण्वन प्रक्रिया के दौरान प्रोबायोटिक के प्रोटिनेज एन्जाइम ACE अवरोधक पेप्टाइड को निकालने में सक्षम होते हैं और इस प्रकार शरीर में उच्च रक्तचाप को नियन्त्रित करते हैं।

विभिन्न शोध से पता चला है कि लेक्टोबेसिलस हेलवेटीकस ACE अवरोधक ट्राईपेप्टाइड वेल-परो-परो (VPP) अवरोधक एवं इल-परो-परो (IPP) दूध के केजिन प्रोटीन से निकालने में सक्षम हैं।

प्रोबायोटिक का मोटापा नियन्त्रण में योगदान

आंत में जीवाणुओं की किण्वन प्रक्रिया द्वारा कार्बोहाइड्रेटस से लघु श्रृखंला फैटी एसिड (एंसीटेट, प्रोपियोनेट, बुटाइरेट एवं लक्टेट) पैदा करते हैं। लघु श्रृखंला फैटी एसिड से आंत में PH का स्तर कम होने से जीवाणुओं का वातावरण संयोजित रहता है।

प्रोबायोटिक जीवाणु पोलीएनसेचुरेटिड फैटी एसिड से कन्जुगेटिड लिनोलीनिक एसिड उत्पन्न करते हैं जो शरीर में एल डी एल कोलेस्ट्रोल एवं लीवर एन्जाइम को नियन्त्रित कर मोटापे को कम करते हैं।

निष्कर्ष

प्रोबायोटिक दुग्ध उत्पाद विभिन्न प्रकार की बिमारियों की रोकथाम में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। प्रोबायोटिक पहले से ही पूरक एवं वैकल्पिक दवाई के रूप मे कई प्रकार के रोगों जैसे आंत के संक्रमण, अल्सरेटिव कोलाइटिस, इरीटेबल बाउल सिंड्रोम इत्यादि के इलाज एवं रोकथाम के लिए प्रयोग किए जा रहे हैं। वैज्ञानिक प्रभावशाली प्रोबायोटिक दुग्ध उत्पाद बनाने के लिए प्रयासरत हैं जो विभिन्न प्रकार के रोगों की रोकथाम एवं ईलाज में कारगर सिद्ध होगें। हमारी प्रयोगशाला में हृदय एवं कैंसर की बीमारियों को प्रोबायोटिक किण्वित दुग्ध पदार्थों द्वारा नियन्त्रण करने के कार्य काफी तेजी से सकारात्मक परिणाम दे रहे हैं।

दूध और दूध उत्पादों की मधुमेह प्रकार २ के प्रबंधन में भूमिका

प्रसाद पाटील[1], आकांक्षा वधेरा[2], प्रदीप बेहरे[1], सुरजीत मंडल[1] एवं सुधीर कुमार तोमर[1]

1 डेरी सूक्ष्मजीव विभाग, भाकृअनुप - राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल-132001
2 डेरी प्रौद्योगिकी विभाग, भाकृअनुप - राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल-132001

मधुमेह विशेष रूप से विकासशील देशों में में एक बड़ी सार्वजनिक स्वास्थ्य समस्या है। दुनियाभर में वर्ष 2014 में 327000000 लोग मधुमेह से पीड़ित थे, वही 2035 तक 592000000 वृद्धि होने का अनुमान है। भारत में 2014 में 66,800,000 लोगों को मधुमेह था और 2035 तक, यह 10000000 तक होगा। मधुमेह इंसुलिन का स्राव और इंसुलिन प्रतिरोध में दोष की वजह से एक पुराना चयापचय विकार है। मधुमेह के मुख्य दो प्रकार होते हैं । प्रकार २ मधुमेह बहुत ज्यादा आम है और सभी मधुमेह के मामलो में 90-95 प्रतिशत पाया जाता है। मधुमेह प्रकार २ में भोजन के बाद उच्च रक्तशर्करा का स्तर बढ़ जाता है । मधुमेह प्रकार २ के उपचार की देरी के वजह से मोटापा, उच्चरक्तचाप, हृदयरोग, उच्चकोलेस्ट्रोल, और रेटिना को नुकसान जैसे कई जटिलताएं पैदा हो सकती हैं, इसलिए, उच्च रक्तशर्करा को और मधुमेह प्रकार २ संबंधित जटिलताओं को रोकने के लिए प्रभावी रणनीति की जरुरत है। मधुमेह प्रकार २ की रोकथाम में, भोजन के बाद इष्टतम रक्तशर्करा के स्तर को प्राप्त करना एक महत्वपूर्ण रणनीति है।

मधुमेह प्रकार २ के प्रबंधन के लिए, विभिन्न चिकित्सीय औषधियों का भोजन के बाद रक्त में शर्करा की अत्यधिक वृद्धि को रोकने के लिए प्रयोग किया जाता है, लेकिन इन दवाओं में से कुछ के नकारात्मक प्रभाव हो रहे हैं।आहार और जीवनशैली नियमित रूप से शारीरिक व्यायाम और अच्छे खाने की आदतों का उचित समायोजन को मधुमेह प्रकार २ के प्रबंधन के लिए मदद करने वाले साधन के रूप में सिफारिश की गई है। आहार व्यापक रूप से मधुमेह प्रकार २ के विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसके अलावा, नुट्रासीटिकल और कार्यात्मक खाद्य मधुमेह प्रकार २ के प्रबंधन के लिए इस्तेमाल अन्य उपचार के लिए पूरक है।

दूध सभी उम्र के लिए सबसे पोषक और पूर्ण खाद्य पदार्थो में से एक है और बहुत प्राचीन काल से मानव आहार का हिस्सा रहा है। दूध उत्पादों का सेवन उपापचयी सिंड्रोम के लिए लाभदायी है। एक अनुसंधान से ये पता लगा है कि दुध पदार्थ, विशेष रूप से कम वसा वाले के खाने से मधुमेह प्रकार २ के जोखिम को कम करने में मदद कर सकता है । डेयरी उत्पादों में तृप्ति बढ़ाने के लिए और भोजन का सेवन और रक्तशर्करा प्रतिक्रिया को कम करने वाली कम ग्लाइसेमिक सूचकांक के साथ कई कार्यात्मक तत्व होते हैं।

दूध और मधुमेह प्रकार २

दूध शरीर में एक नियामक भूमिका निभाते हैं तथा संतुलित पोषक तत्वों, ऊर्जा, और बायोएक्टिव सामग्री के उच्चतम गुणवत्ता स्रोत है। महामारी विज्ञान के अध्ययन से ये पता चला है कि डेयरी पदार्थो का सेवन और व्यापकता या उपापचयी सिंड्रोमकी घटनाओं के बीच संबंध है। दूध को नियमित सेवन से मधुमेह प्रकार २ जोखिम को कम किया जा सकता है। एक विश्लेषण अध्ययन में उच्चतम डेयरी उत्पाद सेवन करने वाले लोगो में मधुमेह प्रकार २ की 14 प्रतिशत जोखिम कम पायी गयी है। मधुमेह प्रकार २ के प्रबंधन के लिए कम वसा वाला दूध और दही महत्वपूर्ण है । हाल ही में पाया गया है कि डेयरी उत्पाद सेवन का और मधुमेह प्रकार २ की व्यापकता का संबंध है तथा दूध में पाये जाने वाले घटकों का मधुमेह प्रकार २ प्रबंधन में एक महत्वपूर्ण भूमिका है।

खनिज

दूध और दूध उत्पादों, कैल्शियम और मैग्नीशियम के समृद्ध स्रोत हैं। इन दो खनिजों की मधुमेह प्रकार २ के विकास में एक भूमिका है। वे अग्नाशय बीटा-सेल समारोह और इंसुलिन के प्रति संवेदनशीलता में सुधारने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते

हैं। विभिन्न प्रयोगात्मक का ठोस सबूत, और हाल ही में मेटा-विश्लेषण के अध्ययन में पाया गया है कि इंसुलिन प्रतिरोध और मधुमेह प्रकार २ पर मैग्नीशियम की सेवन का सीधा प्रभाव होता है। मैग्नीशियम इष्टतम युग्मन के लिए और इंसुलिन रिसेप्टर के माध्यम से संकेत के लिए आवश्यक है, जो इंसुलिन ग्लूकोज को हासिल करने की प्रक्रिया को बेहतर बनाता है। दरअसल, ग्लाइकोलाइटिक प्रवाह दृढ़ता से निर्धारित होता है और सेलुलर मैग्नीशियम स्थिति पर निर्भर है। इंट्रासेल्युलर मैग्नीशियम की कमी से इंसुलिन संकेतन और ग्लूकोज प्रेरित इंसुलिन के स्राव के दौरान टाइरोसीन काइनेज गतिविधि के विकार हो सकते हैं। जिस से मांसपेशियों की कोशिकाओं और आडीपोसाइट में बिगड़ा इंसुलिन के प्रति संवेदनशीलता होती है।

अध्ययन में पाया गया है कि, लगातार कम कैल्शियम की मात्रा और मधुमेह प्रकार २ की घटना विपरीत ढंग से एक साथ जुड़ हुए हैं। कैल्शियम इंसुलिन संवेदन शील ऊतकों में इंसुलिन मध्यस्थता इंट्रासेल्युलर प्रक्रियाओं के नियमन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। अग्नाशय बीटा-कोशिकाप्रतिकूल कैल्शियम प्रवाह से प्रभावित हो सकते हैं। इंसुलिन रिसेप्टर्स की फास्फोरिलीकरण भी कैल्शियम पर निर्भर प्रक्रिया है।

विटामिन डी

चीज, दही और पूरे वसा वाले दूध जो वसा में घुलनशील विटामिन डी, में उच्च रहे हैं का मधुमेह प्रकार २ के व्युत्क्रमानुपाती होना पाया गया है। सक्रिय विटामिन डी अग्नाशय बीटा-कोशिकाओं में विटामिन डी की रिसेप्टर्स के लिए बाध्यद्वारा इंसुलिन के स्राव पर सीधा असर पड़ सकता है। इंसुलिन रिसेप्टर अभिव्यक्ति और ग्लूकोज परिवहन के लिए इंसुलिन प्रतिक्रिया विटामिन डी से बढ़ाया जा सकता है। इंसुलिन के प्रति संवेदनशीलता और बीटा-सेल अस्तित्व में सुधार किया जा सकता है , जिसके माध्यम से साइटोकिन्स की पीढ़ी पर विटामिन डी का सीधा असर होता है।

दुध वसा

कुल दूध उत्पादों का सेवन (यानी, उच्च वसा और कम वसा) और मधुमेह प्रकार-२ के बीच एक महत्वपूर्ण सहयोग देखा गया है, लेकिन उच्च वसा वाले डेयरी उत्पादों की उच्च सेवन

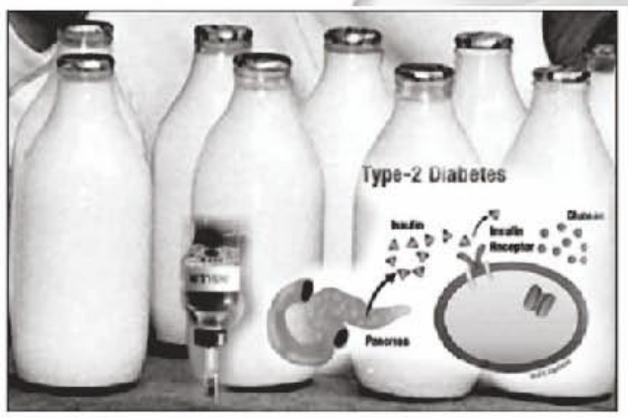

के साथ, मधुमेह प्रकार २ की कम व्यापकता पायी गयी है। क्रीम , मक्खन, और उच्च वसा वाले किण्वित दूध के सेवन से मधुमेह प्रकार २ में कम जोखिम देखा गया हैं। 4-14 कार्बन के साथ संतृप्त फैटी एसिड जो दूध वसा में प्रचुर मात्रा में है, उसके सेवन से, मधुमेह प्रकार २ के कम जोखिम में के साथ संबंध है। दूध के स्वास्थ्य प्रभावों के कारण मुख्य रूप से दूध में कई घटकों के बीच एक जटिल पारस्परिक क्रिया का नतीजा है।

दूध प्रोटीन

दूध प्रोटीन में लगभग 8% कैसीन और 2% व्हेय होते हैं। व्हेय प्रोटीन और कैसीन प्रोटीन का मधुमेह प्रकार २ का मनोवैज्ञानिक प्रभाव को कम करने में मदद मिल सकती है और इंसुलिन के स्राव को जगाने और महत्वपूर्ण के रोगियों में रक्तशर्करा को नियंत्रित करने के लिए खुलासा किया गया है। हाल ही में एक शारीरिक रूप से सक्रिय घटक के रूप में आहार में प्रोटीन की भूमिका तेजी से दुनियाभर में स्वीकार किया जा रही है। दूध प्रोटीन अमीनो एसिड का एक महत्वपूर्ण स्रोत बहुत अच्छी तरह से स्वीकार किया जाता है, लेकिन मौजूदा समय में, यह दूध प्रोटीन बायोएक्टिव पेप्टाइड्स की कार्रवाई से कई कार्यक्षमताओं में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। वर्तमान में, दूध प्रोटीन बायोएक्टिव पेप्टाइड्स की एक श्रृंखला के सबसे महत्वपूर्ण संसाधन के रूप में माना जाता है। कारण है कि, हृदयरोग, महत्वपूर्ण और मोटापे से जुड़ा हुआ है, जो उपापचयी सिंड्रोम पर लक्षित कार्यात्मक खाद्य स्वास्थ्य को बढ़ावा देने की क्षमता सामग्री के रूप में दूध प्रोटीन पेप्टाइड्स के लिए एक बढ़ती रुचि है। यह दूध प्रोटीन पेप्टाइड्स कई तंत्र के माध्यम से उपापचयी सिंड्रोमके जोखिम को कम कर

सकते हैं ।

दूध उत्पाद और मधुमेह प्रकार २ में सम्बन्ध

डेयरी उत्पादोंको उच्च गुणवत्ता वाले प्रोटीन, विटामिन (ए, डी, बी–१२, और राइबोफ्लेविन) और खनिज (कैल्शियम, मैग्नीशियम और पोटेशियम) के महत्वपूर्ण स्रोत हैं। अध्ययन से पता चलता है की उच्च कुल डेयरी उत्पादों का सेवन मधुमेह के खतरे को कम करता है। विशेष रूप से, कम वसा वाले डेयरी उत्पाद सेवन मधुमेह प्रकार २ के कम जोखिम के साथ जुड़े थे।

किण्वितदूध

किण्वित डेयरी उत्पादों (पनीर, दही, और किण्वित दूध) के संयुक्त सेवन व्युत्क्रमानुपाती मधुमेह के साथ जुड़े थे। ७ दिन के भोजन डायरियों से आहार का सेवन डेटा का उपयोग कर एक अध्ययन में पता चला है कि मधुमेह और कम वसा वाले किण्वित डेयरी उत्पादोंका सेवन के बीच उलटा एसोसिएशन है। कम वसा किण्वित डेयरी उत्पादका सेवन (80 ग्राम/दिन), 28 प्रतिशत कम मधुमेह की घटना के साथ जुड़े थे और मधुमेह विकसित होने का खतरा कम किया है। कई संभावित तंत्र किण्वित डेयरी उत्पादों और मधुमेह प्रकार २ के बीच सहयोग के लिए मौजूद हैं। पशुओं के ऊतकों द्वारा संश्लेषित (विटामिन के–२) डेयरी उत्पादों में मौजूद हैं और मधुमेह प्रकार २ के कम जोखिम के साथ संबद्ध किया गया है।

चीज

चीज संतृप्त फैटी एसिड का एक अच्छा स्रोत है और यह मधुमेह के खतरे को कम करने में सहायक है। उच्च कुल संतृप्त फैटी एसिड के सेवन का ग्लूकोज चयापचय और इंसुलिन प्रतिरोध पर प्रतिकूल प्रभाव के साथ संबद्ध किया गया है। उदाहरण के लिए, पेंटादेकोनिक एसिड (१५रू द्) और हेप्टादेकोनिक एसिड (१७रू द्), केवल अधिक अनुकूल हृदय मार्कर के साथ संबंध किया गया है, जो जुगाली करने वाले पशुओं की रूमेण में सेसंश्लेषित होते है और मधुमेह का खतरा कम कर रहे हैं।

निष्कर्ष

अधिकांश डेयरी खाद्य पोषक तत्वों अकेले या एक स्वस्थ आहार के भाग के रूप में उपयोग मधुमेह प्रकार २ का खतरा कम होता है । डेयरी पदार्थ जैसे दूध, चीज, और दही की अधिक सेवन से मधुमेह प्रकार २ के जोखिम को कम करने में मदद मिलती है। मधुमेह प्रकार २ जोखिम को कम करने में दुध में वसा की लाभदायक भूमिका है। डेयरी खाद्य पदार्थ और इस तरह के खनिज, विटामिन डी, प्रोटीन के रूप में उनके घटकों की भूमिका को स्पष्ट करने की जरूरत है । उपापचयी सिंड्रोम और मधुमेह प्रकार २ के उपचार में पेप्टाइड्स की भूमिका का स्पष्ट करनी जरुरी है।

दूध जनित जूनोटिक रोग

लक्ष्मी प्रियदर्शिनी एवं अंजली अग्रवाल

भाकृअनुप - राष्ट्रीय डेरी अनुसन्धान संस्थान, करनाल - 132001

दूध जनित जूनोटिक रोग वह पशु रोग है जो संक्रमित दूध पीने से मानव में होते हैं। संक्रमित दूध पीने से होने वाले कुछ महत्वपूर्ण जूनोटिक रोग इस प्रकार हैं :-

- ब्रूसिलोसिस
- तपेदिक
- क्लास्ट्रीडियल संक्रमण
- बोटसूलिज्म
- क्रिप्टोस्पोरिडियोसिस
- कैम्पायलो बैक्टिरियोसिस

1. ब्रूसिलोसिस

ब्रूसिलोसिस सामान्यतः ब्रूसिला अबोर्टस और ब्रू. मेलिटिन्सिस जीवाणु द्वारा होता है। यह एक प्रणालीगत संक्रामक रोग है जो ब्रू. मेलिटिन्सिस(बकरी, भेड़, उंट), ब्रू. सुइस (शूकर), ब्रू. अबोर्टस (गाय, भैंस, याक, उंट) और ब्रू. केनिस (कुत्तों) द्वारा पशुओं में पाया जाता है। हालांकि मानव में ब्रूसिलोसिस संक्रमण इन चारों प्रजातियों के द्वारा होता है, फिर भी ब्रू.मेलिटिन्सिस दुनिया में सबसे अधिक प्रचलित है तथा गंभीर मामलों में रोग का कारक पाया गया है।

प्रसारण- संक्रमित भेड़, बकरी या गाय के कच्चे दूध या पनीर के सेवन से होता है। संक्रमित पशु के अपाश्चिकृत दूध में ब्रूसिला जीवाणु पाए जाते हैं जिनके सेवन से यह जीवाणु मानव में ब्रूसिलोसिस विकसित कर देते हैं। ये बैक्टिरिया एरोसीलाइज्ड़ स्त्राव में सांस लेने से, त्वचा में चोट के द्वारा,कंजाक्टिवा के संपर्क में आने से भी शरीर में प्रवेश प्राप्त कर लेते हैं। इन प्रवेश के तरीकों के कारण यह एक व्यवसायिक रोग है जो पशु चिकित्सकों, पशु वधगृह श्रमिकों, प्रयोगशाला कर्मियों, किसानों, चरवाहों और ग्वालों को प्रभावित कर सकता है।

लक्षण - इस रोग के लक्षण प्रारंभिक संक्रमण से उष्मायन अवधि तक (दिन से महीनों तक) विकसित होते रहते हैं। हालांकि कुछ व्यक्तियों में हल्के लक्षण विकसित हो सकते हैं, दूसरों में लंबी अवधि के जीर्ण लक्षण विकसित हो सकते हैं। सामान्यतः बुखार (सबसे आम, आंतरयिक और रिलेप्सिंग) पसीना आना, शरीर तथा जोड़ों में दर्द, थकान, कमजोरी, चक्कर आना, सांस लेने में कठिनाई, सीने तथा पेट में दर्द, बढ़ा हुआ जिगर और तिल्ली इत्यादि लक्षण इस रोग में देखे जाते हैं।

रोकथाम- पशु टीकाकरण, पशु परीक्षण तथा संक्रमित पशु उन्मूलन द्वारा रोकथाम संभव है। इस रोग के लिए वर्तमान में कोई मानव टीका उपलब्ध नहीं है। वह क्षेत्र जहां रोग उन्मूलन संभव नहीं है वहां मनुष्य के प्रति जोखिम को कम करने निवारक उपाय अपनाए जाते हैं। इनमें डेयरी उत्पादों का पाश्चिकरण करना तथा अपाश्चिकृत उत्पादों के उपयोग से परहेज सम्मिलित हैं।

2. तपेदिक

माइको बैक्टिरियम बोविस जनित क्षय रोगआमतौर पर होने वाले रोग हैं परन्तु आजकल मानव से मानव द्वारा क्षय रोग का प्रसार गोजातीय डेयरी उत्पादों द्वारा क्षय अर्जित करने से ज्यादा महत्वपूर्ण हो गया है। क्षय रोग आमतौर पर फेफड़ों के उपरी भाग में शुरू होता है। तथापि शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली बैक्टिरिया के प्रजनन को रोक कर संक्रमण को निष्क्रिय कर सकती है, परन्तु अगर शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली कमजोर पड़ जाए तो वह बैक्टिरिया को रोक नहीं पाती तथा वह सक्रिय होकर फेफड़ों में पनपने और शरीर के अन्य स्थानों में फैलने लगते हैं।

प्रसारण - यह रोग अपाश्चिकृत दूध के सेवन से फैलता है। पहले यह बच्चों में टी0बी0 का मुख्य कारण था परन्तु अब दूध

पाश्चिकृत किया जाता है अत: दूध से इसके फैलने की संभावना कम हो गई है।

लक्षण – इसके लक्षण विकसित होने में महीनों लग जाते हैं। सामान्य लक्षणों में थकान, कमजोरी, वजन घटना और रात्रि में पसीना आना प्रमुख है। स्थिति बिगड़ने पर खांसी, सीने में दर्द, खांसी के साथ उत्तक कण और रक्त आना इत्यादि लक्षण दिखने लगते हैं। यदि संक्रमण शरीर में फैल जाए तो लक्षण अंगों पर निर्भर करते हैं।

रोकथाम– अपाश्चिकृत दूध एवं डेयरी उत्पादों से परहेज एवं संक्रमित व्यक्तियों से दूरी बनाए रखना चाहिए। संक्रमित पशुओं का इलाज या उन्मूलन रोकथाम में प्रमुख है।

3. क्लौस्टीडियल संक्रमण

क्लौस्टीडियल प्रजातियां एनएरोबिक जीवाणु है जो खाद्य जनित रोगों का कारक हो सकती है। यह जीवाणु पर्यावरण, मानव तथा पशु के जठरात्र के सामान्य निवासी के रूप में बड़े पैमाने में पाया जाता है तथा मल संदूषण के कारण खाद्यों में आ जाता है।

क्लौस्टीडियम जनित अन्य रोगों की तरह यह भी अपने एक्सोटोक्सिन के द्वारा भारी क्षति पहुंचाता है, खासकर जब भोजन में बड़ी मात्रा में पहुंच गया हो।

लक्षण – पेट में ऐंठन, दस्त, बुखार सामान्य तथा शरीर में प्रविष्ट होने के 24 घंटों के अंदर लक्षण दिखाई देने लगते हैं। बुजुर्ग और बच्चे सबसे जल्दी प्रभावित होते हैं।

4. बोटयूलिज्म

यह रोग क्लौस्टीडियम बोटयूलिनम प्रजाति के जीवाणु द्वारा उत्पन्न न्यूरोटॉक्सिन के संपर्क में आने से होता है। यह न्यूरोटॉक्सिन सात प्रकार का है। विषाक्त पदार्थ ही मानव में रोग उत्पन्न करते हैं। मनुष्य और पशु इन जीवाणु के स्पर्शोन्मुख वाहक और एम्पलीफायर हो सकते हैं परन्तु कमजोर प्रतिरक्षा तंत्र के चलते खुद भी रोग ग्रस्त हो सकते हैं। डब्बा बंद तथा एनएरोबिक वातावरण पैक में बंद खाद्य पदार्थों की यह आम समस्या है। इस रोग का कोई विशिष्ट जोखिम समूह नहीं है। यह किसी को भी, कभी भी हो सकता है।

लक्षण – कब्ज, मांसपेशियों में कमजोरी, सिर के हिलाने को नियंत्रित करने में असमर्थता, सुस्ती, मांसपेशियों में टोन तथा समन्वय की कमी, सांस लेने में संकट आदि विशेष हैं।

5. क्रिप्टोस्पोरिडियोसिस

क्रिप्टोस्पोरिडियोसिस एक बिजाणु बनाने वाला परजीवी है जोकि पर्यावरण एवं खाद्य पदार्थों, जैसे सलाद, सब्जी, मांस तथा मांस उत्पादों, दूध इत्यादि में व्यापक रूप से पाया जाता है। क्रिप्टोस्पोरिडियम पार्वम बछड़ों, भेड़ और हिरण में रोगजनक के रूप में महत्वपूर्ण माना जाता है तथा यही इसके स्पर्शोमुख पशु है जो जलाशयों में इस जीवाणु को मल द्वारा प्रसारित करते हैं।

प्रसारण – मानव संक्रमण या तो जानवरों के मल के साथ सीधा संपर्क में आने से दूषित या अपर्याप्त पके हुए भोजन के सेवन, बिना किटाणु शोधन किए गए पानी में तैरने से होता है।

लक्षण – 100 से भी कम गर्भित जीव नैदानिक रोग पैदा कर सकते हैं। रोग के लक्षण ज्ञात होने की अवधि (2–14 दिन) के बाद अत्यधिक स्व–सीमित दस्त, पेट दर्द, ऐंठन, हल्का बुखार, सात दिनों तक होते हैं। बाद में भूख की कमी, वजन घटना जोकि कमजोर प्रतिरक्षा प्रणाली वाले मरीजों में ज्यादा देखा गया है। इस रोग में इलाज के बाद भी रोग के दोबारा होने की उच्च संभावना देखी गई है तथा 14 दिनों के अंदर फिर दस्त का दौरा पड़ सकता है।

रोकथाम – इस जीवाणु को अति ठंडे तापमान पर रखने, 64 डिग्री से ज्यादा तापमान पर सुखाने तथा विकिरण द्वारा नष्ट किया जा सकता है, परन्तु यह उपभोग में लाए जाने वाले आम डिसइन्फेक्टेनट के लिए प्रतिरोधी है।

6. कैम्पायलोबैक्टिरियोसिस

पूर्व में इस जीवाणु को भोजन विषाक्ता के लिए बहुत कमतर आंका गया था। इसके मामले अपाशिकृत दूध तथा अनुचित और अपभरित पके मांस के सेवन से जुड़े हैं। यह जीवाणु व्यापक रूप से कई जानवरों में पाया जाता है। साधारणत: पशु में रोग का कोई

लक्षण नहीं दिखा परन्तु भेड़ों में इस जीवाणु से जुड़े गर्भपात के मामले देखे गए हैं। इस जीवाणु को शूकरों, पक्षियों, कुत्ते, बिल्लियों, अपाचिकृत दूध तथा संक्रमित जल के नमूनों से भी पृथक किया गया है। इस जीवाणु की दो प्रजातियां, कैम्पायलो-बैक्टर जेन्युनाई और कैम्पायलों बैक्टर कोलाई के 100 से भी कम व्यवहार्य जीव भी मानव मेंसक्रांमक सिध्द हो सकते हैं।

सारांश

इससे हमें यह संदेश मिलता है कि मानव जाति को पाश्चुरीकृत दूध का ही सेवन करना चाहिए और दूध के रख-रखाव पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

राजभाषा मुख्य समारोह - 2015 का शुभ आरम्भ करते हुए संस्थान निदेशक डा. ए.के. श्रीवास्तव

माईक्रोवेव (सूक्ष्म तरंग) प्रसंस्करण द्वारा खाद्य संरक्षण व पनीर की शेल्फ - लाईफ में वृद्धि

चित्रनायक, मंजुनाथ एम, पी. बर्नवाल, पी.एस.मिंज, अमिता वैराट एवं ए.के.सिंह

डेयरी अभियांत्रिकी विभाग, भाकृअनुप - राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल - 132001

मानव जीवन संचालन हेतु खाद्य पदार्थ अनिवार्य होते हैं, अत: सही समय पर उपभोग हेतु इनका संरक्षण व समुचित उपभोग भी आवश्यक है। खाद्य पदार्थों को ताजा व गर्म रखने के लिए अनेक विकसित तकनिकों का उपयोग किया जा रहा है और माइक्रोवेव (सुक्ष्म तंरग) उर्जा द्वारा खाने को गर्म करना वर्तमान समय में काफी उपयोगी तकनीक है। माइक्रोवेव आवन का प्रचलन काफी तेजी बढ़ रहा है। इस नई व उत्तम विकसित तकनिक द्वारा खाद्यय पदार्थ अच्छी तरह से पकाये जा सकते हैं। यह तकनीक कई मायनों में फायदेमंद एवं उपयोगी सिद्ध हुई है।

माइक्रोवेव प्रसंस्करण तकनीक

माइक्रोवेव तरंगों द्वारा भोजन पकाने की तकनीक में कम तेल की खपत होती है, जिससे स्वस्थ व उत्तम गुणवत्ता के खाद्यय पदार्थ प्राप्त होते हैं। ठंडे प्रदेशों व जाड़ों के मौसम में जब खाना तुरंत ही ठंडा हो जाता है तो इन हालातों में हर बार भोजन के पहले गैंस जलाकर या चूल्हों का प्रयोग कर खाने को गर्म किया जाता है। बार बार गैस चूल्हों पर खाना गर्म करने पर खाने का वास्तविक स्वाद खत्म हो जाता है व खाने का कुछ भाग जल भी जाता है। माइक्रोवेव इन सभी कमियों को दूर करती है। माइक्रोवेव ऑवन में खाना गर्म करने पर पूरा का पूरा खाना एक साथ गर्म होता है। इस तकनीक में सूक्ष्म उर्जा तरंगें एक समान रूप से पूरे भोजन के अंदरूनी भाग तक जाती हैं व ये तरंगे अपनी उर्जा व ऊष्मा भोजन के अणुओं को प्रदान कर उन्हें गर्म करती हैं। खाद्य पदार्थों को इस प्रकार सूक्ष्म तरंगों की ऊष्मा द्वारा गर्म करने पर उनके रंग, स्वाद गंध, ताजगी आदि गुणों पर कोई भी प्रतिकुल प्रभाव नहीं पड़ता है। आजकल लगभग हर रेस्टॉरेन्ट , बड़े-बड़े स्टार होटलों, घरों व अन्य कई जगहों तथा ऑफिस आदि में माइक्रोवेव ऑवन का प्रयोग बहुतायत में हो रहा है। इस तकनीक द्वारा खाने की गुणवत्ता पर कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ता है, जबकि सामान्य विधि से खाने को गर्म करने पर कई बार खाद्य पदार्थों की बर्तन की सतह पर जलकर चिपकने की समस्या या फिर जरूरत से अधिक गर्म हो जाने की समस्या होती है। पारम्परिक विधि से पहले के पके खाद्य पदार्थों को पुन:गर्म करते वक्त उसे छूकर ही उसके तापक्रम का पता लगाना पड़ता है या फिर समय का अनुभव व अंदाजा लगाकर गर्मी का पता लगाया जाता है। जबकि माइक्रोवेव ऑवन में समय को ऑटोमैटिक सेट करके ऑवन स्टार्ट भर करना होता है। तय किए गए निर्धारित समय के पश्चात माइक्रोबेव ऑवन स्वत: ऑफ हो जाता हैं और भोजन आवश्यकतानूसार ही गर्म होता हैं। माइक्रोवेव द्वारा भोज्य पदार्थों को ऊष्मा प्रदान करने हेतु समय पर निर्भर करता है। फ्रिज से निकालकर ठंढ़े खाद्यय पदार्थों को ऊष्मा प्रदान करने हेतु सामान्य (रूप से गर्म भोजन की तुलना में) से अधिक समय का निर्धारण करना होता है। समय के मान का निर्धारण सेकेंड मान में यथा 10, 20, 30, 40, 50, 60, सेकेंड में किया जा सकता है अथवा मिनट में भी किया जा सकता है। समय का निर्धारण पूर्ण रूप से भोज्य पदार्थों की स्थिति व उनके तापक्रम को ध्यान में रखकर किया जाता है।

सामान्यत: माइक्रोवेव की फ्रिक्वेंसी (आवृत्ति) 300 MHz से 300 GHz तक होती है। माइक्रोवेव वास्तव में विद्युत चुम्बकीय तरंगें होती हैं एवं इनके व्यवहार व गुण सामान्य प्रकाश की किरणों के समान ही होते हैं। ये भी प्रकाश की किरणों के समान ही होते हैं। ये भी प्रकाश की किरणों की भाँति सरल रेखा में गमन करती हैं व इनकी भी गति प्रकाश की किरणों के बराबर $3x10^8$ मीटर / सेकेंड ही होती है। जब खाद्य पदार्थों को ऑवन में

डाला जाता है और ओवन को ऑन किया जाता है तो उसमें उर्जा स्थानान्तरण की तीन घटनाएँ यथा परावर्तन, अवशोषण एवं ट्रान्समिशन होती हैं। सूक्ष्म तरंगों द्वारा खाद्य पदार्थों को उर्जा स्थानांतरित करने के दौरान तीन प्रक्रियाएँ होती हैं, जिनके द्वारा तरंगों की ऊष्मा खाद्य पदार्थों में अवशोषित होती है। सूक्ष्म तरगों के परावर्तन, अवशोषण व ट्रान्समिशन इन तीनों प्रक्रियाओं द्वारा ये तरंगें अपनी ऊष्मा उर्जा को खाद्य पदार्थों के अंदरूनी भागों तक आसानी से पहुँचाने में सफल रहती है। खाद्य पदार्थों में आयनिक गुण होते हैं, जो धनात्मक (+ve) एवं ऋणात्मक (-ve) ध्रुव बनाते हैं। ये ध्रुव माइक्रोवेव की आवृत्ति के ही अनुसार तेजी से गतिमान हो जाते हैं , जैसे ही इनपर माइक्रोवेव तरंगें पड़ती हैं। खाद्य पदार्थों में उपस्थित धनात्मक व ऋणात्मक ध्रुव खाद्य पदार्थों पर पड़ने वाली सूक्ष्म तरंगों की आवृति में ही गतिमान (vibrate)रहते हैं, जिससे खाद्यय पदार्थों के आपसी अणुओं के मध्य अत्यधिक उष्मा पैदा (300 MHz से 300 GHz) होती है। खाद्य पदार्थों के अणुओं के सूक्ष्म तरंगों का अनुसरण उसी आवृत्ति में करने के कारण ये तीव्र घर्षण पैदा करते हैं, जिसके फलस्वरूप खाद्य पदार्थों में ऊष्मा पैदा होती है और खाद्य पदार्थ गर्म हो जाते हैं। जिन खाद्य पदार्थों में जल की मात्रा अधिक होती हैं, तो उनमें उपस्थित जल (जो ध्रुवीय पोलर) जिनमें धनात्मक (H+) व ऋणातमक (0H-) ध्रुव उपस्थिति रहते हैं। ये (H+ व OH-) ध्रुव जलीय खाद्यय पदार्थों पर सूक्ष्म तरंगों में गतिशील हो जाते हैं। ध्रुवों के अत्यधिक आवृति में गतिमान होने के कारण उनके अणुओं के मध्य घर्षण पैदा होता है और ठीक उसी प्रकार जलीय खाद्यय पदार्थों को ऊष्मा उर्जा प्राप्त होती है। इस तकनीक में पूरा का पूरा खाद्य पदार्थ समान रूप से गर्म करते वक्त बर्तनों की सतहों पर जलकर खाद्य पदार्थों के चिपकने (स्केल फॉर्मेशन) की समस्या बिलकुल नहीं होती है।

पनीर पर शेल्फ लाइफ वृद्धि हेतु माइक्रोवेव प्रसंस्करण तकनीक

पनीर पर सूक्ष्म तरंगों द्वारा उपचारित किया गया। बंद कंटेनर पनीर के साथ साथ यीस्ट व मोल्ड की मात्रा में कमी पाई गई। पनीर के नमूनों को PP5 (पोलीप्रोपीलीन प्लास्टिक कन्टेनर) के कंटेनर में खोलकरर माइक्रोवेव द्वारा उपचारित किया गया। बंद कंटेनर में उपचारित करने पर पाया गया कि पनीर में उपस्थित माइक्रोबियल काउन्ट, यीस्ट व मोल्ड की मात्रा में कुछ खास अंतर नहीं पड़ा और पनीर 6-7 दिनों में खराब हो गए। पी.पी.5 के कंटेनर में पनीर को खुले में माइक्रोवेव द्वारा उपचारित करने पर उत्साहजनक परिणाम प्राप्त हुए व पनीर की शेल्फ लाइफ बढ़कर 12-14 दिनों तक हो गई। एक दो नमूने तो 15 दिनों तक (रिफ्रिजेरेशन तायक्रम पर) खराब नहीं हुए। पनीर रेफ्रिजेरेशन तापक्रम पर सामान्यत: 7 दिनों तक अच्छा रहता है। माइक्रोवेव उपचार हेतु पैकेजिंग मैटेरियल के चयन के लिए पनीर के नमूनों को HDPE (हाई डेन्सिटी पॉली इथिलीन) के कंटेनर में रखा गया , पर HDPE के पैकेट कई जगहों से पिघल गए। उन्हीं पनीर के नमूनों को PP5 के कंटेनर में खोलकर (ढ़क्कन हटाकर) माइक्रोवेव उपचारित करने पर टीपीसी (टोटल प्लेट काउन्ट), यीस्ट व मोल्ड तीनों में कमी आई। अत: माइक्रोवेव उपचार हेतु पी.पी.5 कंटेनर ही उपयुक्त पाए गए। खाद्यय संरक्षण व शेल्फ लाइफ वृद्धि हेतु माइक्रोवेव प्रसंस्करण तकनीक एक सफल व उपयोगी तकनीक सिद्ध होती जा रही है। पनीर के साथ साथ यह तकनीक अन्य डेरी उतपादों हेतु भी उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

कैसीन से व्युत्पन्न जैव सक्रिय पेप्टाइड्स और उनका मानव स्वास्थ्य पर प्रभाव

अलका परमार एवं राजेश कुमार

डेयरी रसायन विज्ञान विभाग, भाकृअनुप - राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान करनाल - 132001

प्रोटीन हमारे भोजन का एक आवश्यक हिस्सा है। प्रोटीन पोषण, ऊर्जा और स्वास्थ्य के विकास के संदर्भ में एक आवश्यक स्रोत है। प्रोटीन विशालकाय अणु होते हैं जो कि एमिनो एसिड नामक छोटी इकाइयों के साथ बंधे होते हैं। एक या अधिक आपस के एमिनो एसिड की जंजीरों को एक प्रोटीन अणु कहते हैं जिसमें एमिनो एसिड एक विशिष्ट क्रम में व्यवस्थित रहते हैं। दूध प्रोटीन मुख्य रूप से दो प्रकार के हैं, कैसिइन और व्हेय प्रोटीन। कैसीन प्रोटीन दूध पीएच 4.6 के पास प्रेसिपिटेशन के रूप में परिभाषित किये गये हैं। दूध में कैसीन चार मोनोमर्स, अर्थात अल्फा एस-1, अल्फा एस-2, बीटा और कपा कैसीन द्वारा एकत्रित एक समुच्चय के रूप में मौजूद होते हैं।

कैसीन रोगाणुरोधी, ऑक्सीकरणरोधी, थ्रोम्बिन विरोधी, उच्चरक्तदोबरोधी और प्रतिरक्षण विक्षायक कार्यों के साथ-साथ महत्वपूर्ण जैव सक्रिय पेप्टाइड का एक प्रभावी स्रोत भी हैं।

जैव सक्रिय पेप्टाइड्स

जैव सक्रिय पेप्टाइड्स विशिष्ट जठरांत्र पथ में मौजूद प्रोटिनेस के द्वारा टूटने से उत्पन्न होते हैं और केवल प्रोटीन स्रोत से टूटने के बाद ही विशिष्ट जैव कार्यक्षमता प्रदान करते हैं। जैव सक्रिय पेप्टाइड्स में आमतौर पर अनु प्रति 3-20 अमीनो एसिड के अवशेष शामिल होता है। एक जैविक प्रतिक्रिया के लिए जैव सक्रिय पेप्टाइड्स को आंतों की उपकला को पार करना होगा और रक्त परिसंचरण में प्रवेश करना या विशिष्ट उपकला सेल रिसेप्टर साइटों पर सीधे बाँधना होगा। खाद्य पदार्थों का पेट और खाद्य प्रसंस्करण में उपस्थित एंजाइम प्रतिक्रिया निष्कर्षण विज्ञप्ति लघु श्रृंखला पेप्टाइड का निस्तार करता है जो जैव सक्रिया पेप्टाइड का एक प्रभावी स्रोत है।

कैसीन व्युत्पन्न जैव सक्रिया पेप्टाइड निष्कर्षण करने की विधि

1. पाचन एंजाइमों द्वारा हाइड्रोलिसिस
2. प्रोटियोलिटिक स्टार्टर बैक्टीरिया द्वारा किण्वन
3. सूक्ष्मजीवों या पौधों से प्राप्त एंजाईमों द्वारा हाइड्रोलिसिस
4. पाचक एंजाइम द्वारा स्टार्टर बैक्टीरिया और हाइड्रोलिसिस द्वारा किण्वन के युग्म

जैव सक्रिय पेप्टाइड निष्कर्षण की महत्ता

कैसीन व्युत्पन्न जैव सक्रिया पेप्टाइड, उत्कृष्ट कार्यात्मक गुणों, प्राकृतिक प्रचुरता के कारण खाद्य उद्योग के लिए महत्वपूर्ण उपकरण बने हैं। इनका महत्व निम्न प्रकार है :

1. हृदय प्रणाली पर प्रभाव

हृदय प्रणाली पर प्रभाव मुख्य रूप से उच्च रक्त दाबरोधी और थ्रोम्बिन विरोधी और ऑक्सीकरणरोधी विशिष्ट गुणों के कारण है, जिसमे थ्रोम्बिन विरोधी सक्रियता मुख्यताः कपा कैसीन पेप्टाइड क्रम (106-116), (फिएट & जोल., 1989) मानव फाइब्रिनोजेन गामा-श्रृंखला में मेल खाता है। कपा कैसिइन प्लेटलेट एकत्रीकरण प्रतिबंध से रक्त के सूकंदन को रोकता है। रक्तचाप नियंत्रण आंशिक रूप से रेनिन एंजियोटेनसिन प्रणाली पर निर्भर करता है। रेनिन एंजियोटिनसिन-1 का निस्तार करता है, और यह एंजियोटेनसिन परिवर्तित एंजाइम (ऐस) द्वारा सक्रिय पेप्टाइड हार्मोन एंजियोटेनसिन द्वितीय में तब्दील हो जाता है जो कि रक्तवाहिनियों का सिकुड़न करता है। कैसिइन के ट्रीपटिक हाइड्रोलाइजेट इन विट्रो ऐस की गतिविधि को बाधित

कर देते हैं, जिससे उच्च रक्तचाप समस्या पूर्ण रूप से समाप्त हो जाती है। ऑक्सीकरणरोधी जैव सक्रिय पेप्टाइड ऑक्सीडेटिव प्रक्रियाओं को कम करने के लिए मानव शरीर में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, प्रोटीन ऑक्सीडेटिव प्रक्रियाओं को तीन अलग तरीकों से संशोधित कर सकते हैं, 1) एक विशिष्ट एमिनो एसिड का ऑक्सीडेटिव संशोधन, 2) मुक्त कर्णों की पेप्टाइड दरार की मध्यस्थता, 3) प्रोटीन क्रॅस-लिंकेज। अल्फा एस-1 कैसिइन अंश 144-149 एवं बीटा कैसिइन अंश 98-105 मुख्यतः ऑक्सीकरणरोधी गतिविधि में वृद्धि करते हैं (मरथा फलां एट अल, 2009)

2. तंत्रिका तंत्र पर प्रभाव

पेप्टाइड्स, तंत्रिका प्रणाली में एक सक्रिय भूमिका निभाते हैं, जिनमें मुख्यतः ओपिऑइड रिसेप्टर, स्तनधारियों में तंत्रिका अंतः स्रावी प्रणाली, आंत्र पथ में स्थित होते हैं। प्रमुख खोजों में सब से पहले ओपिऑइड पेप्टाइड्स में तथाकथित बीटा कसो मॉर्फिन, जो कि बीटा कैसिइन अपूर्णांक 60 और 70 वे अवशेष के बीच, मुख्या अंश (60-63), (60-64), (60-65), (60-70) (स्मच्वी ओर गोब्बेत्तति, (2000), जिनका गामा-पेप्टाइड्स के रूप में विवरण किया गया है। जिनमें सबसे प्रबल पेंटा पेप्टाइड बीटा कैसिइन अंश (60-64) है (फिएट एट अल, 1993)। दूध से ओपिऑइड अल्फा एस-1, अल्फा एस-2, बीटा, और कपा कैसिइन के इन विट्रो प्रोटियोलिसिस से प्राप्त किये जा सकते हैं।

3. प्रतिरक्षा प्रणाली पर प्रभाव

प्रतिक्रियाशील प्रतिरक्षा पेप्टाइड्स मैक्रोफेज की फगोसिटिक गतिविधि को प्रोत्साहित कर सकते है व ट्यूमर कोशिकाओं के विकास को निषेध कर सकते हैं। प्रतिरक्षा गतिविधि को अंतर्जात और बहिर्जात प्रतिरज्ञा प्रतिक्रिया केंद्र के विनियमन हैं, जिनमें इंटरफेरॉन, इंटरल्यूकिन, और बीटा-एंडोर्फिन शामिल है। मुख्य रूप से मानव दूध और दूध कैसीन से बहिर्जात पेप्टाइड. प्रतिरक्षा पेप्टाइड शारीरिक कार्यों की एक विस्तृत श्रृंखला है, यह केवल जानवरों में शरीर की प्रतिरक्षा विनियमन में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा वृद्धि नहीं कर सकते हैं, लेकिन यह भी लिम्फोसाइट प्रसार और बृहत भक्षकोशिका फगोसीटोसिस बढ़ाने के लिए शरीर को प्रोत्साहित करने के लिए शरीर में सुधार बाहरी रोगजनकों के लिए सामग्री का प्रतिरोध करते हैं।

4. जठरांत्र पथ पर प्रभाव

अल्फा एस-2 कैसीन की उपस्थिति में रोगजनक सूक्ष्म जीवो, के विकास में इन विट्रो अंतर्बाधा होती है। अल्फा एस-2 कैसीन का कटायनिक अंश (165-203), कसोसिडिन-1 के रूप में जाने जाते हैं, जो कि एस्केरिया कोलाई और एस-कार्नोसस के विकास को बाधित कर सकते हैं (जुचत एट अल., 1995)। कइमोसिन की मध्यस्थता के द्वारा कैसीन के पाचन से प्राप्त "कसोसिडिन" पहला रक्षा पेप्टाइड था जो शुद्ध किया गया यह स्टेफाइलोकोकस, स्ट्रप्टोकोकस, डिप्लोकॉमस निमोनिया, बेसिलस स्पीशीज की गतिविधि को रोकता है (लाहोव और रेगेलसों, 1996)। आंत में प्रोटीन का एंजाइमी पाचन मुक्त अमीनों एसिड और पेप्टाइड्स रिलीज करने के लिए करते हैं। कई अध्ययनों में एमिनो एसिड के अलावा प्रोटीन और पेप्टाइड्स सीधे पशु शरीर, कुछ विशेष अतिरिक्त प्रभाव जिससे पशुओं का विकास किया जा सकता है। कम प्रोटीन आहर वैसे संतुलित एमिनो एसिड प्रोटीन आहार उत्पादन के स्तर को प्राप्त करने में असमर्थ हैं।

निष्कर्ष

पाचन तंत्र के माध्यम से एंजाइम प्रोटीन की मानव घूस, कम पेप्टाइड रूपों के बहुमत के एक छोटे से अनुपात को अवशोषित पाच्य और मुक्त अमीनो एसिड के रूप में अवशोषित कर पा रही है। इसके अलावा परीक्षण दर्शाता है कि तेजी से पचाने और अधिक अवशोषित करने के लिए पेप्टाइड्स और मुक्त एमिनों एसिड से जैविक शक्ति, सक्रिया पेप्टाइड का अनंत आकर्षण पता चला है। अध्ययन में पाया गया कि सक्रिय पेप्टाइड को एक दवा के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। वर्तमान में, दवाओं, चिकित्सीय उपचार से संबंधित अधिकांश रोगों के लिए

सैकड़ों पेप्टाइड्स का उत्पादन इन विट्रो हाइड्रोलिसिस से किया जा रहा है।

संदर्भः

1. फिएट, ए.एम. और जोल, प. (1989)। आण्विक और सेलुलर बायोकैमिस्ट्री, 87 (1), 5-30
2. फिएट, ए एम, मिग्लिओरे, डी, और जोल, प. (1993)। डेयरी साइंस जर्नल, 76 (1), 301-310
3. लहोव, ई और रैजिलस्न, डब्ल्यू (1996)। फूड एंड केमिकल टॉक्सिकोलॉजी, 34 (1), 131-145
4. स्मची, ई. और गोब्बेट्टी, म. (2000)। फूड माइक्रोबायोलॉजी 17 (2), 129-141
5. जुचत, एच. डी., रैदा, एम., अदेर्मन्न, के., मागेर्ट, एच जे और फोर्सस्मान, डब्ल्यू जी (1995)। एफ ई बी एस पत्र, 372 (2-3), 185-188
6. मरथा फलां, आइसलिंग अहेरने, (2009) इंटरनेशनल डेयरी जर्नल 19, 643-654

थारपारकर गायों का समूह

साहीवाल गायों का समूह

पशु प्रजनन एवं आनुवांशिकी

स्वरूपा क्लोन कटड़ा

सांड व्यायामशाला

कृत्रिम गर्भाधान–एक वरदान

अनुश्री मेश्राम, पुष्पराज शिवहरे, अर्चना वर्मा, ए.के.गुप्ता एवं अजय प्रताप सिंह

भाकृअनुप – राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल – 132001

कृत्रिम गर्भाधान क्या है?

नर पशु का वीर्य कृत्रिम ढंग से एकत्रित कर मादा के जननेन्द्रियों (गर्भाशय ग्रीवा) में यन्त्र की सहायता से कृत्रिम रूप से पहुँचाना ही कृत्रिम गर्भाधान कहलाता है।

कृत्रिम गर्भाधान से लाभ

1. उन्नत गुणवत्ता के सांड़ों का वीर्य दूरस्थ स्थानों पर प्रयोग करके पशु गर्भित करना।
2. एक गरीब पशुपालक सांड को पाल नहीं सकता, कृत्रिम गर्भाधान से अपने मादा पशु को गर्भित करा कर मनोवांछित फल पा सकता है।
3. इस ढंग से बड़े से बड़े व भारी से भारी सांड के वीर्य से उसी नस्ल की छोटे कद की मादा को भी गर्भित कराया जा सकता है।
4. विदेश या दूसरे स्थानों पर स्थित उन्नत नस्ल के सांड़ों के वीर्य को परिवहन द्वारा दूसरे स्थानों पर भेजकर, पशु गर्भित कराये जा सकते हैं ।
5. कृत्रिम गर्भाधान के माध्यम से वीर्य संग्रह किया जा सकता है। इस प्रकार एक सांड से वर्ष में कई हजार पशु गर्भित होंगें और इससे उन्नत सांडों की कमी का समाधान भी होगा।
6. रोग रहित परीक्षित सांडों के वीर्य प्रयोग से मादा को नर द्वारा यौन रोग नहीं फैलते।
7. यदि गर्भाधान कृत्रिम रूप से कराया जाए तो मादा यौन रोग से नर प्रभावित नहीं होगा क्योंकि सहवास नैसगिक नहीं होता।
8. कृत्रिम गर्भाधान करने से पहले जननेन्द्रियों का परीक्षण किया जाता है। जिससे नर या मादा में बांझपन समस्या का पता लगाया जा सकता है।
9. उन्नत सांड को चोट खाने या लंगड़ेपन के कारण मादा को गाभिन नहीं कर सकता, कृत्रिम गर्भाधान विधि द्वारा इसके वीर्य का उपयोग किया जा सकता है।
10. कृत्रिम गर्भाधान द्वारा मादा की गर्भधारण क्षमता में वृद्धि होती है क्योंकि कृत्रिम गर्भाधान अतिहिमीकृत प्रणाली से 24 घन्टे उपलब्ध रहता है।
11. इस विधि के द्वारा प्रजनन व संतति परीक्षण का अभिलेख रख कर शोध कार्य किये जा सकते है।
12. गर्मी में आई मादा के लिए गर्भाधान हेतु सांड को तलाश नहीं करना पड़ता। हिमकृति वीर्य हर समय उपलब्ध

होता है।

13. चोट खाई लूली-लंगड़ी मादा जो नैसर्गिता अभिजनन से गर्भित नहीं किये जा सकता परन्तु कृत्रिम गर्भाधान से गर्भधारण कराया जा सकता है।

14. इच्छित प्रजाति, गुणों वाले सांड जैसे कि अधिक दूध उत्पादक अथवा कृषि हेतु शक्तिशाली अथवा दोहरे उद्देश्य प्रजाति से गर्भित करा कर इच्छित संतति प्राप्त कर सकते है।

15. यह नैसर्गिक अभिजनन से अधिक सस्ता है, क्योंकि उन्नत सांड़ों से नैसर्गिक अभिजनन हेतु आज जहां 100 से 150 रूपया प्रति सेवा व्यय करना पड़ता है, तथा स्वंय का श्रम व्यय अलग होता है, वहीं कृत्रिम गर्भाधान पद्धत्ति से प्रति 30 से 50 रूपये धनराशि व्यय करके द्वार पर ही सेवा उपलब्ध हो जाती है।

16. इस विधि से संकर प्रजाति या नयी प्रजाति तैयार की जा सकती है।

17. यह दुग्ध उत्पादन वृद्धि हेतु सर्वोत्तम साधन है क्योंकि संकर प्रजनन में प्राप्त बछिया जल्दी गर्मी पर आकर ढ़ाई वर्ष में ब्या जाती है तथा माँ से अधिक दूध देती है।

कृत्रिम गर्भाधान की सफलता का आधार

1. पूर्ण प्रशिक्षित व योग्य कृत्रिम गर्भाधान कार्यकर्त्ता ।
2. कृत्रिम गर्भाधान उपकरण हिमकृत वीर्य आदि की उपलब्धता।
3. मादा के ऋतुकाल का पूर्ण ज्ञान व जानकारी जो इन्सेमिनेटर को दी जानी है वह समय से दी गई है या नहीं।
4. पशुपालक को पशु का पूर्ण ध्यान देना व स्वाथ्य के प्रति समझ रखना।
5. पशु का प्रजनन रोगों से मुक्त तथा उसका स्वास्थ्य उन्नत होना, अर्थात पशु में यौन रोग न हो तथा उसका भार (प्रौढावस्था का 60 से 70 प्रतिशत भार) एवं आहार व्यवस्था हो।

मुख्य सुझाव

1. गर्मी के मध्य या अंतिम काल में कृत्रिम गर्भाधान करना चाहिए।
2. पशुओं में अक्सर गर्मी सांयकाल 6 बजे से प्रात: 6 बजे के मध्य आती है।
3. भैंस अधिकतर अगस्त से जनवरी तथा गाय अधिकतर जनवरी से अगस्त माह के मध्य गर्मी पर आती है वैसे उत्तम वैज्ञानिक ढंग से पालन पोषण से वर्ष भर में गर्मी में आ सकती है।
4. कृत्रिम गर्भाधान के तुरन्त उपरान्त पशु को मत दौड़ायें।
5. बच्चा देने के बाद से तीन माह के अन्दर पुन: गर्भित करायें।
6. कृत्रिम गर्भाधान के समय शांत वातावरण हो तथा पशु को तनाव मुक्त रखें।
7. कृत्रिम गर्भाधान करने के पहले व बाद में पशु को छाया में रखें।
8. पशु को सुबह व सायंकाल के वक्त ही गर्भधारण करवाएं।

प्रदेश की उन्नत गौ नस्लें

साहीवाल:- इसका जन्म स्थान पश्चिमी पाकिस्तान के मांटगो हैं परन्तु उत्तरप्रदेश के चक्रगजरिया पशुधन प्रक्षेत्र लखनऊ में सरंक्षण दिया जा रहा है। इसका लंबा सिर, औसत आकार का माथा, सींग छोटे तथा मोटे, टांगें छोटी, थन पूर्ण विकसित व बड़े,

तालिका : प्रादेशिक नस्लों के गुण

नस्ल	प्रथम ब्याने की आयु (माह)	दो ब्यांत का मध्यकाल(माह)	दुग्ध मात्रा एक ब्यांत काल (कि.ग्रा.)	औसत दुग्ध उत्पादन प्रतिदिन (कि.ग्रा.)	अधिकतम उत्पादन प्रतिदिन (कि.ग्रा.)
हरियाणा	58.8±0.4	19.5±0.5	1136±34	4.0 ली	6.4 ली
साहीवाल	40.2+0.2	15.0+0.6	15.0+0.6	5.8 ली .	8.2 ली
अवर्णित	59±2.5	18.7±1	18.7±2	1.6 ली .	3.5 ली

रंग लाल या हल्का लाल तथा कभी-कभी सफेद धब्बे। उन्नत पोषण से 2700 से 3200 कि.ग्रा.एक ब्यांत में दुग्ध की मात्रा तथा अधिकतम 16 से 20 लीटर दूध देने की क्षमता रखती है।

हरियाणा:- इसका जन्म स्थान रोहतक, हिसार, दिल्ली तथा पश्चिमी उत्तर प्रदेश हैं इसका चेहरा लंबा व संकरा, माथा चपटा, गलकंलब छोटा, रंग सफेद या हल्का भूरा, पूंछ लंबी, पैर मजबूत व लंबे। यह नस्ल कृषि कार्य हेतु अत्यंत उपयुक्त है व दूध भी देती है। भली प्रकार पोषण से 10 से 15 लीटर प्रतिदिन दूध देने की क्षमता रखती है।

क्या करें

1. आवास हवादार, छायादार व भूमि समतल हो
2. हरा चारा के साथ संतुलित आहार दें
3. समय-समय पर संक्रमण रोगों से बचाव हेतु टीका लगवाये।
4. ज्यादा दूध देने वाले पशु को दिन में तीन बार दुहा जाए।

क्या न करें

1. गर्भावस्था के अन्तिम तीन महीने आहार एक बार ना देकर विभाजित करके दें।
2. गंदा पानी प्रयोग न करें स्वच्छ व साफ पानी ही उपयोग किया जाए।
3. दुधारू पशु को दौड़ाये या भगाए नहीं, इससे अयन में चोट लग सकती है।
4. बच्चा देने के तुरन्त बाद ठंडें पानी से नहलाना व पानी पिलाना हानिकारक है।

तालिका : ऋतुकाल/गर्मी के लक्षण

क्रं0	लक्षण	प्रारम्भिक	मध्यकाल	अन्तिम
1.	बर्ताव	अन्य पशुओं से अलग रहेगी	पुन: झुण्ड में मिल जायेगी परन्तु बर्ताव अलग दिखेगा	सामान्य हो जायेगी
2.	उद्विग्नता	उद्विग्न दिखेगी	उद्विग्न हो जायेगी कभी-कभी दूसरे पशुओं पर चढ़ेगी	धीरे-धीरे सामान्य हो जायेगी।
3.	भूख	कम खायेगी	बहुत कम	सामान्य
4.	रम्भाना	कभी-कभी	अधिकतर	न के बराबर
5.	दुग्ध उत्पादन	कम	बहुत कम	सामान्य होने लगता है
6.	चाटना (दूसरे पशुओं को)	चाटेगी	चाटेगी	कभी-कभी
7.	सांड के चढ़ने या दूसरे पशु के चढ़ने पर शांत खड़े रहना	कभी-कभी दिखेगा	अक्सर सामान्य प्रक्रिया	न के बराबर
8.	मूत्र त्याग	रह-रह कर मूत्र त्याग	रह-रह कर मूत्र त्याग	सामान्य मूत्र त्याग
9.	योनि मार्ग	हल्का सूजन	सूजन	सामान्य होने लगता है
10.	योनि मार्ग की श्लेष्मा	गीली व गुलाबी	चमकीली गुलाबी लाल	सामान्य होना
11.	शरीर का तापक्रम	सामान्य	सामान्य से 1-2 डि.से.अधिक	सामान्य होना

पालतू पशुओं में गर्भ निदान की विभिन्न विधियाँ

आलोक कुमार यादव, अनुपमा मुखर्जी, अर्चना वर्मा एवं ए.के. गुप्ता

भाकृअनुप - राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल - 132001

विभिन्न पालतू पशुओं में गर्भ वाली मादा की पहचान प्रारंभिक अवस्था में किया जाना, एक महत्वपूर्ण कदम है। गर्भ निदान, पशु में विकसित होने वाले लक्षणों, मलाशय व योनि मार्ग आधारित तथा प्रयोगशाला जांच के द्वारा किया जाता है।

1. गर्भवती के लक्षण

- मदचक्र बंद हो जाता है।
- गर्भवती मादा स्वभाव एवं व्यवहार में सीधी हो जाती है।
- पशु का शारीरिक भार तथा पेट का आकार बढ़ जाता है।
- गर्भावस्था के अंत तक स्तन में परिवर्तन हो जाता है तथा अंतिम 15 दिनों के दौरान थनों में उभार आ जाता है।

2. मलाशय आधारित जांच

यह जांच गोपशु, भैंस व घोड़ी में ही संभव होती है तथा विश्वसनीयता, सरलता व कम खर्च के आधार पर यह सबसे अच्छी विधि मानी जाती है। इस विधि में एक माह के गर्भ से लेकर अंत तक की जांच (अनुभव के आधार पर) के साथ-साथ अंडाशय व गर्भाशय आदि में किसी असामान्य स्थिति का पता भी किया जा सकता है। गोपशुओं में गर्भाशय विकास निम्नानुसार होता है: दो माह की गर्भावस्था में भ्रूण का आकार 4-5 से.मी. होता है तथा गर्भाश्य सींग या हार्न में फिसलन का आभास मिलता है।

तीन से चाह माह की गर्भवती में गर्भ धारण करने वाले हार्न का आकार बढ़ जाने का आभास मिलता है जिसकी तुलना खाली हार्न से की जा सकती है। गर्भ के 90 दिन पश्चात् गर्भाशय के आकार में काफी वृद्धि हो जाती है जिसमें अंगुलियों से थपथपाने पर तैरते हुए भ्रूण का आभास किया जा सकता है। चौथे माह के प्रारंभिक दिनों में विकसित हो रहे भ्रूण पत्रों का अनुभव होने लगता है जोकि माह के अंत में काफी बड़े हो जाते है। इस अवधि में गर्भाशय रक्तवाहिनी का विकास भी हो जाता है जिसको अंगूठे व अंगुली से स्पर्श करने पर नाड़ी चलने का आभास होता है। पांच माह से अधिक के गर्भ की जांच में यह ध्यान रखें कि पांचवें माह के दौरान गर्भाशय नीचे बैठ जाता है जिसका आभास थोड़ा कठिनाई व अनुभव आधारित है। साढ़े छह माह के गर्भ का निदान गर्भाश्य के आकार, भ्रुणपत्रों के स्पर्श, रक्तवाहिनी की नाड़ी गति तथा गर्भाशय मुख तक हुए खिंचाव के साथ-साथ भ्रूण के अंगों के स्पर्श से किया जा सकता है।

इस जांच के दौरान गर्भाशय में रूग्णताजन्य परिवर्तनों के साथ विभेदात्मक बिंदुओं को ध्यान में रखकर गर्भ निदान किया जाना चाहिए। पीवयुक्त गर्भाश्य होने पर गर्भाशय के दोनों हार्न सहित गर्भाशय के आकार में समान वृद्धि होती है, उसमें भ्रूणपत्र नहीं होते जबकि गर्भ में एक ही हार्न का विकास होता है तथा भ्रूणपत्र पाए जाते है। पीवयुक्त गर्भाशय में पीव की उपस्थिति योनि मुख पर भी देखी जा सकती है।

3. योनिमार्ग आधारित जांच

गर्भ के दौरान उपयुक्त आकार के स्पैकुलम को योनि में डालकर देखने से योनि भित्ति का रूखापन व सिकुड़न देखी जा सकती है। गर्भ के 60 दिन होते-होते गर्भाशय मुख पर भूरी व मजबूत सी दिखने वाली सील भी देखी जा सकती है।

4. प्रयोगशाला जांच विधियां

इन विधियों में अल्ट्रासोनिक उपकरण, प्रिगनेंट मेयर सीरम टेस्ट, ओवीस्कैन से परीक्षण, आदि प्रमुख प्रयोगशाला विधियां हैं। इनमें से कुछ उपयोगी विधियों का वर्णन निम्नानुसार है:-

- उपर्युक्त विधियों में अल्ट्रासोनिक उपकरण का प्रयोग

शूकर, भेड़ व बकरी में गर्भ निदान हेतु उपयुक्त माना गया है। यह विधि भ्रूण के लिए सुरक्षित होती है तथा 30-50 दिन की गर्भावस्था का 90 प्रतिशत सही-सही निदान किया जा सकता है। इस विधि में मादा के मलाशय में उपकरण डालकर भ्रूण की हृदयगति, नाड़ी व एकत्रित द्रव से उत्पन्न परिवर्तित तरंगों की फ्रीक्वेंसी के आधार पर निदान किया जा सकता है। इस कार्य हेतु प्रशिक्षित तकनीशियन की आवश्यकता होती है।

- बेरियम क्लोराइड द्वारा 31-200 दिनों की गर्भावस्था का निदान किया जा सकता है तथा जांच से 95-100 प्रतिशत सही निदान नतीजे मिलते हैं। इस जांच के लिए 1 प्रतिशत बेरियम क्लोराइड की 5-6 बूंद गर्भवती मादा के 5 मि.ली. मूत्र में मिलाते हैं एवं दूसरी परखनली में शुष्क मादा के मूत्र में भी बेरियम क्लोराइड की समान मात्रा डालते हैं। देखने पर गर्भवती मादा का मूत्र यथावत दिखाई पड़ता है जबकि शुष्क मादा के मूत्र में सफेद अवक्षेप बन जाता है। यह जांच केवल उन्हीं पशुओं पर की जानी चाहिए जो चरागाह में चरने के लिए न जाकर बाड़े में ही हार्मोन रहित आहार पर पाले जा रहे हों क्योंकि चारे के साथ घास में इस्ट्रोजेन की उपस्थिति के कारण शुष्क पशुओं में मूत्र में बेरियम क्लोराइड जांच पर अवक्षेप बनता है।
- प्रिगनेंट मेयर सीरम जांच केवल घोड़ी में गर्भावस्था के निदान हेतु काम आती है। इस विधि से निषेचन के 50-85 दिनों के बाद गर्भ निदान किया जा सकता है। इस परीक्षण के लिए गर्भवती घोड़ी के 10 मि.ली. सीरम को ऐसी मादा खरगोश जो विगत 30 दिनों से नर से अलग रखी गई हो, के कान की शिरा में इंजेक्शन लगा दिया जाता है। इंजेक्शन के 48 घंटे उपरान्त खरगोश का वध करके या शल्य क्रिया द्वारा अंडाशय में गहरे लाल रंग के पुटक की उपस्थिति देखी जा सकती है।
- ओवीस्कैन द्वारा भेड़, गाय, घोड़ी व कुत्ती आदि में गर्भ निदान अत्यन्त सरलता से सही-सही किया जा सकता है। इस यंत्र से 30 दिन के गर्भ का पता सरलता से लगाया जा सकता है।

भारत में भैंसों की प्रमुख नस्लें

अविनाश सिंह, आलोक कुमार यादव एवं आई.डी. गुप्ता

पशु अनुवांशिकी एवं प्रजनन विभाग, भाकृअनुप - राष्ट्रीय डेरी अनुसन्धान संस्थान, करनाल - 132001

मुर्रा

यह विश्व की सबसे अच्छी भैंस की दुधारू नस्ल है। यह लगभग भारत के सभी हिस्सों में पायी जाती है। इसका गृह क्षेत्र हरियाणा के रोहतक, हिसार, जिन्द व करनाल जिले तथा दिल्ली व पंजाब है। इसका विशिष्ट रंग जेट काला है। इस नस्ल की मुख्य विशेषता छोटे मुड़े हुए सींग तथा खुर व पूँछ के निचले हिस्से में सफेद धब्बे का होना हैं।

औसत दुग्ध उत्पादन/ब्यांत-	1678 क्रि.ग्रा. 307 दिनों में
प्रथम व्यात की उम्र-	40 से 45 माह
दो व्यात के बीच का अंतराल-	450 से 500 दिन

सुरती

भैंस की इस नस्ल का गृह क्षेत्र गुजरात है। यह भूमिहीन, छोटे व सीमान्त किसानों में बहुत प्रचलित हैं इसका कारण इसकी छोटी शारीरिक बनावट है। इस नस्ल की सींग हाँसियाकार होती है।

औसत दुग्ध उत्पादन/ब्यांत	1400 कि.ग्रा. 352 दिनों में
दूध वसा की मात्रा	8 से 9 %
प्रथम व्यात की आयु	40 से 50 माह
दो व्यात के बीच का अंतराल	400 से 500 दिन

जाफराबादी

इस नस्ल का प्रजनन प्रक्षेत्र गुजरात के कच्छ व जामनगर जिले है। यह भैंस की सबसे भारी नस्ल है। इसके अग्र सिर में सफेद निशान 'नव चन्द्र' के नाम से जाना जाता है।

औसत दुग्ध उत्पादन/ब्यांत	2150 कि.ग्रा. 305 दिनों में
दुग्ध वसा की मात्रा	7- 8 %
प्रथम ब्यांत की आयु	36 से 40 माह
दो ब्यांत के बीच का अंतराल	390 से 480 दिन

मेहसाना

इस नस्ल का गृह क्षेत्र गुजरात है यह मध्यम आकार की शांत स्वभाव की नस्ल है। इस नस्ल की उत्पत्ति गुजरात की सुरती नस्ल व मुर्रा नस्ल के संकर से हुई है।

दुग्ध उत्पादन/ब्यांत-	1200 से 1500 कि.ग्रा.
दुग्ध वसा की मात्रा-	लगभग 7 %

भदावरी

यह विश्व की एक विलक्षण नस्ल है, क्योंकि समस्त गोजातीय जातियों में सबसे अधिक दुग्ध वसा की मात्रा इसके दुग्ध में होती है। अतः इसे भारत के घी का कटोरा के नाम से भी जाना जाता है। इस नस्ल का गृह क्षेत्र उत्तर प्रदेश की भदावरी तहसील जिला आगरा एवं जिला इटावा है।

औसत दुग्ध उत्पादन/ब्यांत-	800 कि.ग्रा.
दुग्ध वसा की मात्रा-	लगभग 13 %

गोदावरी

इस नस्ल का गृह क्षेत्र आंध्रप्रदेश के पूर्व व पश्चिम गोदावरी जिले है, यह नस्ल अच्छे दुग्ध उत्पादन एवं अच्छी दुग्ध वसा के लिए जानी जाती है। इस नस्ल में कई गो जातिया रोगों के विरूद्ध प्रतिरोधक क्षमता होती है। इस नस्ल की उत्पत्ति मुर्रा नरो की सहायता से मूल निवासी मादाओं के संकर से हुई है, यह प्रक्रिया ग्रेडिग अप के नाम से जानी जाती है।

औसत दुग्ध उत्पादन/ब्यांत	2150 कि.ग्रा. 305 दिनों में

नागपुरी

यह नस्ल दोहरे उपयोग की हैं अर्थात नर यातायात हेतु उपयोगी हैं तथा मादा अच्छी दुधारू हैं। इस नस्ल का गृह क्षेत्र महाराष्ट्र है।

औसत दुग्ध उत्पादन/ब्यांत 1060 कि.ग्रा.

सांभलपुरी

इस नस्ल का गृह क्षेत्र उड़ीसा का सांभलपुर जिला है, यह नस्ल छत्तीसगढ़ के बिलासपुर जिले में भी पायी जाती है। यह नस्ल दोहरे उपयोग वाली है।

दुग्ध उत्पादन/ब्यांत 2300 से 2700 कि.ग्रा. 340 से 370 दिनों में

तराई

यह मध्यम आकार की नस्ल है तथा कम चारे में भी पर्याप्त मात्रा में दूध देती है। यह नस्ल उत्तर प्रदेश के तराई क्षेत्रों में तथा उत्तराखंड में पाई जाती है।

औसत दुग्ध उत्पादन- 1030 कि.ग्रा.

टोड़ा

इस नस्ल का नाम दक्षिण भारत के टोड़ा आदिवासियों के नाम पर है। इस नस्ल का गृह क्षेत्र तमिलनाडू की नील गिरी पहाड़ियां है। इस नस्ल की उत्पत्ति प्रतिकूल परिस्थितियों में अनुकूलन से हुई है।

औसत दुग्ध उत्पादन/ब्यांत 500 कि.ग्रा.

दुग्ध वसा की मात्रा 8 %

साउथ कनारा

यह मध्यम आकार की प्रचलित नस्ल है। यह नस्ल कर्नाटक के बंगलौर जिले के समुद्रतटीय क्षेत्रों में पायी जाती है।

औसत दुग्ध उत्पादन 600 से 800 कि.ग्रा.

185 से 260 दिनों में

सांड प्रबंधन एवं देखभाल संबंधी महत्वपूर्ण विवेचना

विजय कुमार

पशु प्रजनन एवं सम्वर्धन विभाग, उ प्र पं दीनदयाल पशुचिकित्सा, मथुरा, उत्तर प्रदेश

किसी भी डेरी फार्म की सफलता बहुत हद तक वहां की सांड प्रबंधन पर निर्भर करता है। बहुत मोटे और भारी सांडों का वीर्य उत्पादन क्षमता के लिए असतोंषजनक होता है। साथ ही साथ इन सांडों का गायों के साथ प्रजनन क्रिया करना भी आसान नहीं होता है। प्रजनन संबंधित सांडों को नियमित रूप से व्यायाम करवाने से वीर्य की गुणवत्ता तथा उत्पादन में सुधार होता है। हल्का व्यायाम सांडों को काफी भारी होने से रोकता है। सांडों को अलग से निर्मित सांड घर में ही रखना चाहिए। इन सांडों के लिए घरों में खुले तथा ढ़के क्षेत्र होने चाहिए। सांड घर ठंडा तथा वहां पानी पीने की व्यवस्था होनी चाहिए। सांडों को संतुलित आहार देना चाहिए जिसमें समुचित ऊर्जा, प्रोटीन, खनिज तत्व और विटामिन होना चाहिए। सांडों को उसके प्रजनन काल में तथा उससे पहले भरपूर हरा चारा देना चाहिए। अधिकतर सांड हिंसक प्रवृति के होते हैं अतः उसे नाक में धातु के रिंग से नियंत्रित करना चाहिए। सांडों को एक बार में बहुत अधिक खाने को नहीं देना चाहिए अपितु सांडों को अंतराल पर थोड़ा-थोड़ा करके राशन देना चाहिए।

सांड के लिए चयनित बछड़ो को अलग बाड़े में ही रखना चाहिए। इन बाड़ों में बछड़ों के खान-पान तथा अन्य देख-भाल संबधी बातों का विशेष ध्यान देना चाहिए। बछड़ों के शारीरिक भार को देखते हुए अलग-अलग आहार देना चाहिए। बछड़ों को उसके जन्म से दो घंटे के अन्दर खीस देना चाहिए। बछड़ों को खीस देना कई रोगो से लड़ने की क्षमता प्रदान करता है। बछड़ों के लिए पानी पीने की व्यवस्था होनी चाहिए। बछड़ों को 7 से 10 दिनो के अन्दर संघनित आहार (काल्फ स्टार्टर) देना शुरू करना चाहिए। बछड़ों के संघनित आहार में लगभग 20 प्रतिशत प्रोटीन होनी चाहिए। बछड़ों के आहार मे रेशे दार चारा भी

चित्र 1: व्यायाम करते सांड

देना चाहिए। बछड़ों के सात महीने का होते होते उसे 1 कि.ग्रा. संघनित आहार देना चाहिए। सात महीनो के उपरांत बछड़ों को धीरे-धीरे हरा चारा देना चाहिए। बछड़ों को पर्याप्त मात्रा में रकानिड़ा मिश्रण और विटामिन ए देना चाहिए। बछड़ों को सांड घर मे भेजने से पहले मुहखुर, रिंडरपेस्ट और अन्य बिमारीयों से बचाव के लिए टीकाकरण करवाना चाहिए।

सांड प्रबंधन मुख्यतः तीन अवधियों में किया जाता है।

1. प्रजनन पूर्व प्रबंधनः

व्यायाम, ब्रिडिंग पूर्व प्रबंधन का सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा है। आनुवांशिक काल में सांडों में काफी दम होना चाहिए साथ ही

चित्र 2: साहीवाल सांड

साथ सांडों को इस अवस्था में मीलों चलना पड़ता है। सांडों का शारीरिक दम एकाएक ही प्राप्त नहीं किया जा सकता है, इसलिए फार्म प्रबंधक को चाहिए की सांडों के समुचित व्यायाम का प्रबंध करे। शारीरिक रूप से बेहतर सांडों में काम भावना अच्छी पाई जाता है। रोशनी और पानी की व्यवस्था सांड बाड़ा के विपरीत छोड़ो पर करने से सांडों का स्वत: ही काफी व्यायाम हो जाता है। प्रजनन पूर्व प्रबंधन की अवधि 2 महीनो का होना चाहिए।

2. प्रजनन काल प्रबंधन:

युवा सांडों का प्रजनन अवधि अधिक से अधिक 60 दिन होना चाहिए। इससे सांडों का अति-उपयोग, वजन घटना, काम भावना कम होना जैसे समस्याओं से निदान होता है। अत्यधिक कम वजन युवा सांडों के विकास को रोकता है और ऐसे दुर्बल सांड भविष्य में भी उपयोग के नहीं रहते हैं। प्रजनन में उपयोग किए जाने वाले सांडों को अतिरिक्त दाना मिश्रण देना चाहिए।

सांडों को रखने वाले फार्म का एक आसान नियम यह है कि सांड को उतने ही गायों के साथ रखना चाहिए जितने माह की उस सांड की आयु हो। एक से अधिक सांड रखने वाले फार्म को एक बाड़े में समान आयु और शारीरिक संरचना वाले सांडों को ही रखना चाहिए। एक ही बाड़े में युवा सांड को पूर्ण विकसित अनुभवी सांडों के तुलना में गायों के साथ प्रजनन क्रिया में भाग लेने का अवसर नही मिलता है। गायों के बाड़ों मे 21 से 28 दिनो के अंतराल पर सांडों को बदल-बदल कर उपयोग करना चाहिए। इससे सांडो पर से अत्यधिक प्रजनन क्रिया में भाग लेने के दबाव से राहत मिलता है।

3. प्रजनन काल उपरांत प्रबंधन:

ब्रिडिंग अवधि के बाद 8 महीनों तक ब्रिडिंग काल उपरांत प्रबंधन में युवा सांडों के उच्च पोषण का ध्यान रखना चाहिए ताकि उसके शरीर का सतत् विकास हो पाए। सांड के पोषण का स्तर उसके वर्तमान शारीरिक संरचना तथा भविष्य के परिपक्व शारीरिक संरचना को ध्यान मे रखकर करना चाहिए। इस अवधि में सांडों को गायों से अलग रखना चाहिए। ठंड के महीनो में सांडों को शीतलहर से बचा कर रखना चाहिए अन्यथा अत्यधिक ठंड सांडों के प्रजनन क्षमता को कम करती है।

सांड प्रबंधन संबधी अन्य महत्वपूर्ण बातें

आवास स्थान

सांडो को आरामदेह और हवादार सांड शेड में रखना चाहिए। सांड शेड साफ एवं स्वास्थ्यकर ढंग से प्रबंधित होना चाहिए। सांड को अलग से 15' X 10' आकार के बाड़ा में रखना चाहिए। बाड़ा का सतह ठोस और फिसलन रहित होना चाहिए। ठंड तथा गर्मी के महीनों में बचाव की व्यवस्था होनी चाहिए। पानी पीने की उत्तम व्यवस्था होनी चाहिए। सांड आवास स्थान के पास घने पेड़ ठंडक के लिए लगे होने चाहिए। सांडो के आवास में इस ढंग से प्रबंधन करें कि वो आपस में लड़ ना सके। सांड शेड वीर्य संग्रह एवं व्यायाम स्थल के पास होने चाहिए।

अण्डकोष माप :

युवा सांडों के जनन क्षमता का निर्धारण बहुत हद तक अण्डकोष परिधि से हो जाता है। वांछनीय अण्डकोष परिधि बेहतर जनन क्षमता जैसे सांडों मे यौन परिपक्वता का जल्दी आना, सांडों के बछड़ियों में यौवन का जल्दी आना और सांडों से प्राप्त गायों में जल्दी गर्भावस्था में आना।

लिंगमुंडच्छद की सफाई

सांडो की सफाई वीर्य को बाल और गोबर से संदूषित होने से बचाता है। लिंगमुंडच्छद के पास बढ़े बालों को 1-2 सेंटी मीटर तक छोटा कर देना चाहिए।

सांडो का संगरोध

नए सांडों को बाहर से खरीद के उपरांत फार्म पर पुराने सांडों के साथ मिलाना नहीं चाहिए। नए सांडो को 2 महीनो तक सबसे अलग जगह पर रखना चाहिए। इस अवधि मे सांडो मे विभिन्न संक्रामक रोगो के जॉच और उसके रोग मुक्त पाए जाने पर ही पुराने सांडो के साथ रखना चाहिए।

शुक्राणु धारिता : वीर्य उर्वरता का आधार

विवेक कुमार सिंह, सुनीता मीणा, धीर सिंह एवं सुरेश कुमार अत्रेजा

पशुजीव रसायन प्रभाग, भाकृअनुप - राष्ट्रीय डेरी अनुसन्धान संस्थान, करनाल - 132001

भारत की 70 प्रतिशत से ज्यादा जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है और पशुपालन उनकी आय का एक मुख्य स्रोत हैं। नवीनतम तकनीकीकरण व औद्योगिकीकरण के बावजूद, आज भी संपूर्ण भारत में पशुओं का उपयोग न सिर्फ दूध बल्कि पारम्परिक विधि द्वारा कृषि में होता है। हांलाकि पशुओं में प्रजनन प्राकृतिक व कृत्रिम दोनों ही तरीके से किया जाता हैं। प्राकृतिक प्रजनन की अपेक्षा कृत्रिम प्रजनन का उपयोग पशुओं में ज्यादा लाभकारी है। कृत्रिम गर्भाधान द्वारा अच्छी नस्ल के चुनिन्दा नर के शुक्राणुओं से थोड़े समय में ज्यादा से ज्यादा मादाओं को गर्भवती किया जा सकता हैं। यही नहीं, इन शुक्राणुओं को किफायती ढंग से लम्बी दूरी तक ले जाना भी संभव है तथा नर की मृत्यु के कई वर्षो बाद तक उसके शुक्राणुओं का उपयोग भी संभव हैं।

भारत में पशुधन की नस्ल सुधार व उत्पादकता बढ़ाने में सहायता प्रजनन का महत्वपूर्ण स्थान है किन्तु सहायता प्रजनन की सफलता कई कारकों पर जैसे की शुक्राणु की उर्वरता, गर्भाधान के लिए सही समय का चुनाव, एवं सहायता प्रजनन मे निपुण व्यक्ति के चुनाव पर निर्भर करती हैं।

शुक्राणुओं की उर्वरता ही उसकी गुणवत्ता का सर्वश्रेष्ठ परीक्षण है। प्रायः शुक्राणु की गुणवत्ता के लिए उर्वरता का सीधा आंकलन संभव नहीं हो पाता इसलिए अनेक मानकों जैसे कि शुक्राणुओं की गतिशीलता, जीव्यता, प्लाविका झिल्ली की अखण्डता व संरचना तथा डी.एन.ए. की अखण्डता इत्यादि से शुक्राणु की गुणवत्ता का पता लगाया जाता हैं। यद्यपि ये सभी मानक शुक्राणु की उर्वरता से सहसंबंधित है लेकिन शुक्राणु धारिता ही वास्तविकता में शुक्राणु की उर्वरता से सीधा संबंध रखता हैं। स्तनधारियों में निषेचन जटिल आणविक घटनाओं के फलस्वरूप नर व मादा के जनन कोशिका (अण्डे व शुक्राणु) के संजोग से होता हैं। स्तनधारियों के शुक्राणुओं में अण्डे को

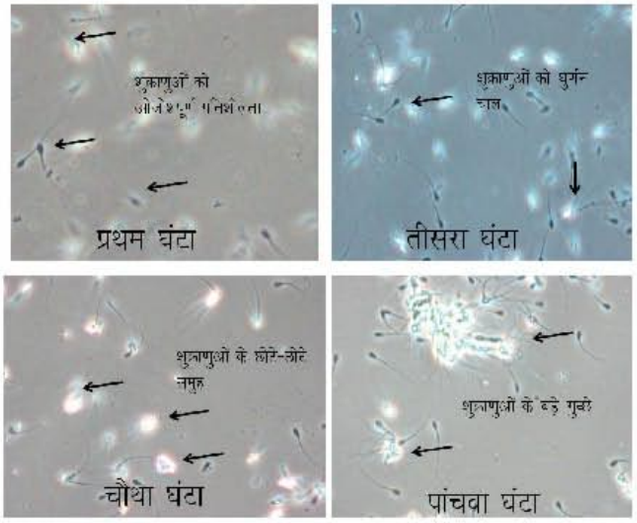

निषेचित करने की क्षमता मादा के जननांग में अनेक जैव रासायनिक व दैहिकी रूपान्तरण की प्रक्रिया के बाद प्राप्त होती हैं। इस प्रक्रिया को "शुक्राणु धारिता" कहते है।

शुक्राणुओं में अण्डे को निषेचित करने की क्षमता दो जटिल प्रक्रियाओं के फलस्वरूप होती है। पहली प्रक्रिया "शुक्राणु धारिता" में शुक्राणु कोशिका झिल्ली में अनेक बदलाव होते हैं। परिणामस्वरूप ये शुक्राणु दूसरी प्रक्रिया में जाने योग्य बन जाते हैं। दूसरी प्रक्रिया में शुकाग्र प्रक्रिया सम्पन्न होती है जिसमें शुकाग्र द्रव्य का स्रावण होता हैं। ये पाचक द्रव्य अण्डे के बाहर उपस्थित कोशिका दीवार को कमजोर करके उसमें शुक्राणुओं का भेदन सरल करते हैं। इसके बाद ही शुक्राणु अण्डे के सम्पर्क में आ पाता है और उसे निषेचित कर पाता हैं।

प्रयोगशाला मे कृत्रिम रूप से शुक्राणु धारीता को प्रेरित करने के लिए ताजा स्खलित वीर्य, हिमीकृत वीर्य यहां तक की अधिवृषण में उपस्थित शुक्राणुओं का भी प्रयोग किया जा सकता हैं। अनुकूल तापमान व आर्द्रता वाले वातावरण में शुक्राणुओं को अनुकूल माध्यम में, जिसमें ऊर्जा स्रोत, गोजातीय सीरम

एलब्यूमिन, कैल्सियम, बायकोर्बोनेट आदि का समावेश हो, रखा जाता है। धारिता प्रेरक, जैसे की हिपेरिन को माध्यम में मिलाने पर कृत्रिम रूप से धारिता प्रेरित हो जाती हैं।

शुक्राणु धारिता की प्रक्रिया में सर्वप्रथम शुक्राणु प्लविका झिल्ली से कोलेस्ट्रोल का बहि:स्त्रवण होता है तथा कोलेस्ट्रोल/ फस्फिकृत वसा का अनुपात घट जाता हैं। परिणामस्वरूप प्लाविका झिल्ली की तरलता बढ़ जाती हैं। प्लाविका झिल्ली की प्रवाहिता में आए बदलाव के कारण शुक्राणु झिल्ली की पारगम्यता भी बढ़ जाती है। फलस्वरूप कैल्सियम व बायकोर्बोनेट अणुओं का अंत: प्रवाह होता है। कोशिका द्रव्य में बढ़े ये घटक कोशिका झिल्ली के विभव को बदल देते है तथा कोशिकीय संकेतन को प्रारंभ कर देते हैं। इस क्रम में एडीनाईल साइक्लेज का उत्प्रेरण होता है और साइक्लिक ए.एम.पी. की सान्द्रता शुक्राणुओं में बढ़ जाती हैं।

साइक्लिक ए.एम.पी. प्रोटीन काइनेज–ए व सम्भवत: दूसरे काइनेजों को सक्रिय करता है। ये काईनेज शुक्राणुओं में उपस्थित प्रोटीनों के टाइरोसिन अमीनों अम्ल को फास्फीकृत करते हैं। ये विशिष्ठ फास्फीकृत प्रोटीन शुक्राणुओं में अनेक जैव रसायनिक व दैहिक क्रियाओं के लिए उत्तरदायी हैं। स्तनधारीयों के शुक्राणु, धारिता के बाद अत्याधिक सक्रिय हो जाते है तथा शुक्राग्र प्रक्रिया के लिए तैयार हो जाते हैं। शुक्राणु प्रक्रिया के बाद ही शुक्राणु अण्डे को निषेचित करने में सक्षम हो पाते हैं।

प्रयोगशाला में शुक्राणु की उर्वरता के परीक्षण के लिए शुक्राणु धारीता का आंकलन एक सरल व उपयुक्त प्रक्रिया है। सर्वप्रथम ताजा स्खलित/हिमीकृत वीर्य को शुक्राणुओं के लिए निर्मित विशिष्ठ तरल माध्यम एस.पी.टाल्प में विस्तारित करते हैं। विस्तारित वीर्य को 1200 परिक्रमा प्रति मिनट की गति से घुमाकर दो बार साफ किया जाता है तथा शुक्राणु की सघनता 100 x 10^6/मिली लीटर तय कर ली जाती हैं। तत्पश्चात शुक्राणुओं के माध्यम में हिपेरिन, जो कि एक मानित शुक्राणु धारिता प्रेरक है, मिलाकर कृत्रिम वातावरण (38.5°c तापमान, 5% कार्बनडाइआक्साइड की सांद्रता तथा 85% तुलनात्मक आर्द्रता) में रखा जाता हैं। हिपेरिन डालने के प्रत्येक घंटे के पश्चात शक्राणुओं की प्रगामी गतिशीलता की जांच सूक्ष्मदर्शी द्वारा की जाती हैं। प्रथम घंटे में ही शुक्राणुओं की गतिशीलता ओजोशपूर्ण हो जाती है जो कि दूसरे घंटे तक कायम रहती हैं। प्राय: यह भी देखा गया है कि 3 घंटे के पश्चात प्रगामी गतिशीलता घूर्णन चाल में बदल जाती हैं। चौथे घंटे के बाद शुक्राणुओं का अग्रभाग एक दूसरे से चिपक कर छोटे–छोटे समुहों का निर्माण करता हैं। पाचवें घंटे के बाद ये गुच्छे बड़े हो जाते हैं और 6 घंटे के अंत तक सभी शुक्राणुओं की प्रगामी गतिशीलता लगभग थम जाती है। यद्यपि भैंसों में शुक्राणु धारिता 6 घंटे में सम्पन्न होती है, यह समय अलग अलग भांति के जानवरों के लिए अलग है। जैसे कि बैलों के शुक्राणुओं में धारिता सिर्फ चार घंटे में ही सम्पन्न हो जाती है। धारिता के आंकलन के लिए शुकाग्र प्रक्रिया प्रेरित की जाती है। सिर्फ उन शुक्राणुओं में जिनमें धारिता सम्पन्न हुई हो शुक्राग्र प्रक्रिया प्रेरित होती है। शुक्राग्र प्रक्रिया प्रयोगशाला में लाइसोफोस्फुटिडिल कोलीन (एल.पी.सी.) जो कि शुकाग्र क्रिया का मानित प्रेरक है, को शुक्राणु संवर्धन माध्यम से मिलाकर किया जाता है। एल.पी.सी. को शुक्राणु संवर्धन में मिलाकर 15 मिनट तक कृत्रिम वातावरण में रखा जाता है। उर्पयुक्त नमूने का अभिरंजन ट्रिपान बल्यू नामक जीव्यरंजक में किया जाता है। ट्रिपान बल्यू मृत शुक्राणुओं के भीतर जाकर उसे रंजित करता है जबकि जीवित शुक्राणु इस रंजक को अंदर जाने नहीं देता अत: अरंजित रह जाता है। ट्रिपान बल्यू में रंजित शुक्राणु की एक बूंद को कांच की स्लाइड पर लेकर उसे फैला लेते है तथा हवा में सुखा लेते है। इसके बाद इन स्लाइडो को कपलिन जार, जिसमें जिमसा रंजक भरा होता है, में डुबो कर 90 मिनट के लिए रख दिया जाता है। जिमसा रंजित स्लाइडस को पानी में 3–4 बार डुबोकर साफ करने के उपरान्त सूक्ष्मदर्शी द्वारा इनका आंकलन किया जाता है। शुक्राणु जिनमें शुक्राग्र प्रक्रिया नहीं हुई हो, शुक्राग्र झिल्ली मौजूद होती है जो जिमसा से रंजित होने के फलस्वरूप गुलाबी नजर आती है, परन्तु जिन शुक्राणुओं में धारिता सम्पन्न हो जाती है उनमें शुक्राग्र प्रक्रिया के परिणामस्वरूप शुक्राग्र भित्ती अलग हो जाती

है अतः रंजित नही हो पाते है। रंजित शुक्राणुओं के प्रकार को देखकर जीवित व धारित शुक्राणुओं का प्रतिरक्त निकालना संभव है।

प्रयोगशाला में शोध से यह पता चला है कि शुक्राणु धारिता का समय विजातीय पशुओं से भिन्न होता है। यही नही शोध द्वारा ये भी पाया गया है कि हिमीकृत शुक्राणुओं में धारिता के लिए लगने वाला समय लगभग 2 घंटे कम होता है। अतः प्रयोगशाला में धारीता आंकलन करते वक्त इन सभी बातों का विशेष ध्यान रखना चाहिए।

भविष्य में बढ़ती जनसंख्या के कारण बढ़ती मांग को पूरा करने के लिए सहायता प्रजनन का एक प्रमुख स्थान होगा। हमारा सुझाव है कि कृत्रिम शुक्राणु धारिता तकनीक द्वारा सहायता प्रजनन में प्रयोग आने वाले वीर्य की उर्वरता का निर्धारण अति लाभकारी है। ऐसा करने से न सिर्फ गर्भाधान दरों में वृद्धि होगी बल्कि विफल गर्भाधान से होने वाली हानियों में भी कमी होगी । समृद्ध भारत का सपना तभी पूरा होगा जब राष्ट्र के किसान खुशहाल होगें।

जब तक आपके पास राष्ट्र भाषा नहीं, आपका कोई राष्ट्र भी नहीं ।

मुंशी प्रेम चन्द

दुधारू पशुओं में गर्भाशयशोध

पुष्पराज शिवहरे, एम.भक्त, ए.के. गुप्ता, अनुश्री मेश्राम, एन के वर्मा एवं ए के चक्रवर्ती

डेरी पशु आनुवांशिकी एवं प्रजनन प्रभाग, भाकृअनुप - राष्ट्रीय डेरी अनुसन्धान संस्थान, करनाल - 132001

गर्भाश्यशोध पशु के ब्याने के तीन हफ्ते के अन्दर ही गर्भाश्य के इन्डोमेट्रियम और पेशीय परत के सूजने की स्थिति को कहते हैं। गर्भाशोधकी उग्रत के आधार पर इसे विभिन्न वर्गों में बांटा गया है। विषाक्त जच्चा गर्भाश्यशोध या उग्र गर्भाश्यशोध या पशु के ब्याने के 10 दिन के अन्दर होता है और इसके लक्षण होते है बुखार, अवसाद, भूख न लगना और दुग्ध उत्पादन में गिरावट।

क्लीनिकल /नैदानिक गर्भाश्यशोध कम तीव्र / उग्र होता है और कोई विशेष लक्षण भी नहीं होते हैं। ये पशु के ब्याने के 11 से 21 दिन के अन्दर होता है इसके बाद यदि गाय 21दिन के बाद भी संक्रमण नहीं निकाल पाती तो उसे क्लीनिकल गर्भाश्यशोध हो जाता है। गर्भाश्यशोध एवं अन्तः गर्भाश्यशोध क्रमशः 40 प्रतिशत एवं 20 प्रतिशत अधिक उत्पादन करने वाली गायों में होता है। भारत में 30 प्रतिशत गर्भाश्यशोध गया है। गर्भाश्यशोध उत्पादन और प्रजनन क्षमता को बुरी तरह प्रभावित करता है और इससे बहुत नुकसान होता है। गर्भाश्याशोध से न केवल सर्विस पीरियड, सूखा बाल एवं ब्याने के अन्तराल में वृद्धि होती है बल्कि दुग्धकाल में भी गिरावट होती है। यह पाया गया है गर्भाश्यशोध के इलाज में लगभग 207 रूपये प्रतिगाय खर्च होता है। जबकि दुग्धकाल खर्च 5760 रूपये प्रति गाय होता है।

गर्भाश्यशोध के कारण

गर्भाश्यशोध के कई जोखिम कारक है जैसे जुड़वा बच्चे होना, डिस्टोकिया मृत प्रसव, गर्भपात, जैर गिरना,फूल दिखना, प्रजाति ज्वर और किटोसिस है। मौसम के अलावा, ब्यांत भी गर्भाश्यशोध को काफी प्रभावित करती है गर्भाश्यशोध सर्दियों और पहले ब्यांत के समय जो शरीरिक स्थिति होती है उसका गर्भाश्यशोध होने में असर पड़ता है। गायों का बहुत भारी होना गर्भाश्यशोध को बढ़ा देती है। यदि सभी जोखिम कारकों की तुलना की जाये तो जैर न गिरना 50–90 प्रतिशत तक गर्भाशशोध का कारण है।

कारणात्मक जीव

गर्भाश्यशोध के बहुत से कारणात्मक जीव है जैसे जीवाणु, विषाणु, फंफूद, प्रोटोजोआ इत्यादि। ब्यांत के वक्त या ब्यांत के बाद गर्भाश्य मुख्यः जीवाणु और फंफूद से संक्रमित हो जाता है। इस समय गायों की प्रतिरक्षा शक्ति कमजोर होती है यदि योनिमुख या योनि की चोट संक्रमण की मुख्य वजह है तो ब्यांत के समय बाहरी सहायता करते वक्त गर्भाश्य के बाहरी जीव प्रवेश कर जाते है। शरीर में होने वाली कई बिमारियों (सिस्टोमिक डिजिजेज) से भी गर्भाश्य में संक्रमण से हो सकता है जैसे इंफोक्सियस बीवाइन राईनोट्राकियाइटिस, बोवाइन वायरल डायरिया एवं लेप्टोस्पाइरोसि।

योन रोग जैसे कैम्पाइलोबैक्टीरियोसिस (वीब्रियोसिस) और ट्राईकोमोनियासिस से संक्रकित सांड द्वारा प्राकृतिक प्रजनन के दौरान भी संक्रमण मादा के प्रजनन में प्रवेश कर सकता है।

निदान

क्षेत्रीय स्तर पर गुदा परीक्षण और गर्भाश्य स्राव का परीक्षण सबसे अधिक गर्भाश्यशोध के निदान के लिये उपयोग में लाया जाता है। सामान्य स्थिति में योनि स्राव का रंग भूरे लाल से सफेद होता है और इसमें कोई गन्ध नहीं होती है। लेकिन गर्भाश्यशोध में योनि स्राव बदबुदार पीपदर, जलीय एवं भूरे लाला रंग का होता है। प्रभावित गाय को दुग्ध दोहक गन्ध दोहन या सफाई के दौरान बड़ी आसानी से पहचाना जा सकता है क्योंकि स्राव बहुत ही बदबूदार होता है। अन्य नैदानिक संकेत है

बुखार,अवसाद, भूख न लगना, भोजन में अरूचि और दुग्ध उत्पादन में गिरावट है। गुदा परीक्षण के दौरान गर्भाश्य द्रव से भरा प्रतीत होता है और कई बार गर्भाश्य तनावयुक्त या नहीं भी हो सकता। पीपदार गर्भाश्यशोध द्रव को गर्भाश्यशोध में दबाव डाल कर बाहर निकाला जा सकता है । बड़ी गायों में झूलता हुआ गर्भाशय पेट के उदर भाग तक पहुंच जाता है जिसे टटोलना मुश्किल हो जाता है।

उपचार

गर्भाश्यशोध का इलाज मुख्यत: एंटीबायोटिक दवाओं और हार्मोन्स या दोनो का संयोजन से किया है। एंटोबोयटिक या तो प्रणाली बद्ध तरीके से देते हैं या फिर सीधे गर्भाश्य में स्थानीय देते हैं। बिगड़ी हुई स्थिति में इनके साथ सहायक उपचार भी करते हैं। जैसे एंटीइनफलोमेटरी दवाएं एवं शिराओं में चढ़ाया जाने वाला तरल पदार्थ। एंटीबायोटिक उपचार तभी सफल होगा तब तक गर्भाश्य से भरा हुआ तरल पदार्थ पूरी तरह से निकाल नहीं दिया जाता। आदर्श उपचार ऐसा होना चाहिए जिससे सभी हानिवर्ध जीवाणु निकल जाऐ और गर्भाश्यशोध कोई क्षति न पहुंचे।

गर्भाश्य संकूचन (यूटेराइन कांटैक्टर)

ये दवाईयों के मुख्यत: गाये के संक्रमित गर्भाश्य से भरे पदार्थ को बाहर निकालने में सहायता करती है। गर्भाश्य से भरे पदार्थ को बाहर निकालने में विभिन्न दवाओं का उपयोग किया जाता है जो कि निम्नलिखित हैं।

आक्सीटोसिन

ये व्यापक रूप से स्वीकार किया गया है कि ऑक्सीटोसिन ब्याने के 24 – 48 घंटे बाद गर्भाश्य संकुचन करता है। इसलिये उन गायों में जिनमें गर्भाशशोध होने की संभावना ज्यादा होता है उनमें ब्याने के तुरन्त बाद ही ऑक्सीटोसिन दे दिया जा सकता है।

कैल्शियम

कैल्शियम देने का मुख्य उद्देश्य गर्भाश्य की चिकनी पेशियों का संकुचन बढ़ना होता है, ब्याने के 1, 2 दिन बाद गायों में कैल्शियम में कमी हो जाती है क्योकि कैल्शियम कोलैस्ट्रम के जरिए बाहर निकलता है। जिसकी वजह से गर्भाश्य में नाल अन्दर ही रह जी है, गर्भाश्य पुन: स्थिति में देर से आता है और गर्भाश्यशोध का कारण बनता है। गर्भाश्य से ग्रसित गाय जो इस बीमारी के कोई लक्षण नहीं दिखा रही है। उसे 60 से 100 ग्राम कैल्शियम 2–4 दिन तक खिलाना चाहिए।

ग्लूकोज

शुष्क पदार्थ के सेवन की कमी से दुग्ध उत्पादन करने वाली गायों से ब्यांत के दौरान नकरात्मक ऊर्जा संतुलन होता है गर्भाश्य संक्रमण नियंत्रण में बाधा आती है। गर्भाश्यशोध ग्रसित बाय को संक्रमण से बचाने के लिए प्रोपाइलीन लाइकोल या प्रोवियोनोट दिया जाता है। कैल्शियम प्रोपियानेट 1 पौंड या 455 ग्राम पानी में मिलाकर देना एक प्रभावी उपचार है।

एंटीबायोटिक चिकित्सा

एंटीबायोटिक जो गर्भाश्य के उपचार में प्रयोग में लाई जाती है जो निम्न है :

पैनिसलीन

ब्यांत के बाद होने वाले गर्भाश्यशोध में सबसे ज्यादा उपयोग में आने वाली दवा है। क्योकि ये गर्भाश्य की सभी परतों को पार कर जाती है और इसकी लागत भी कम है।

प्राकेन पेनिसलीन जी

21000 IU/कि.ग्राम की दर से 3–5 दिन तक मांस पेशी से देना चाहिए। 4 दिन तक दुग्ध प्रयोग में नहीं लाना चाहिए और इसका मांस 10 दिन तक उपयोग में नहीं लाना चाहिए।

एम्पीसिलीन

10–11 मि.ग्राम किलोग्राम की दर से 3–5 दिन तक दे सकते हैं और इस दवा के प्रयोग के बाद दुग्ध 2 दिन तक और मांस 1 दिन तक प्रयोग में नहीं लाना चाहिए।

अक्सीटेट्राईक्लिन

ब्यांत के बाद होने वाले गर्भाश्यशोध के उपचार में आक्सीटट्राईसाइक्लिन 10 मि.ग्रा./कि.ग्रा. शारीरिक भारत की

दर से मांस में या शिरा में देते हैं। लेकिन ये दवा कम मात्रा में गर्भाश्य में पहुंच पाती है। इसीलिये इसे कम ही प्रयोग में लाया जाता है। गर्भाश्यशोथ का प्रजनन एवं दुग्ध उत्पादन में होने वाले नकारात्मक प्रभाव से बचने के लिये कभी क्लोरटेट्रासाइक्लिन 5 ग्राम हफते में दो बार दो हफ्ते तक देते हैं।

सेफ्टीफर

सेफ्टीफर सिफेलोस्पोटन की तीसरी पीढ़ी की दवा है। इसका दुग्ध में कोई प्रभाव नहीं होता हैं एवं मांस में तीन दिनों तक रहती है।

सेफ्टीफर सोडियम

1 मि.ग्रा. / कि.ग्रा. की दर से या सेफ्टीफर हाईड्रोक्लोराईड 2-2 मि.ग्राम / किलोग्राम की दर से मोस में तीन चार दिनों तक देते हैं। सेफ्टीफर क्रिस्ट्रलाइन अम्लयुक्त भी 6-6 मि.ग्राम. / कि.ग्राम की दर से खाल के नीचे एक बार देते हैं।

बचाव :

गर्भाश्यशोथ के बहुत से कारण हैं। जोखिम कारकों को उचित पहचान करके प्रबन्धन कार्यान्वयन में उचित परिवर्तन से बीमारी को कम कर सकते हैं। ऐसी बीमारियों के रोकथाम के लिए उचित टीकारण, कार्यक्रम समावेश करना चाहिए जिनका गर्भाश्यशोथ में असर पड़ता हो। इस बीमारी से बचाव के लिये अच्छी आवासीय व्यवस्था तथा पोषण चाहिए जिनका गर्भाश्यशोथ में असर पड़ता हो। इस बिमारी से बचाव के लिये पर्याप्त आवासीय व्यवस्था, पोषण संतुलन (ऊर्जा, प्रोटीन, खनिज, विटामिन्स) स्वादिष्ट भोजन, साफ सफाई एवं भीड़भाड़ से बचाव इत्यादि जरूरी है।

पशुओं में ब्रूसेल्लोसिस रोग एवं उसका प्रबंधन

निशांत कुमार, सुरेन्द्र सिंह लठवाल, मिलिन रहेजा, बृजेश पटेल, वर्षा जैन एवं पुनीता कुमारी

पशुधन उत्पादन एवं प्रबंधन प्रभाग, भाकृअनुप - राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल - 132001

ब्रूसेल्लोसिस गाय, भैंस, भेड़, बकरी, शुकर एवं कुत्तों में फैलने वाली एक संक्रामक बीमारी है। ये एक प्राणीरूजा अथवा जीव जनति (Zoonotic) बीमारी है जो पशुओं से मनुष्यों एवं मनुष्यों से पशुओं में फैलती है। इस बीमारी से ग्रस्त पशु 7-9 महीने के गर्भकाल में गर्भपात हो जाता हे। ये रोग पशु शाला में बड़े पैमाने पर फैलता है तथा पशुओं में गर्भपात हो जाता है जिससे भारी आर्थिक हानि होती है। ये बीमारी मनुष्य के स्वास्थ्य एवं आर्थिक दृष्टिकोण से भी बेहद महत्वपूर्ण बीमारी है। विश्व स्तर पर लगभग 5 लाख मनुष्य हर साल इस रोग से ग्रस्त हो जाते हैं।

कारण

गाय भैंस में ये रोग ब्रूसेल्ला एबोरटस नामक जीवाणु द्वारा होता है। ये जीवाणू गाभिन पशु के बच्चेदानी में रहता है तथा अंतिम तिमाही में गर्भपात करता है। एक बार संक्रमित हो जाने पर पशु जीवन काल तक इस जीवाणू को अपने दूध तथा गर्भाश्य के स्त्राव में निकालता है।

संक्रमण का मार्ग

पशुओं में ब्रूसेल्लोसिस रोग संक्रमित पदार्थ के खाने से, जननांगों के स्त्राव के प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्षण सम्पर्क से, योनि स्त्राव से संक्रमित चारे के प्रयोग से तथा संक्रमित वीर्य से क्रत्रिम गर्भाधान द्वारा फैलता है। मनुष्यों में ब्रूसेल्लोसिस रोग सबसे ज्यादा रोगग्रस्त पशु के कच्चे दूध पीने से फैलता है। कई बार गर्भपात होने पर पशु चिकित्सक या पशु पालक असावधानी पूर्व जेर या गर्भाश्य के स्त्राव को छूते है। जससे ब्रूसेल्लोसिस रोग का जीवाणु त्वचा के किसी कटाव या घाव से शरीर में प्रवेश कर जाता है।

लक्षण

पशुओं में गर्भावस्था की अंतिम तिमाही में गर्भपात होना इस रोग का प्रमुख लक्षण है। पशुओं में जेर का रूकना एवं गर्भाशय की सूजन एवं नर पशुओं में अंडकोष की सूजन इस रोग के प्रमुख लक्षण हैं। पैरों के जोड़ों पर सूजन आ जाती है जिसे हाइग्रोमा कहते हैं। मनुष्यों को इस रोग में तेज बुखार आता है जो बार बार उतरता और चढ़ता रहता है तथा जोड़ों और कमर मे दर्द भी होता रहता है।

निदान

इस रोग का निदान अंतिम तिमाही में गर्भपात का इतिहास, रोगी पशु के योनि स्त्राव / दूध / रक्त / जेर की जांच एवं रोगी मनुष्य के वीर्य / रक्त की जांच करके की जाती है। गर्भपात के बाद चमड़े जैसा जेर का निकलना इस रोग की खास पहचान है।

प्रबंधन

- पशुओ में ब्रूसेल्लोसिस की कोई सफल प्रमाणित चिकित्सा नहीं है। मनुष्यों में एंटीबायोटिक दवाओं के सहारे कुछ हद तक इस रोग के चिकित्सा में सफलता पायी गयी है।
- स्वस्थ्य गाय भैंसो के बच्चों (बछड़े/बछड़ियों एवं कटड़े/कटड़ियों) में 4-8 माह की आयु में ब्रुसेल्ला एस-19 वैक्सीन से टीकाकरण करवाना चाहिए।
- नए खरीदे गए पशुओं को ब्रूसेल्ला संक्रमण की जांच किये बिना अन्य स्वस्थ्य पशुओं के साथ कभी नहीं रखना चाहिए।
- अगर किसी पशु को गर्भकाल के तीसरी तिमाही में गर्भपात हुआ हो तो उसे तुरंत फार्म के बाकी पशुओं से अलग कर दिया जाना चाहिए। उसके स्त्राव द्वारा अन्य पशुओं में सक्रमण फैल जाता है।
- गर्भाश्य से उत्पन्न मृत नवजात एवं जेर को चूने के साथ मिलाकर गहरे जमीन के अन्दर दबा देना चाहिए जिससे जंगली पशु एवं पक्षी उसे फैला न सके।

- अगर पशु का गर्भपात हुआ है उस स्थान को फेनाइल द्वारा विसंक्रमित करना चाहिए।
- रोगी मादा पशु के कच्चे दूध को स्वस्थ्य नवजात पशुओं एवं मनुष्यों को नहीं पिलाना चाहिए।
- मादा पशु के बचाव के लिए 6-9 माह के मादा बच्चों को इस बीमारी के विरूद्ध टीकाकरण करवाना चाहिए। नर पशु या सांड का टीकाकरण कभी नहीं कराना चाहिए।
- अगर पशु को गर्भपात हुआ है तो खून की जांच अवश्य करानी चाहिए।
- ब्याने वाले पशुओं में गर्भपात होने पर पशुपालकों को उनके संक्रमित स्त्राव, मलमूत्र आदि के सम्पर्क से बचना चाहिए क्योंकि इससे उनमें भी संक्रमण स्त्राव, मलमूत्र आदि के सम्पर्क से बचना चाहिए क्योंकि इससे उनमें भी संक्रमण हो सकता है।
- आसपास की धूल, मिट्टी, भूसा चारा आदि को जला देना चाहिए तथा आसपास के स्थान को भी जीवाणुरहित करना चाहिए।

पशु चिकित्सक के लिए आवश्यक निर्देश

- अगर गर्भपात तीसरी तिमाही का है तो पशुचिकित्सक को सावधान हो जाना चाहिए। 80 प्रतिशत मौकों पर ये ब्रूसेल्लोसिस होती है।
- दोनो हाथों में बिना स्लिव या गाइनाकोलोजिकल दस्ताने पहने योनि द्वार में हाथ डालना चाहिए।
- जेर निकालते समय नाक व मुंह पर मास्क या रूमाल जरूर बांधना चाहिए।
- जेर निकालने के बाद हाथ मुंह अच्छी तरह एंटीसेप्टिक घोल से धोना चाहिए।
- अगर स्वयं को लम्बे समय तक बुखार हो, अंडकोष में सूजन हो तो ब्रूसेल्ला टेस्ट अवश्य कराना चाहिए।

पशुशाला का एक दृष्य

कम्पलीट फीड ब्लॉक तैयार करना

पशु पोषण

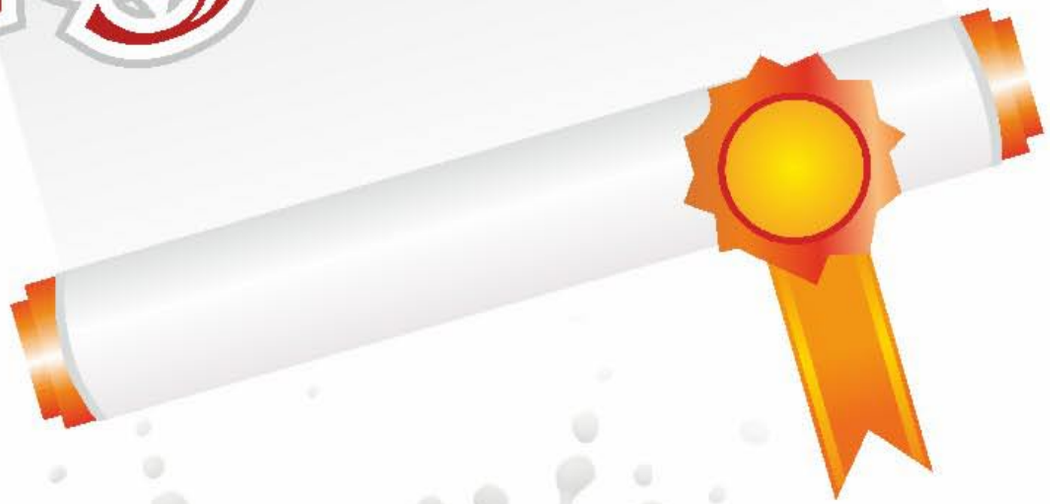

राजभाषा माह के दौरान गीत गायन प्रतियोगिता

दुधारू पशुओं में दूध उत्पादकता बढ़ाने योग्य चारे एवं दाने

अवनीष कुमार गौतम, संजय कुमार भारती, गौतम कुमार पंकज एवं सुदर्शन कुमार

बिहार पशुचिकित्सा महाविद्यालय, पटना, बिहार

भारत का दुग्ध उत्पादन में प्रथम स्थान है, ये उत्पादकता के कारण नहीं बल्कि पशु संख्या अधिक होने के कारण है। यह वर्ष 2015-16 में 140 मिलियन मीट्रिक टन हो गया है। अन्य देशों कि अपेक्षाकृत यहाँ पर प्रति पशु दुग्ध उत्पादन बहुत कम है, इसके बाबजूद दुग्ध उत्पादन की वृद्धि दर 3.5-4.5 प्रतिशत के करीब है। इस उत्पादन के हिसाब से प्रति व्यक्ति दूध उपलब्धता वर्ष 2015-16 में 320 ग्राम पहुँच गई है लेकिन फिर भी अन्य देशों के अपेक्षाकृत कम है। दुग्ध उत्पादन में वृद्धि के लिए जो अत्यन्त महत्वपूर्ण पहलू है, वो है दुधारू पशुओं का आहार। पशुओं को नियंत्रित रूप में सर्वोत्तम आहार एवं चारा खिलाना चाहिए। जहाँ तक संभव हो स्वयं की उपलब्ध जमीन पर उगाया हुआ एवं सही समय पर काटा हुआ चारा दिया जाना चाहिए।

दूध देनेवाले पशुओ को कौन-कौन से चारे एवं दाने देने चाहिए और कौन से नहीं वो निम्नलिखित है:

दूध देने वाले पशुओं को खिलाने-योग्य चारे

1. **लूसर्न और बरसीम** - ये दोनों तरह के चारे स्वास्थ्य की दृष्टि से उपयोगी है। इनमें प्रोटीन की मात्रा 15-20 प्रतिशत होती है।
2. **दूब, हलीम और झरूआ आदि** अन्य प्रकार की घासें अच्छी होती हैं। इनमें दूब सर्वश्रेष्ठ है। झरूआ भी एक अच्छी और दानेदार घास है।
3. **जौ तथा जई की चरी** - ये पौधें दुग्धवर्धक हैं। जौ का तो सूखा भूसा भी खिलाया जा सकता है, किंतु जई का भूसा कम अच्छा होता हैं।
4. **ज्वार की चरी** - यह चारों में सर्वोत्तम है, क्योंकि इसे हरी, सूखी या साइलेज-रूप में सभी तरह से खिलाते हैं। परन्तु हरी चरी ही उत्तम चारा माना जाता है।
5. **मक्का-** गर्मी के दिनों में साइलेज के अतिरिक्त यही एक हरे चारा के रूप में उपलब्ध हो सकती है जिसे पानी का प्रबंध करके चैत्र माह में बो दें और ज्येष्ठ से भाद्र पद तक ग्वार और लोबिया के पौधों के साथ मिलाकर खिलाये।
6. **ग्वार और लोबिया** - चैत से भादो माह तक इसे बोये और मक्के की चरी के साथ खिलाये।
7. **सरसों की चरी-** हरी नरम और सिंगरीदार सरसों को दूसरे चारों के साथ मिलाकर खिलाने पर दूध की मात्रा में बढ़ोत्तरी होती है एवं गर्म-तासीर होती है।
8. **मटर** - नर्म फलियों के भर आने पर इसे खिलाये। इसमें कार्बोहाइड्रेट बहुत होते हैं, एवं इसे जौ आदि के चारे या भूसे के साथ में मिलाकर ही खिलाना चाहिये।
9. **चना और मसूर** - चने के पौधे में क्षार की बहुत अधिकता होने के कारण इसे दूसरे चारों के साथ मिलाकर ही खिलाना चाहिये।
10. **उडत्रद तथा मूँग** - इसे भादो से कार्तिक माह के बीच बोना चाहिए और नरम फल लग जाने के बाद अन्य चारों के साथ मिलाकर खिलाये। क्योंकि इसमें प्रोटीन की मात्रा बहुत अधिक होती है जो की दूध की पौष्टिकता को बढ़ाता है।

दूध देने वाले पशुओं को खिलाने योग्य दाने

1. गेहूँ का दलिया और चोकर बहुत ही उपयोगी हेता है।
2. खली: सरसों और लाही, तिल, मूँगफली, अलसी तथा बिनौले आदि को खिलाने से दूध की मात्रा एवं पौष्टिकता में वृद्धि होती है।
3. चने का दाना और चूनी मिली हुई भूसी, अरहर की

चूनी-भूसी, मूँग की चूनी-भूसी, मसूर की चूनी-भूसी इन सभी को मिलाकर खिलाना चाहिये क्योंकि इन सभी में प्रोटीन प्रधान तत्व अत्यधिक होते हैं और भूसी में फासफोरस का काफी अंश होता है जो दूध की उत्पादन क्षमता बढ़ाने में सहायक होता है।

4. जौ का दलिया खिलाना अत्यन्त लाभकारी माना जाता है।

5. गुड़ और शीरा थोड़ी मात्रा में खिलाना हितकर होता है।

6. पकाई हुई चीजें जैसे-दाल का पानी, चावल का माँड़, रोटी और थोड़ा-सा दलिया भी दिया जाना चाहिये।

7. कुछ मात्रा में ग्वार को दलकर और उबालकर या भिगोकर देना चाहिये।

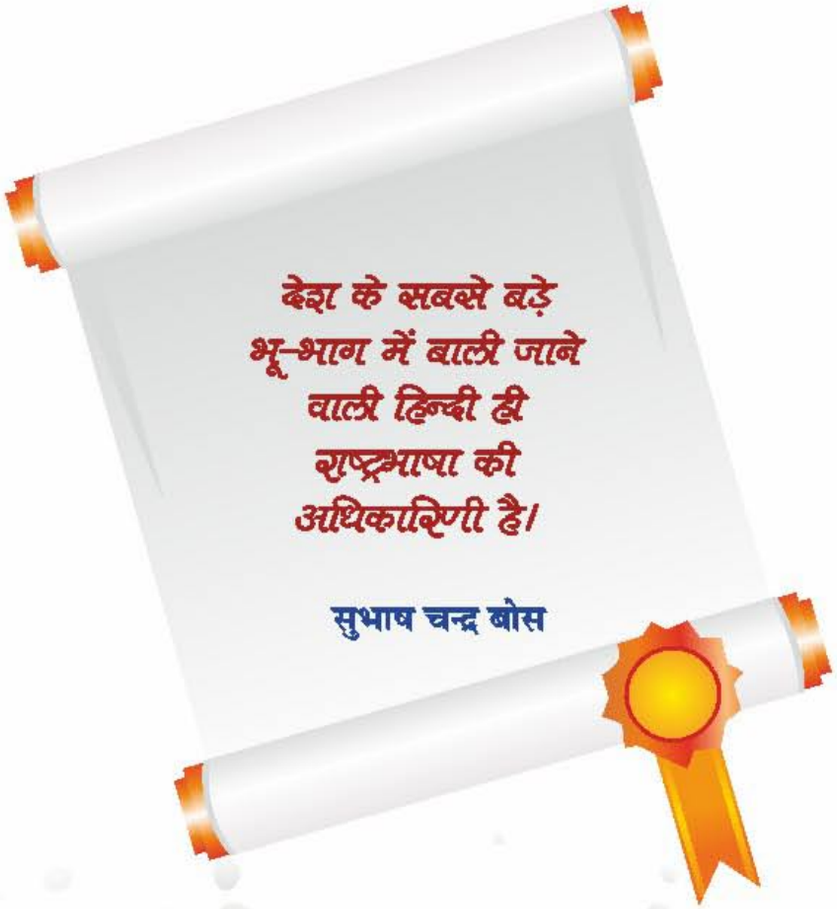

जुगाली करने वाले पशुओं के आहार में पेड़ की पत्तियों का उपयोग

वीनु एम नम्पूथीरी, मधुमोहिनी, सौरभ राजवैद्य एवं सरोबना सरकार

पशु पोषण प्रभाग, भाकृअनुप - राष्ट्रीय डेरी अनुसन्धान संस्थान, करनाल - 132001

उष्ण कटिबंधिय देश जैसे भारत में शुष्क मौसम पशुधन पालन में मुख्य बाधा है। चारे की सीमित उपलब्धि और कम पोषण मूल्यों के कारण पशु का उत्पादन कम होता है। पेड़ की पत्तियाँ और झाड़ियाँ एक संभावित प्रोटीन के स्त्रोत हो सकते हैं। गहरी जड़ों के कारण वे शुष्क मौसम में भी उग सकते हैं। अच्छे पाचन मूल्य के कारण पशुधन इसे आसानी से स्वीकारते हुए जुगाली करने वाले पशु पूरी तरह से पेड़ की पत्तियों पर जीवित रह सकते हैं। पोषकता रोधी इनकी गुणवत्ता को कम करते हैं।

रोमन्थी पशुओं के पेड़ की पत्तियाँ आहार में प्रयोग करने की सम्भावनाएँ

- पेड़ की पत्तियाँ अच्छे गुणों वाली और पाचक स्त्रोत है।
- यह सूक्ष्म जीवों की वृद्धि और रेशे के पाचन को बढ़ाती है।
- यह अपक्षीणन न होने वाले प्रोटीन का स्त्रोत है।
- यह विटामिन और खनिज का स्त्रोत है ।

पेड़ की पत्तियों की पोषण में सीमायें

- विपरीत पोषण संबंधित कारकों जैसे माइमोसिन और टेनिन की उपस्थिति
- कुछ अवशेषी खनिज जैसे फ्लोरिन, मॉलिब्डीनम का कुछ पेड़ की पत्तीयों मे विषाक्त मात्रा में उपलब्धता इनके प्रयोग में बाधक है।

पशु के आहार में प्रयोग आने वाले पेड़ों के वैज्ञानिक नाम

क्रम	सामान्य नाम	वैज्ञानिक नाम
1	सुबबूल	ल्युसिना ल्यूकोसिफेला
2	खेजरी	प्रेसोपिस सिनेरेरिया
3	सुहाजना (ड्रमस्टिक)	मेरिंगा ओलिफेरा
4	बबूल	एकेशिया निलोटिका
5	ग्लरीसीडा	ग्लिरीसीडा सेपीयम
6	शहतूत	मोरस इंडिका
7	बांस	डेन्ड्रोकेलेमस स्ट्रिक्टस
8	नीम	एजाडाइरेक्टा इंडिका
9	केला	मूसा प्रजाति
10	पीपल	फाइकस रेलिजियोसा
11	कटहल	एट्रोकारपस हेटेरोफाइलस
12	बेर	जीजीफस जुजुबा
13	इमली	टेमेरिंडस इंडिका
14	सफेदा	युकेलिप्टस टेरेटिकॉर्निस
15	सीरीन	अल्बिजिया लेबेक

सूबबूल

सूबबूल बहुतायत से उपयोग किया जाने वाला लेग्युम पेड़ है इसकी वृद्धि तीव्रता से होती है। यह गर्म क्षेत्रों में तापमान सीमा 22 से 33°C और 500 से 2000 मि. मी. वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्रों में अच्छी वृद्धि दिखाता है। इसकी मजबूत जड़ प्रणाली के कारण यह सूखा सहन कर सकता है । इसकी पत्तियों में प्रोटीन 25 प्रतिशत तथा कुल पाचकीय तत्व 55 प्रतिशत होते है । इसमें टेनिन और माइमोसिन लगभग 4 प्रतिशत होते हैं । यह विटामिन ए और केरोटिन का भी अच्छा स्त्रोत है । इसे अरोमांथी जानवरों के आहार में 5 से10 प्रतिशत और रोमांथी जानवरों के आहार में 30 प्रतिशत तक बिना किसी विषाक्तता लक्षणों के मिलाया जा सकता है। इसकी पत्तियों को इकट्ठा करके पीसकर तत्पश्चात् मोलासेस और केल्शियम कार्बोनेट के साथ मिलाकर फीड ब्लॉक

बनाये जाते हैं। यह बिस्किट्स अधिक पचने वाले होते हैं और पशु 20 प्रतिशत ज्यादा फीड ब्लॉक को खा सकता है । इन्हें पत्तियों से अधिक प्राथमिकता दी जाती है। यह दुधारू गायों और भैंसों में दूध के निर्माण को बढ़ाते हैं । दूध की मात्रा बढ़ती है । इसकी मात्रा ग्रामीण क्षेत्रों में ज्यादा देखी गयी है । कुछ शहरी केंद्रो में दूध की पैदावार में 8 से 10 प्रतिशत जबकि ग्रामीण केंन्द्रो में 10 से 20 प्रतिशत वृद्धि देखी गयी है ।

खेजरी

खेजरी की पत्तियाँ प्राय: राजस्थान, गुजरात और पंजाब में मिलती है । इनमें प्रोटीन की मात्रा 16 प्रतिशत और कुल पाचक तत्व 50 प्रतिशत होते है । टेनिन इसमें 7 प्रतिशत होता है जो कि इसकी पचने की क्षमता को कम कर सकता है । पत्तियाँ वीनर मेमनों के द्वारा उनके शरीर के भार के 4.3 प्रतिशत तक ग्रहण की जा सकती है ।

सुहाजंना (ड्रम स्टिक)

सुहाजंना एक बहुत ही उपयोगी पौधा है जो कि बहुत से कटिबंधीय और उष्ण कटिबंधीय देशों में पाया जाता है । यह एक औषधीय मूल्य वाला तथा पोषक तत्वों युक्त पौधा है। यह खनिज के साथ साथ प्रोटीन, विटामिन, बीटा केरोटिनए अमिनो एसीड और विभिन्न फिनॉलिक यौगिकों का अच्छा स्त्रोत है। इसकी पत्तियों में प्रोटीन 21.8%, एसीड डीटरजेंट रेशा 228 %, न्यूट्रल डीटरजेंट रेशा 30.8 % होता है और साथ ही साथ 412.0 ग्राम कुल रेशा, 211.2 ग्राम कार्बोहाइड्रेट तथा 44.3 भस्य होती है। निम्न गुर्णो वाल पशुधन भोजन को मोरिंगा पत्तियाँ मिलाकर उन्नत किया जा सकता है जो कि कुल खाने और पचाने की क्षमता को बढ़ाएगा। यह भी देखा गया है कि इसकी पत्तियों में उपस्थित अमीनो अम्ल विश्व स्वस्थ्य संगठन के द्वारा दिये गये मानकों के समतुल्य है। सामान्यमोरिंगा और निष्कर्षित मोरिंगा में मिथियोनिन और सिस्टिन कुल ग्राह क्षमता के क्रमश: 14.14 और 8.36 मि.ग्रा. प्रति कि.ग्रा. होते हैं । यह भी देखा गया है कि इसमें कल केरोटिनॉइड की सहानता नम भार का 40,139 मि.ग्रा. प्रति 100 ग्राम होता है। जिसमें से 47.8 प्रतिशत, 19210 मि.ग्रा. प्रति कि.ग्रा. बीटा केरोटीन के समतुल्य होता है । इसकी पत्तीयों में 379.83 मि.ग्रा. प्रति कि.ग्रा. लोहा, 18798.14 मि.ग्रा. प्रति कि.ग्रा. केल्सियम, 1121 मि.ग्रा. प्रति कि.ग्रा. फॉस्फोरस, 22.5 मि.ग्रा. प्रति कि.ग्रा., 20.5 मि.ग्रा. प्रति कि.ग्रा. क्रूड फाइबर शुष्क भार के आधार पर होते है ।

ग्लिरिसिडा

यह एक प्रोटीन युक्त और अधिक पोषकों से युक्त उष्णकटिबंधिय क्षेत्रों में बहुतायत से पाया जाने वाला मुख्य पौधा है। यह अभाव के समय गाय ,भैंस, भेड़ और बकरियों का मुख्य भोज्य पदार्थ हो सकता है । इसे हरी मक्का की जगह 25 प्रतिशत तक उपयोग किया जा सकता है । इसमें सायनोजन, एच सी एन एल्केलॉइड और टेनिन भी होते हैं जो इसके प्रयोग को सीमित करते हैं।

नीम

इसमें क्रूड प्रोटीन 16% और कुल पाचकीय तत्व 53%, खनिज, केरोटिन 185 माइक्रोग्राम प्रति ग्राम और सभी अवशेषी खनिज (जिंक को छोड़कर) पाए जाते हैं । इसे छोटे रोमन्थी जानवारों में कृमियों को नष्ट करने में भी उपयोग में लिया जाता है। अनुसंधान में इसका उपयोग भेड़ और बकरियों तक ही सीमित है। मुख्यत: इसका प्रयोग औषधी के रूप में किया जाता है।

शहतूत

किसानों को शहतूत के बारे में अच्छी जानकारी होने से, पशुओं को खिलाने के लिए लम्बे समय से इसका उपयोग किया जा रहा है । रेशमकीट पालन में नर्म पत्तियों का उपयोग, प्रथम और द्वितीय अवस्था में तथा परिपक्व पत्तियों का उपयोग अन्य बची हुई अवस्थाओं के लिए किया जाता है । इस कार्य के पश्चात् बची हुई पत्तियों का प्रयोग पशुओं को खिलाने के लिए किया जा सकता है । इसे घास के साथ, कृषि क्षेत्र में सड़क के किनारे नहरों के किनारे या बहुत कम भूमि में उगाया जा सकता है । इसका क्रूड

प्रोटीन 26 % कुल पाचकीय तत्व 50 % होता है । इसमें पचने की क्षमता पत्तियों की, तने की, छाल की और पूर्ण पौधे की क्रमशः 70-90%, 37-44%, 60% और 58-79% होती है । प्रायः ऐसा देखा गया है कि यह दुग्ध उत्पादन को बढ़ाकर उत्पादन की लागत को कम करता है । लीव ने बताया कि ऐसे देश जहाँ धान्य अवशिष्ट का उपयोग पशुधन के लिए किया जाता है। वहाँ शहतूत की पत्तियों को भूसे के साथ मिलाकर दिया जा सकता है और इसके महत्वपूर्ण परिणाम देखे गए हैं। शहतूत उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में लाभदायक है जहां पर घास का उपयोग महत्वपूर्णरूप से किया जाता है। छोटे रूमांथीयों के लिए शहतूत की पत्तियां, घासों की तुलना में 80-100 प्रतिशत और लेग्युम की तुलना में 40-50 प्रतिशत अधिक उपयोगी है ।

केले की पत्तियाँ

इसे प्रायः फलों के निकाल लेने के बाद उपयोग किया जाता है । इसकी पत्तियाँ नरम होती है और इसमें प्रोटीन अच्छी मात्रा में पाया जाता है, गायें और बकरियाँ आसानी से इसे खाकर रह सकती है परंतु सिर्फ पत्तियों को एक हफ्ते तक खिलाने से दस्त की समस्या देखी गयी है । परंतु भूसे और खली के साथ खिलाने पर कोई समस्या उत्पन्न नहीं होती है ।

बांस

इसे सूखे के समय उपयोग किया जाता है । इसमें पचने योग्य प्रोटीन 9% और कुल पाचकीय तत्व (लगभग) 48% होता है । इसकी पत्तियों में ठंडी के मौसम में अधिक परंतु गर्मी के मौसम में कम प्रोटीन मिलता है ।

कटहल

यह उष्णकटिबंधिय देशों में पाया जाने वाला और गाय भेड़ और बकरियों के लिए प्रथमिक रूप से केरल, महाराष्ट्र, उड़ीसा और पश्चिम बंगाल में उपयोग किया जाने वाला पेड़ है। इसमें प्रोटीन 4.8% और कुल पाचकीय तत्व 43.3% होता है । यह अकेला पशु की रखरखाव की आवश्यकता को पूरा नहीं कर सकता, इसें गेहूँ की चोकर या चावल की पॉलिश के साथ मिलाकर देने से लाभ होता है ।

सफेदा

इसकी उत्पत्ति ऑस्ट्रेलिया में हुई है, परंतु अब यह उष्णकटिबंधिय के साथ अन्य मौसमों वालें क्षेत्रों में भी उगाया जाता है । इसके औषधिय गुणों पर कई अनुसंधान हुए हैं जिसमें सफेदा ग्लोबस पर प्रमुख रूप से अनुसंधान हुए हैं । इसे कई मनुष्य और पशुओं के रोग उपचार के लिये भी उपयोग किया जाता है । इससे निकले तेल और इसकी पत्तियों का उपयोग श्वसन संबंधी बिमारियों के उपचार में किया जाता है । यूकेलिप्टस ग्रेंडिस के मध्यवर्ति पत्तियाँ आदि का उपयोग कृमियों के विरूद्ध देखा गया है ।

बबूल

यह काँटेदार सदाबहार पौधा है जो कि विभिन्न तरह की मृदा और जलवायु में पाया जाता है । यह 10-15 से.मी. वर्षा वाले क्षेत्रों में पाया जाता है । इसका आकार झाड़ी से थोड़ा बड़ा होता है। इसकी पत्तियों में प्रोटीन 14 % होता हैं और इसे भेड़ और बकरियों को खिलाने में उपयोग लाया जाता है ।

अतः पेड़ों की पत्तियाँ पशुधन के लिए भोजन का अपरम्परागत स्त्रोत है परंतु इसे परम्परागत के स्थान पर उपयोग किया जा सकता है । यह एक सस्ता और विपरीत परिस्थितियों में उपलब्ध होने वाले स्त्रोत है । इसमें कुछ विपरीत पोषण संबंधी कारक होते हैं जिससे इनको अधिकता से उपयोग नहीं किया जा सकता परंतु यह प्रोटीन के पचने की क्षमता को भी बढाते हैं साथ ही साथ इनमें औषधिय गुण भी होते हैं । अंत में हम यह कह सकते हैं कि पेड़ की पत्तियों का उपयोग विपरित परिस्थितियों में बिना किसी विकार के पशुओं के लिए किया जा सकता है ।

पशुओं के आहार में नमक की आवश्यकता

संजय कुमार निरंजन, पापोरी तालुकदार एवं गौतम मंडल

भाकृअनुप - राष्ट्रीय डेरी अनुसन्धान संस्थान, करनाल - 132001

पशुओं द्वारा खाया जाने वाला साधारण नमक दो तत्वों एवं सोडियम एवं क्लोराइड से मिलकर बनता है और अंग्रेजी भाषा में इसे सोडियम क्लोराइड कहते हैं। इन दोनों तत्वों की पशुओं को आवश्यकता होती है । शरीर में 0.2 प्रतिरक्त सोडियम होता है। शरीर में सोडियम हड्डियों, कोमल ऊतकों और शारीरिक द्रव्यों में पाया जाता है । शारीरिक माध्यम में अम्लीय एवं धारीय समानता बनाये रखने के लिए भी नमक की आवश्यकता पड़ती है। नमक आंत में एमीनों एसिड और शर्करा के अवशोषण के काम आता है। मांस पेशियों में अनुबंध करने की क्षमता सोडियम की मात्रा पर निर्भर करती है।

पशुओं को नमक आहार के विभिन्न खाद्य पदार्थों द्वारा और नमक खिलाने से प्राप्त होता है। शरीर में होने वाली चयापचन की क्रियाओं में काम आने के पश्चात नमक का शरीर से उत्सर्जन भी होता है। इसी कारण से पशुओं के आहार में युगों-युगों से नमक मिलाकर खिलाया जाता रहा है। नमक पशुओं को आहार खाने में चाव भी उत्पन्न करता है। नमक से लार निकलने में सहायता मिलती है और लार से आहार के पचने में प्रोत्साहन मिलता है। पाचन इसमें एक अम्ल हाइड्रोक्लोरिक पाया जाता और साधारण नमक में पाया जाने वाला क्लोराइड इसके बनने में सहायक होता है। कम मात्रा में नमक खाये जाने पर इसका (उत्सर्जन) कम और अधिक मात्रा में खाये जाने पर इसका उत्सर्जन अधिक होता है। पशु शरीर से नमक के बाहर निकलने उत्सर्जन का नियन्त्रण गुर्दों द्वारा किया जाता है।

पशु शरीर में नमक की कमी के लक्षण

नमक की कमी होने पर पशु का शरीर सोडियम और क्लोराइड का मूत्र में उत्सर्जन कम कर देता है। अधिक समय तक आहर में पशु को नमक न मिलने पर पशु उसके आस-पड़ोस में पड़े कपड़े, लकड़ी एवं मलमूत्र आदि वस्तुओं को खाने और चाटने लगता है। परीक्षणों द्वारा वैज्ञानिकों ने ज्ञात किया है कि जिन गायों को नमक नहीं खिलाया जाता है, उनकी भूख दो-तीन सप्ताह में कम हो जाती हैं नमक की कमी से पशु आहार की प्रोटीन एवं उर्जा का प्रयोग ठीक से नहीं होता। परिणामस्वरूप पशु का शारीरिक भार कम हो जाता है और दूध देने वाले पशुओं के दूध उत्पादन में कमी आ जाती है। अधिक मात्रा में दूध देने वाली गायों में नमक की कमी के लक्षण जल्दी एवं स्पष्ट रूप से प्रकट होते हैं क्योंकि दूध के द्वारा उनके शरीर से अधिक मात्रा में नमक बाहर निकल आता है और इस कमी

विभिन्न पशुओं को नमक की आवश्यकता: (एन.आर.सी 2001)

निर्वाहन के लिये	सोडियम की मात्रा
दूध न देने वाले पशुओं के लिए	1.67 ग्राम/100 किलो भार
दूध देने वाले पशुओं के लिए	4.22 ग्राम/100 किलो भार
बढ़ोतरी के लिये	1.56 ग्राम/किलो भार प्रतिदिन बढ़ने वाले जिनका भार 150-600 किलो हो
गर्भावस्था के लिये	1.54 ग्राम/दिन, 190-270 दिन के गर्भावस्था के लिये
वातावरण का तापमान:	25-30°C 0.11 ग्राम/100 किलो भार
	30°C 0.44 ग्राम/100 किलो भार

घुलनशील नमक की मात्रा (mg/l)	(%)	प्रभाव
1000	0.1	कोई दुष्प्रभाव नहीं
1000-2900	0.1-0.3	सामान्यतः कोई दुष्प्रभाव नहीं पर कभी-कभी दस्त लगते हैं
3000-4900	0.3-0.5	दस्त लगते हैं और दूध की मात्रा में कमी आती है।
5000-6900	0.5-0.7	इस पानी को नहीं देना चाहिये बहुत ज्यादा दुष्प्रभाव दूध देने वाले व गर्भधारण करने वाले पशुओं पर डालता है।

को पूरा करने के लिये आहार द्वारा नमक पशु को प्राप्त नहीं होता है। नमक की हीनता अर्थात कमी के लक्षण प्रकट होने में पशु को लगभग एक वर्ष का समय लग जाता है।

कुक्कुटों के आहार में पर्याप्त समय तक नमक की कमी से उनकी वृद्धि दर रूक जाती है और अण्डा देने वली मुर्गियों में अण्डा उत्पादन कम हो जाता है। आहार में नमक की पर्याप्त समय तक कमी से कुक्कुटों में एक-दूसरे के पंख नोंचने की भी आदत पड़ जाती है।

नमक प्राप्ति के स्रोत

आहार में सम्मिलित सभी खाद्य पदार्थों में नमक की कुछ न कुछ मात्रा पाई जाती है। परन्तु इसकी अधिक मात्रा समुन्द्र से प्राप्त होने वाले खाद्य पदार्थों में और गोस्त-पदार्थों में पाई जाती है। कुछ आवश्यकता की शेष मात्रा की पूर्ति साधारण नमक को दाने में मिलाकर अथवा ईट के रूप में चाटने के लिए पशु के सामने रखकर पूरी की जाती है। चारागाह में पशुओं को साधारण सूखे की अपेक्षा दो गुनी मात्रा में नमक प्राप्त हो जाता है। अधिक कच्चापन की दशा में हरे चारों से नमक अधिक प्राप्त होता है। साइलेज से भी अधिक मात्रा में नमक पशुओं को मिलता रहता है।

एक युवा पशु गाय अथवा भैंस को एक दिन में साधारणतः लगभग 13 ग्राम साधारण नमक की आवश्यकता होती है। वैज्ञानिकों ने ज्ञात किया है कि 500 किलोग्राम प्रति ब्यांत दूध देने वाली गाय को लगभग 30 ग्राम नमक की प्रतिदिन आवक्यकता पड़ती है। गोवंश, भैंस, बकरियों एवं भेड़ों के दाने में नमक की मात्रा 1.0 प्रतिशत की दर से मिलाई जाती हैं कुक्कुटों के दाने में 0.5 प्रतिशत की दर से मिलाया जाता है।

नमक की आवश्यकता को प्रभावित करने वाले कारण

1. आहार पशुओं की नमक की जरूरत पर एक बड़ा प्रभाव डालता है।
2. पानी में सोडियम क्लोराइड और अन्य खनिज लवणों का स्तर एक और महत्वपूर्ण कारण है।
3. पशु का आमतौर पर शुष्क पदार्थ से 2-3 गुणा ज्यादा पानी की आवश्यकता होती है।
4. वातावरण का तापमान और नमी एक मुख्य कारण हो सकती है। एक खोज में यह देखा गया है कि अगर खाने में 1.5 प्रतिरक्त पोटेशियम है तो दूध ज्यादा मात्रा में बनता है। पोटेशियम की मात्रा सोडियम और क्लोराइड की मात्रा पर प्रभाव डालती है।
5. गर्मी के तनाव में पशु में बहुत मात्रा में सोडियम की कमी आ जाती है।

पशु द्वारा नमक को खाई जाने वाली अधिकतम मात्रा इस बात पर निर्भर करती है कि पशु को कितना पानी प्राप्त हो रहा है। यदि पानी की असीमित मात्रा उपलब्ध हो तो पशु नमक की बहुत अधिक मात्रा को भी सहन कर सकता है। और आवश्यकता से अधिक खाया गया नमक पेशाब द्वारा पशु के शरीर से बाहर निकल जाता है। पानी की मात्रा प्राप्त होने पर आहार में मात्र 2.2 प्रतिरक्त नमक से भी विषैला प्रभाव प्रकट होता है। इसके प्रमुख लक्षण अधिक प्यास लगना और मांस पेशियों की कमजोरी है। कुक्कुटों के चूजों के आहार में 2.0 प्रतिशत से अधिक नमक होने पर उन पर कुप्रभाव पड़ता है। कुक्कुट आहर

में नमक की मात्रा यदि 4.0 प्रतिशत से अधिक हो तो असीमित मात्रा में पानी उपलब्ध होने पर भी उनकी मृत्यु होने लगती है। पशु आहार में खिलाये जाने वाले नमक की मात्रा पशु के निकलने वाले पसीने पर भी निर्भर करती है। प्रयोगों द्वारा ज्ञात हुआ है कि एक घंटे तक पशु का पसीना निकलने पर लगभग 2 ग्राम सोडियम की हानि हो जाती है। अतः अधिकतक उत्पादन लेने के लिये और पशु को स्वस्थ्य बनाए रखने के लिए आवश्यक है कि पशु के शरीर से होने वाली नमक की हानी और आहार से प्राप्ति के बीच सन्तुलन बनाये रखा जाये।

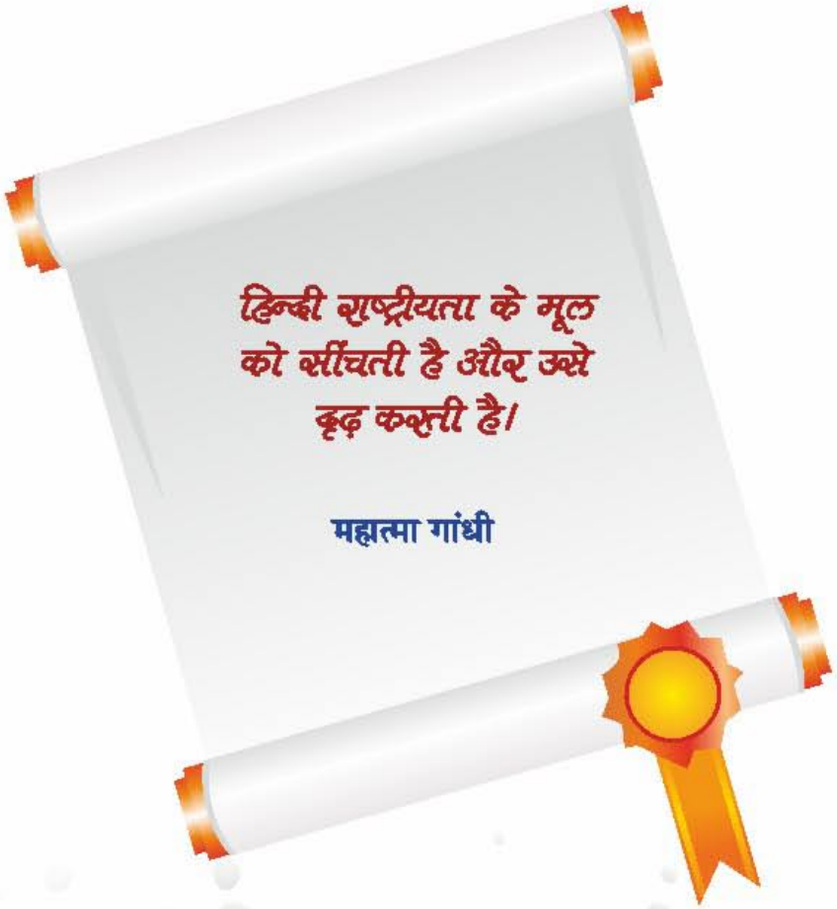

पशुओं के लिए यूरिया, शीरा – खनिज पिण्डः एक पौष्टिक आहार

अनिता मीणा, सत्यवीर सिंह, अजय वर्मा, अनुज कुमार, अनिल खिप्पल, जितेन्द्र कुमार एवं नीतू मीणा

भाकृअनुप – भारतीय गेहूँ व जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल – 132001

भारत में पशुओं की संख्या बहुत अधिक है। परन्तु प्रति पशु दुग्ध उत्पादन बहुत कम है। इसका मुख्य कारण आनुवंशिक क्षमता की कमी तथा पौष्टिक व संतुलित आहार की उचित आपूर्ति न होना है। फसल अवशेष ही हमारे पशुओं के मुख्य आहार हैं। फसल अवशेषों में नाइट्रोजन तथा खनिज की मात्रा बहुत ही कम होती है। जबकि इनमें थोड़ा कार्बोहाईड्रेटस ही होते हैं अधिक होने के कारण पशु इनका पूरी तरह उपयोग नहीं कर पाता है, इसलिए फसल अवशेष में अल्प मात्रा में पाये जाने वाले तत्वों की पूर्ति आवश्यक है।

जुगाली करने वाले पशुओं की विशेषता है कि वे अपनी प्रोटीन तथा उर्जा की आवश्यकता केवल नाइट्रोजन तथा रेशेदार आहार से पूरा कर लेते है। इसके लिए रोमन्थ में असंख्य जीवाणु (बैक्टीरिया, प्रोटोजोआ, फफूंद आदि) होते हैं जो कि नाइट्रोजन को प्रोटीन तथा रेशेदार कार्बोहाइड्रेट को वाष्पशील वसा व अम्ल में परिवर्तित कर पशु में प्रोटीन तथा उर्जा प्रदान करते है। लेकिन इसके लिए आवश्यक है कि जीवाणुओं की नाइट्रोजन उर्जा तथा खनिज की आवश्यकता को पूरा किया जाये। फसलों के अवशेष खिलाने से पशु में पोषण या उत्पादन की बात तो दूर इसके सेवन से पाये जाने वाले जीवाणुओं की पूर्ति भी नहीं हो पाती है।

यूरिया, शीरा तथा खनिज सूखे चारे में मिलाकर खिलाने से पशुओं की जीवन निर्वाहन की आवश्यकता पूरी हो जाती है। इसके लिए पशुपालकों को विशेष परीक्षणों की आवश्यकता होती है क्योंकि अगर तीनों तत्त्व ठीक प्रकार तथा उचित अनुपात में नहीं मिलाये गये तो यूरिया की विषाक्ता से पशु मर भी सकता है। इसलिये कृषकों व पशुपालकों की सुविधा के लिए यूरिया, शीरा व खनिज तैयार किया जाता है जो कि पशुओं के लिए हर तरह से सुरक्षित है। पशु अपनी आवश्यकता के अनुसार पिंड को चाट सकता है और फसल अवशेष में जो तत्त्व कम होते हैं उनकी आपूर्ति खनिज पिंड से हो जाती है।

अगर बिनौले अथवा मूँगफली की खली उपलब्ध नहीं हो तो दूसरी खली का उपयोग भी कर सकते है। यह पिंड बाजार में भी उपलब्ध होता है, परन्तु महंगा पड़ता है तथा अवयवों की प्रतिशत मात्रा की विश्वनीयता नहीं होती। इसलिए पशुपालक के लिए अगर इसे घर पर तैयार कर लें तो यह काफी सस्ता व विश्वसनीय होता है।

विधि

1. गर्म विधि

सबसे पहले शीरे को गर्म करके उसमें यूरिया केल्साइट पाउडर और सोडियम बैण्टोनाइट डालकर अच्छी तरह मिला लें। मिश्रण को धीरे–धीरे हिलाते हुए उसमें खनिज मिश्रण खली आदि को मिलाये।

जब मिश्रण का तापमान 120°C हो जाये तो इसको 10 मिनट तक अच्छी तरह मिलायें और जब सभी पदार्थ अच्छी तरह मिल जायें तो मिश्रण को ठण्डा (80–90° C) कर लें।

फिर उचित आकार के सांचों में डालकर ठण्डा होने के लिए रख दें।

2. ठण्डी विधि

इस विधि में यूरिया, कैल्शियम आक्साइड (चूना) का प्रयोग किया जाता है। चूने के मिश्रण को मिलाकर ही इतनी गर्मी पैदा हो जाती है कि सारे मिश्रण को अर्द्धतरल अवस्था में बदल देती हैं तथा मिश्रण को सांचों में डालकर आसानी से पिंड बनाया जा सकता है।

यूरिया, शीरा, खनिज पिण्ड खिलाने के लाभ:-

1. पशु को पाचनशील कार्बनिक पदार्थ अधिक मिलता है।
2. पशु द्वारा सूखे चारे तथा फसल अवशेष को खाने की मात्रा बढ़ जाती है क्योंकि इसमें प्रोटीन उर्जा तथा खनिज मौजूद होते हैं। जिससे अमाशाय में उपस्थित जीवाणुओं की प्रक्रिया तथा उनकी संख्या में काफी बढ़ोतरी हो जाती है। सूखे चारे की पाचनशीलता तथा आगे बढ़ने की क्षमता दर बढ़ जाती है, पशु अधिक आहार लेता है जो कि पशु के लिए लाभदायक है।
3. जीवाणु अधिक प्रोटीन का निर्माण करते हैं जिससे व्यस्क पशु की प्रोटीन की आवश्यकता पूरी हो जाती है।
4. वाष्पशील वसा अम्ल ज्यादा बनते हैं जो कि जुगाली करने वाले पशुओं की उर्जा का मुख्य स्रोत है। व्यस्क पशु को इतनी उर्जा रख-रखाव के लिए पर्याप्त होती है। यह कार्य भी जीवाणु करते हैं।
5. यूरिया-शीरा-खनिज पिंड सूखे चारे के साथ खिलाने से मिथेन गैस कम बनती है जो कि वातावरण को प्रदूषित होने से बचाता है।

सारांश

यूरिया, शीरा व खनिज युक्त पशु आहार पशुओं के लिए पूरक पोषण का महत्त्वपूर्ण स्रोत है जिसके फलस्वरूप पशुओं की उत्पादन क्षमता में सुधार होता है। यह स्थानीय सामग्री जैसे गुड, यूरिया, केल्साइट और गेहूँ के भूसे के साथ मिलाकर बनाया जा सकता हैं। यह पशुओं के लिए एक सस्ता व सम्पूर्ण पोषण का आहार है। इससे पशुओं के उत्पादन में वृद्धि होती है।

चारा वाली फसलों में पाये जाने वाले गुणवत्तारोधी घटक

पुजा गुप्ता सोनी, तारामणी यादव, गोविन्द मकराना, सौरभ कुमार, आकांक्षा टमटा एवं राकेश कुमार

चारा अनुसंधान एवं प्रबन्धन केन्द्र, भाकृअनुप - राष्ट्रीय डेरी अनुसन्धान संस्थान, करनाल - 132001

भारत एक कृषि प्रधान देश है। जहाँ कि 70% आबादी की आजिविका कृषि एवं कृषि आधारित व्यवसाय पर निर्भर करती हैं कृषि के साथ दुग्ध उत्पादन हेतु पशुपालन आदिकाल से चली आ रही परम्परा है। वैज्ञानिक दृष्किोण से कृषि एवं पशुपालन करने पर कृषक अपनी आय कई गुना बढ़ा सकते है। पशुपालन के लिए महत्वपुर्ण है कि अच्छी गुणवता का हरा चारा पशु को वर्ष भर उपलब्ध हो।

वर्तमान में एक आंकलन द्वारा यह पाया गया कि डेरी व्यवसाय को कुल व्यय का लगभग 65% उसके चारे एवं दाने पर होता है। इस व्यय को कम करने में हरे चारे की अधिक महत्ता है। कयोंकि हरे चारे से दुग्ध उत्पादन में तुरन्त वृद्धि होती है। हरा चारा पाचनशील तथा स्वादिष्ट होता है। इसकि गुणवता कारक जैसे शुष्क पदार्थ, प्रोटीन, वसा, विटामिन एवं खनिज तत्व आदि की पाचनशीलता अधिकतम होती है। गुणवता कारकों के साथ-साथ हरे चारे में कई बार ऐसे पदार्थ भी पाये जाते है जिनकी वजह ये उसकी गुणवता कम हो जाती है तथा पशु द्वारा अधिक मात्रा में पाए जाने पर कई बार पशु की मृत्यु भी हो जाती है। अतः पशुपालको को इस प्रकार के गुणवत्तारोधी कारकों के बारे जानकारी होना अत्यावश्क है। सामान्य तौर पर चारा फसलों में गुणवत्तारोधी कारक नही पाए जाते हैं लेकिन जब कभी चारा फसले तनावग्रस्त जैसे-पानी की कमी या अधिकता, सौर ऊर्जा की कमी तथा उर्वरको की अधिक मात्रा में उपयोग करने की स्थिती में ये कारक में पैदा हो जाते है और फसलों को नुकसान पहुंचाते है। वर्तमान की जानकारी देगें।

1. धुरिन (प्रुसिक अम्ल)-

यह कारक मुख्यरूप से ज्वार फसल में पाया जाता है। जब ज्वार की फसल में पानी की कमी होती है, तो इस कारक की पाये जाने की संम्भावना अधिक होती है। अधिक नत्रजन उपयोग विशेष रूप से फास्फोरस एवं पोटाशियम की कमी की दशा में धुरिन की मात्रा बढ़ जाती है। इसके बचाव के लिए हमें फसलों को पूर्ण परिपक्व अवस्था में काट कर खिलाना चाहिए। फसल की कटाई के समय किसी भी प्रकार का तनाव नही होना चाहिए तथा 50 से कम ऊंचाई की ज्वार की फसलों को पशुओं को नही खिलाना चाहिए। अधिक मात्रा में पशुओं द्वारा ग्रहण किये जाने पर (एच. सी एन/धुरिन) पशु की उत्पादकता को कम करता है। पशु बीमार हो जाता है तथा बहुत अधिक मात्रा हो जाने पर पशु की मृत्यु भी हो जाती है।

2. नाईट्रेट

नाईट्रेट की मात्रा सबसे ज्यादा जई में पाई जाती है। नाइट्रेट की ज्यादा मात्रा जई में सौर ऊर्जा की कमी से बढ़ती है। ज्यादा मात्रा में नाइट्रेट, नाइट्रोजन उर्वरक डालने पर होती है। नाइट्रेट, जई पौधे के निचले भाग में अधिक पाया जाता है। नाइट्रेट की विषाकता को कम करने के लिए प्रभावित चारे का साइलेज तैयार करना चाहिए। कयोंकि इस प्रकिया में नाइट्रेट का स्तर 40-50 प्रतिशत कम हो जाता है। जिसमें नाइट्रेट विषाकता की सम्भावना हो, उसे थोड़ा-थोड़ा खिलाना चाहिए या फिर जिस चारें में इसकी कम मात्रा हों, उसमे मिलाकर खिलाना चाहिए। जब मौसम नाइट्रेट की मात्रा बढाने में सहायक जैसा हो, तो यह चारा नही खिलाना चाहिए तथा मौसम के सुधार की प्रतिक्षा करें।

3. आक्जेलेट

इसकी मात्रा सबसे ज्यादा बाजरा, नेपियर घास में पायी जाती है। यह भोजन में उपलब्ध केल्शियम और मेग्निशियम के साथ जुड़कर मेग्निशियम आक्जेलेट में परिवर्तित कर देता है, जो कि अघुलनशील है। जिसके कारण रक्त में तत्वों की कमी हो जाती हैं तथा गुर्दे में जमा होकर पथरी बना देता है। जुगाली न करनें वाले पशु इसके प्रति अधिक सवेंदनशील होते है। इसी कारण

जुगाली करने वालें पशुओ में 2 प्रतिशत एवं जुगाली नहीं करने वाले पशुओ में 0.5 प्रतिशत तक आक्जेलेट की मात्रा सुरक्षित होती है।

4. सेपोनिन

सेपोनिन सबसे ज्यादा फलीदार फसलों में पाया जाता है। जैसे रिजका, बरसिम। यद्यपि इसकी अधिक मात्रा की समस्या ठण्डे प्रदेशों में होती है, इसलिए सर्दी के मौसम में उगाये जाने वाली फलीदार चारों को खिलाते समय सावधानी बर्तनी चाहिए। सेपोनिन चारे में कड़वाहट पैदा करता है और उसको अस्वादिष्ट बना देता है। सेपोनिन की वजह से पशुओं में झाग पैदा होने की स्थिती से अफारा आ सकता है।

5. टैनिन

टैनिन सबसे ज्यादा बबुल में पाया जाता है। प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट एवं खनिज तत्व टैनिन के साथ मिलकर जटिल पदार्थ बना देता है। इसकी वजह से पशुओं को ये प्राप्त नही हो पाते हैं। टैनिन की मात्रा ठण्डे क्षेत्रों की घासों में बहुत कम फलीदार फसलों में 5 प्रतिशत से कम तथा गर्म क्षेत्रों में पाये जाने वाले चारे में अधिक पायी जाती है। टैनिन की 2-4 प्रतिशत मात्रा की पशुओ को आवश्यकता होती है। लेकिन इससे अधिक मात्रा (5-9 प्रतिशत) ग्रहण करने पर रेशे की पाचनशीलता में कमी हो जाती है।

6. फाइटोइस्ट्रोजन

इसकी मात्रा 2.5 प्रतिशत तक फसलों में पायी जाती है। इसकी अधिक मात्रा फलीदार फसलों में पायी जाती है जैसे- रिजका, बरसीम एवं विभिन्न प्रकार की क्लोवर आदि।

सारांश

भूमी में आवश्यक पोषक तत्वों के संतुलित मात्रा में उपयोग करने, उचित जल प्रबंधन एवं कटाई प्रबंधन का उपयोग कर, हम विभिन्न चारा वाली फसलों में गुणवत्तारोधी कारको की समस्या से उभरा जा सकता है। उचित प्रंबधन के पश्चात् भी, अगर किसी कारणवश पशु के चारे में एक आर्दश स्तर से अधिक मात्रा खाये जाने पर तथा पशु में जहर के लक्षण दिखाई देने पर तुरन्त पशुचिकित्सक से सलाह लेकर उचित उपचार करवाना चाहिए।

डेरी प्रबंधन

चारा मक्का प्रक्षेत्र दिवस

डेरी मेले का विहंगम दृश्य

सूचना प्रोद्योगिकी द्वारा प्रभावी कृषि प्रसार

एच. आर. मीणा, राकेश कुमार एवं सीता राम बिश्नोई

डेरी विस्तार विभाग, भाकृअनुप - राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल - 132001

विकासशील देशों में अधिकांश ग्रामीण जनसंख्या की कृषि पर निर्भरता के कारण यह एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है। उत्पादन के लिए जरूरी प्राकृतिक संसाधनों में कमी आने से यह क्षेत्र बढ़ते उत्पादन की प्रमुख चुनौतियों का सामना कर रहा है। यद्यपि कृषि उत्पादों की बढ़ती मांग उत्पादकों की जीविका को बनाए रखने व इसे सुधारने के लिए जरूरी है। सूचना एवं प्रसारण प्रोद्योगिकी (आई. सी. टी.) इन चुनौतियों को हल करने एवं गरीब ग्रामीणों की आजीविका को सुधारने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

आई. सी. टी. एवं कृषि प्रोद्योगिकी का प्रसारण

आई. सी. टी. एक विस्तृत शब्द है जिसमें एक तकनीक के बजाय तकनीकियों का समूह आता है। कृषि ज्ञान एवं सूचना पद्धति के दृष्टिकोण से, आई. सी. टी. शोध एवं प्रसारण के बीच संबंध को सुधारने में महत्वपूर्ण है, विकसित देशों में ग्रामीण टेलीसेंटरों से यह अनुभव मिला है कि आई. सी. टी. ग्रामीण विकास श्रमिकों को ग्रामीण परिवारों द्वारा आवश्यक सूचना एकत्र करने, भंडारित करने, पुनः प्राप्त करने, अनुकूलित बनाने व विस्तारित करने में सहायता करते हैं।

कृषि क्षेत्र में आई. सी. टी.

नई परिस्थितियों का सामना करने के लिए किसानों हेतु जरूरी सूचना एवं प्रसार पद्धति को पहचानना आवश्यक है। यह विशेषतः गरीब एवं कम जमीन रखने वाले किसानों के लिए सच है। जैसे अफ्रीका में जहाँ अधिकांश किसानों की आधुनिक तकनीकियों तक पहूँच नहीं है, जबकि वे कृषि में निर्णय लेने की प्रक्रिया में मदद करते हैं। इस कारण विश्वसनीय प्रसार व संचार की कमी है। फसल शोध के संदर्भ में मुख्य चुनौती यह होगी कि नीति निर्माताओं की सूचना आवश्यकताओं को कैसे पूरा करें एवं कैसे जलवायु बदलाव के साथ खाद्य प्रणाली को अनुकूल बनाने के लिए शोध परिणामों को कैसे प्रदर्शित एवं प्रसारित करें।

जलवायु परिवर्तन एवं कृषि के बीच काफी ज्यादा फसलों के कारण व समान परिस्थितियों को विभिन्न क्षेत्रों में दोहराने की समस्या के कारण कई उपकरण उपलब्ध है। प्रत्येक उपकरण कृषि क्षेत्र की विभिन्न प्रक्रियाओं को विश्लेषित करता है। जैसे जलवायु परिवर्तन की परिस्थितियों में क्षेत्रीय फसल की मॉडलिंग से लेकर कृषि क्षेत्र में जलवायु परिवर्तन का आर्थिक प्रभाव का प्रबंधन (माँग व पूर्ति, उत्पादन आदि)। चूंकि उपकरण बहुत ज्यादा है अतः इनकी मुख्य विशेषताओं को जानने की बजाय इनके कुछ मिलते जुलते पहलुओं पर प्रकाश डालना जरूरी है। कुछ उपकरण कुछ विशेष फसल की वृद्धि को उत्तेजित करते हैं एवं विभिन्न जलवायु परिवर्तन में उनके बदलाव को प्रमाणित करते हैं। यद्यपि ये उपकरण क्षेत्र विशेष होते है लेकिन उचित भौगोलिक सूचना पद्धति द्वारा जोड़कर राष्ट्रीय या क्षेत्रीय स्तर पर प्रयुक्त किये जा सकते है। इनके उपयोग का पहला कदम सीमा रेखा की परिभाषा के साथ होता है जिसमें फसल कैलेण्डर, मिट्टी की स्थिति पर आँकड़ें, इनपुट पर्यावरण पैरामीटर आँकड़ें जैसे तापमान, आर्द्रता, वायु गति, गलोबल विकिरण, मृदा नमी, वायु आर्द्रता, जल प्रवाह आदि शामिल है। कुछ उपकरण फसल प्रबंधन स्थिति से संबधित आँकड़े भी शामिल करते हैं। विभिन्न प्रबंधन विकल्पों के लिए एवं एक चुनिंदा जलवायु परिवर्तन के लिए एडोक एक्सपर्ट पद्धति के द्वारा मुख्य फसल उत्पादन की विशेष अवस्था (जैसे जल संसाधन व नाइट्रोजन उत्पादन की स्थिर मात्रा के साथ) में वृद्धि सीमुलेशन का निर्माण करना उसका दूसरा कदम है इस प्रकार के उपकरणों के प्रमुख आउटपुट है :-

कुछ दिए गए सिनेरियों में फसल उत्पादन का आकलन करना, कृषि स्तर से लेकर संपूर्ण फसल पद्धति के लिए निर्णय क्षमता को सुविधाजनक बनाना।

इन उपकरणों के उदाहरण है

1) वोफोस्ट (डब्ल्यू. ओ. एस. टी.)

सेंटर फॉर वर्ल्ड फूड स्टडीज द्वारा विकसित: यह विभिन्न फसलों जैसे जौ फील्ड बीन, मक्का, आलू, चावल, सोयाबीन, सूरजमुखी गेहूँ आदि पर प्रयुक्त किया जा सकता है।

2) गॉसिम/कौमेक्स

क्लैम्जन व मिसिपि की विश्वविद्यालय एवं संयुक्त राष्ट्र कृषि विभाग (यू. एस. डी. ए.) द्वारा विकसित कपास के विकास को सिमुलेट करने में प्रयुक्त गॉसिम मॉडल को कोमैक्स (क्रॉप मैनेजमैंट एक्सपर्ट) जी.सी.एम. व वैदर (मौसम) जेनेरेटर्स के साथ मिला दिया है जिससे जलवायु परिवर्तन का कपास उत्पादन पर प्रभाव का अध्ययन किया जा सके।

3) एपसिम (एग्रीकल्चर प्रोडक्सन सिस्टम सिमूलेटर) एग्रीकल्चरल प्रोडक्सन सिस्टम रिसर्च यूनिट द्वारा विकसित

इसे 20 से ज्यादा फसलों व पौधों जैसे राल्फाल्फा, जौ, चना, कपास, सूरजमुखी, टमाटर, गेहूँ पर प्रयोग किया जा सकता है।

सूचना उपकरणों का अन्य वर्ग उच्च श्रेणी में क्षेत्रीय स्तर तक प्रयुक्त किया जाता है जिसका उद्देश्य एक वृहंद दृष्टिकोण के साथ कृषि क्षेत्र में निर्णय क्षमता को कुशल बनाना है। ये प्रणालियां विभिन्न घटकों पर ध्यान केन्द्रित करती हैं जो जलवायु परिवर्तन व संबंधित प्रतिक्रियाओं को प्रभावित करते हैं। ये घटक विशिष्ट खेती के लिए बाहरी (सरकार नीतियाँ, अर्थव्यवस्था) या आंतरिक (क्षेत्र आदि) हो सकते है। ये पद्धतियां जलवायु परिवर्तन व विभिन्न कृषि तकनीकियों का फसल उत्पादकता व एग्रो इकोलोजिकल पद्धति स्थिरता पर प्रभाव का व्यापक मूल्यांकन से लेकर उचित कृषि विज्ञान तकनीक को अपनाने के समर्थन या कृषि प्रणाली हस्तांतरण पद्धति की स्थापना तक अनुकूलन प्रतिक्रियाओं की योजनाओं को खेती व क्षेत्रीय स्तर पर कार्यान्वित करने में मदद करती है। इन पद्धतियों के उदाहरण है :- डी. एस. (डिसिजन सपोर्ट सिस्टम फॉर एग्रोटेक्नोलोजी ट्रांसफर), सेन्चुरी. एम. ए. ए. सी. बी. (मॉडल फॉर एग्रीकल्चर, एडाप्टेषन टू क्लाइमेट वेरिऐषन)।

कृषि क्षेत्र के लिए अवसर एवं चुनौतियाँ

विकासशील देशों में उत्पादन के लिए जरूरी प्राकतिक संसाधनों की गिरावट से कृषि उत्पादन बढ़ाने की मुख्य चुनौती का सामना कर रही है। मुख्य घटक जो चिंतनीय है: पानी की कमी, घटती मृदा उर्वरता, जलवायु परिवर्तन के प्रभाव व शहरीकरण के कारण उपजाऊ कृषि योग्य भूमि में तेजी से कमी। अवसरों को साकार करने के लिए अधिक कड़े गुणवत्ता मानक, कृषि उत्पादों का उत्पादन व हैंडलिंग के लिए मानकों व नियमों के अनुपालन की आवश्यकता है। इन चुनौतियों का सामना करने के लिए व ग्रामीण आबादी के जीवन स्तर को सुधारने के लिए नये तकनीकी नवाचार व नए दृष्टिकोण की आवश्यकता है। इसमें आई. सी. टी. एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। इसमें कम्पयूटर, इंटरनेट, भौगोलिक सूचना पद्धति, मोबाईल फोन व पारम्परिक माध्यम जैसे रेडियो व टेलीविजन आदि शामिल है।

1) **कृषि उत्पादन में वृद्धि**

छोटे खेतों की क्षमता, उत्पादकता व स्थिरता को बढाने में आई. सी. टी. एक महत्वपूर्ण साधन है। खेती में जोखिम व अनिश्चितता होती है, जिसमें किसान सूखा, स्थिति, भूमि कटाव, कीट संक्रमण जैसे बहुत से खतरों का सामना कर रहे है। मुख्य सुधार कीट व बीमारी नियंत्रण के बारे में जानकारी मुख्यतया: पूर्व चेतावनी, नई किस्में, गुणवत्ता नियंत्रण के लिए उत्पादन व नियमों को अनुकूलित करने के तरीकों से आते है।

2) **बाजार की पहुँच में सुधार**

वस्तुओं, निवेश व उपभोक्ता ट्रैड पर कीमतों के बारे में तत्कालीन बाजार सूचना की जागरूकता किसानों की

जीविका को काफी हद तक सुधार सकती है। इस तरह की जानकारी भविष्य में तैयार होने वाली फसलों व वस्तुओं को बेचने व खरीदने के लिए सर्वोच्च समय व जगह के बारे में निर्णय लेने में मदद करती है, कृषि उत्पादों के प्रस्तावों व माँग को पूरा करने के लिए एक साधारण सी वेबसाइट ज्यादा जटिल कृषि व्यापार पद्धति की एक शुरूआत है। ज्यादा श्रोताओं तक पहुँचने के लिए सूचना ग्रामीण रेडियो, टेलीविजन व मोबाईल फोन द्वारा प्रसारित की जाती है। भारत में निजी क्षेत्रों द्वारा (एग्रीवॉच व ई-चौपाल कार्यक्रम आदि) लाखों किसानों को टेंडर एवं ट्रान्जेक्शन सुविधा द्वारा कीमतों पर जानकारी देते है।

3) **क्षमता निर्माण एवं सशक्तिकरण**

आई. सी. टी. का प्रयोग करके किसान संगठन अपनी क्षमता को मजबूत कर सकते है व निवेश एवं आउटपुट कीमतों, भूमि दावों, संसाधन अधिकार व बुनियादी परियोजनाओं के बारे में बातचीत करने के लिए अपने निर्वाचन क्षेत्रों का अच्छे तरीके से प्रतिनिधित्व कर सकते है। आई. सी. टी. द्वारा ग्रामीण समुदाय अन्य हितधारकों के साथ बातचीत कर सकते है जिससे सामाजिक अलगाव कम होता है। यह राष्ट्रीय वैश्विक विकास के संदर्भ में क्षेत्रीय समुदायों के दृष्टिकोण को बढ़ाता है, व्यापार के नए अवसर पैदा करता है ओर मित्रों एवं रिश्तेदारों के साथ आसानी से सम्पर्क बनाता है।

प्रभावशाली तकनीकी हस्तांतरण के लिए अनुकूल वातावरण बनाना

ग्रामीण समुदायों द्वारा सूचना व जानकारी को प्रभावशाली ढंग से प्रयुक्त करने के लिए काफी शर्तें पूरी होनी चाहिए :-

1) **कृषि क्षेत्र की योजनाओं में आई. सी. टी.**

सरकार तेजी से आई. सी. टी. व कृषि को जोड़ने एवं कृषि क्षेत्र की नीतियों व कार्यक्रमों में आई. सी. टी. को शामिल करने की आवश्यकता को महसूस कर रही है।

2) **प्रासंगिक कृषि सूचना की आवश्यकता**

आमतौर पर यह माना जाता है कि कृषि उत्पादन को बनाये रखने व बढ़ाने के लिए सूचना विभिन्न एजेंसियों जैसे किसान, विश्वविद्यालय, शोध संस्थान, विस्तार सेवायें, व्यापारिक उद्योग, गैर सरकारी संगठनों में फैलायी जाती है। दो भारतीय राज्यों में चल रहा टेली सपोर्ट प्रोजेक्ट किसानों के प्रश्न इकट्ठा करता है, क्षेत्रीय शोध संस्थानों एवं विश्वविद्यालयों के उत्तर लेकर क्षेत्रीय भाषा में विडियो बनाता है एवं फिर इसे ऑनलाइन संग्रहीत किया जाता है इसके बाद इसे क्षेत्रीय समुदाय में वापस भेजा जाता है।

3) **उचित प्रारूप में समय पर उपलब्ध जानकारी :**

अधिकतर प्रौद्योगिकियों पर सूचना सिर्फ हार्डकॉपी के रूप में या स्टैण्डएलोन डाटाबेस में उपलब्ध होती है। आँकड़े प्राय: अधूरे होते है व अन्य स्त्रोतों के साथ मिलते नहीं है। जानकारी या सूचना एक उचित प्रारूप में प्रस्तुत की जानी चाहिए जिसे यह ग्रामीण समुदायों द्वारा प्रभावी तरीके से इस्तेमाल की जा सके । विडियो के द्वारा क्षेत्रीय भाषा में संदेश काफी प्रभावशाली साबित हुए है। इस समय पुराने व नये माध्यमों को मिलाकर प्रयोग करना काफी सफल पाया गया है।

4) **ग्रामीण पहुँच एवं विनिमय तंत्र**

क्षेत्रीय समुदायों द्वारा उपयोग किया गया आई. सी. टी. बदलते रहता है। यद्यपि इंटरनेट पहुँच सामाजिक बदलाव के लिए मुख्य बिन्दु है। सैटेलाइट कनेक्शन के कारण दूरदराज क्षेत्रों में ब्रॉडबैंड की पहुँच संभव हुई है।

सिफारिशें

1) संचार के लिए माध्यमों व उपकरणों को मिलाकर उपयोग करना।

2) कृषि सूचना का वेब आधारित भंडारण में इजाफा।

3) ग्रामीण समुदायों के लिए सस्ती व सुधरी हुई संयोजकता।

4) ग्रामीण उन्नयन में आई. सी. टी. के प्रयोग के महत्ता को सरकार द्वारा बढ़ावा देना।

5) तदनुकूल एवं गुणवत्ता वाले कृषि सूचना सेवाओं में बढ़ावा।

इन अनुकांशाओ को आजमाकर कृषि में आई. सी. टी. का भरपूर प्रयोग किया जा सकता है एवं ग्रामीण जीविका को सुधारा जा सकता है। किसी भी ज्ञान के प्रसार करने के लिए किसान का दृष्टिकोण जानना आवश्यक है। जलवायु परिवर्तन एक वैश्विक समस्या है जिसका प्रभाव क्षेत्रीय है। इस प्रकार, संचार विज्ञान के साथ मिलकर सूचना प्रौद्योगिकी विभिन्न दृष्टिकोणों को मिलाने में एक बड़ा योगदान कर सकता है।

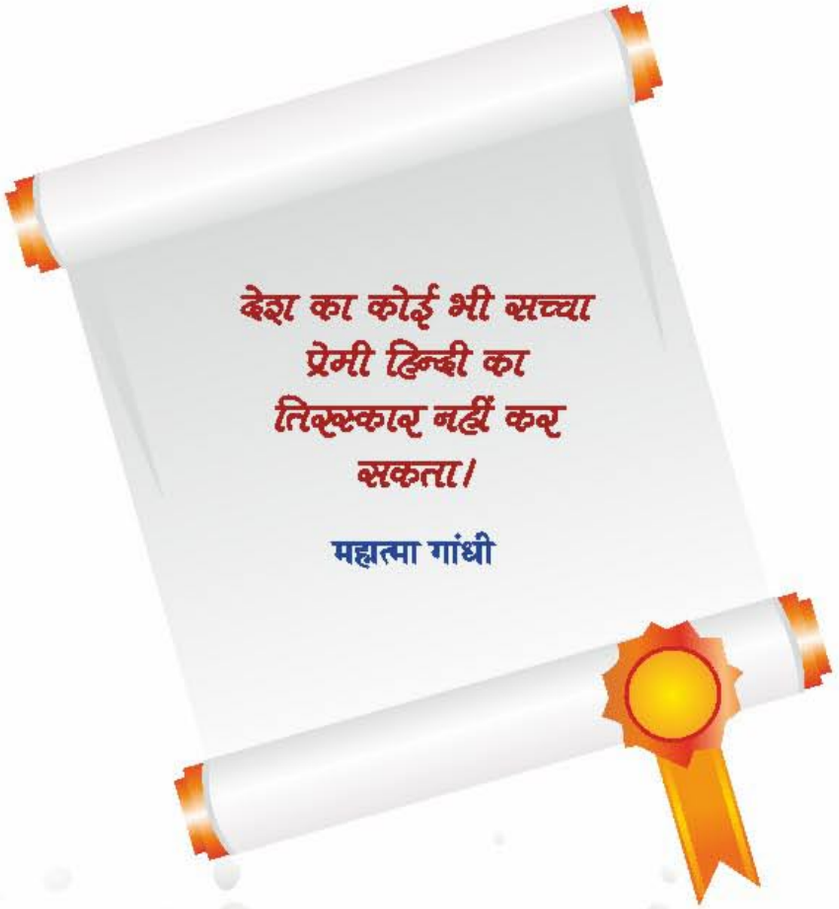

भारतीय कृषि अर्थव्यवस्था में महिलाओं का योगदान

सोनिका अहलावत, रेखा शर्मा एवं रीना अरोड़ा

भाकृअनुप - राष्ट्रीय पशु आनुवांशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल - 132001

यदि यह कहा जाए कि संस्कृति परम्परा या धरोहर नारी के कारण ही पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तान्तरित होती रही है तो यह अतिश्योक्ति नहीं होगी। जब भारतीय ऋषियों ने अथर्ववेद में माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः (अर्थात भूमि मेरी माता है और हम इस धरा के पुत्र हैं) की प्रतिष्ठा की, तभी सम्पूर्ण विश्व में नारी महिमा का उद्घोष हो गया था। आज चारों तरफ महिलाएं हर क्षेत्र में अपना परचम लहरा रही है। कोई भी क्षेत्र हो, महिलाएं पुरूषों से पीछे नहीं हैं। आज की महिला जिस जवादारी से व्यवसायिक दुनिया में सफल हो रही है, उतनी ही कुशलता से वह घर-गृहस्थी भी जिम्मेदारी भी निभा रही है। भारतीय अर्थव्यवस्था का एक प्रमुख आधार कृषि है और इस क्षेत्र में भी महिलाओं की भागीदारी सराहनीय है।

अन्तर्राष्ट्रीय विकास समुदाय ने कृषि को विकासशील देशों की प्रगति व गरीबी उन्मूलन का मुख्य आधार माना है। भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि का महत्वपूर्ण योगदान है क्योंकि भारत 65 प्रतिशत जनसंख्या कृषि पर आश्रित है। महिलाएं कृषि और ग्रामीण क्षेत्रों में जीवन गुणवत्ता में सुधार लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। पुरूष काम के अच्छे विकल्पों की तलाश में शहरों का रूख कर रहे हैं, इसलिए कृषि में महिलाओं की भागीदारी बढ़ रही है। जनगणना के आंकड़े बताते हैं कि मुख्य श्रमिकों एवं सीमांत श्रमिकों में पुरूषों का प्रतिशत घट रहा है और महिलाओं का प्रतिशत बढ़ रहा है। कृषि उत्पादन में कुल श्रम में महिलाओं का योगदान 55-56 प्रतिशत है। विभिन्न परिस्थितिक उप क्षेत्रों, कृषि प्रणालियों और जातियों में महिलाओं की भागीदारी के अलग-अलग व्यापक रूप हैं। इन भिन्नताओं के बावजूद शायद ही कृषि से संबंधित कोई ऐसी गतिविधि होगी जिसमें महिलाएं सक्रीय नहीं हैं।

कृषि उत्पादन, पशुधन प्रबंधन, मत्स्य पालन आदि क्षेत्रों में महिलाओं का महत्वपूर्ण और निर्णायक योगदान है। फसल उत्पादन के प्रत्येक महत्वपूर्ण कार्य में महिलाओं का अहम सहयोग होता है। इसमें पौध लगाना, खरपतवार हटाना और कटाई उपरांत की प्रक्रिया में सक्रिय भागीदारी शामिल है। बागवानी में भी महिलाएं काफी अहम योगदान देती है। जैसे कि पौध लगाना, बेसिन बनाना, कटाई-छंटाई करना और खाद डालना। महिलाएं ज्यादातर निराई, रोपाई एवं कटाई का कार्य करती है। वाणिज्यिक फसलें जैसे चाय, काफी, तम्बाकू इत्यादि में महिलाओं का योगदान पुरूषों की अपेक्षा अधिक है। बीड़ी बनाना, कपास एकत्रित करना, गन्ने की सफाई, जूट से बने उत्पादों को बनाना आदि कार्य मुख्यतः महिलाएं ही करती हैं। प्रसंस्करण और भण्डारण में भी महिलाओं का योगदान सराहनीय है।

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् के कृषिरत महिला अनुसंधान निदेशालय भुवनेश्वर की ओर से नौ राज्यों में किए गए एक शोध से पता चला है कि प्रमुख फसलों के उत्पादन मे महिलाओं की 75 फीसदी भागीदारी, बागवानी में 79 फीसदी और कटाई उपरांत कार्यों में 51 फीसदी हिस्सेदारी होती है। पशु पालन में महिलाएं 58 फीसदी और मछली उत्पादन में 95 फीसदी भागीदारी निभाती है। यह आँकड़े काफी उत्साहजनक हैं।

ग्रामीण खाद्य सुरक्षा और आय के पूरक के रूप मे पशुधन महत्वपूर्ण है। महिलाएं पशुओं से संबंधित सभी कार्यों में हिस्सा लेती हैं जैसे कि पशुओं की देखभाल, दूध निकालना, गोबर के उपले बनाना, फार्म खाद का संग्रह करना इत्यादि। पशुधन प्रबंधन में केवल पशुओं को चराने का कार्य ही पुरूष करते हैं।

ग्रामीण अर्थवयवस्था का एक मुख्य स्त्रोत मुर्गी पालन भी है। जिसमें भी महिलाओं की भागीदारी देखी जा सकती है।

सबसे प्रशंसनीय बात यह है कि महिलाएं अपने गृहस्थी के कार्यों को भी बखूबी करती हैं। अध्ययनों से ज्ञात हुआ है कि महिलाएं दिन मे 14–16 घंटे कृषि एवं घर के कार्यों में व्यतीत करती हैं। पशुधन संरक्षण में भी महिलाओं का अहम योगदान है। सेवा नामक एक गैर सरकारी संगठन पशुधन संरक्षण से जुड़े जोगों को सम्मानित करता है। इन पुरस्कारों के प्राप्तकर्ता के रूप में महिलाओं का प्रतिशत हर साल बढ़ रहा है। शिक्षा और वैज्ञानिक के रूप में भी महिलाएं महत्वपूर्ण कार्य कर रही हैं। देश की भावी पीढ़ी को कृषि के प्रति सचेत करने की दिशा में इनका काम प्रंशसा का पात्र है।

महिलाओं द्वारा की जाने वाली गतिविधियों में से ज्यादातर राष्ट्रीय खातों में आर्थिक रूप से सक्रीय रोजगार के रूप में परिभाषित नहीं है, शायद इसलिए इनके योगदान को कम समझा व आंका गया है। किसान, मजदूर, उद्यमियों के रूप में महिलाएं एक प्रमुख संसाधन का प्रतिनिधित्व करती है। परन्तु पुरूषों की अपेक्षा इनके लिए संसाधनों की कमी है। कृषि विकास योजनाएं पुरूषों द्वारा बनाई जाती है और उन्हीं पर केन्द्रित होती हैं। उदाहरण के तौर पर मशीनीकरण से पुरूषों का काम कम हुआ है परन्तु महिलाओं को आज भी उतना ही परिश्रम करना पड़ रहा है।

कृषि में अहम योगदान के बावजूद महिला श्रमिकों को कृषि संसाधनों और इस क्षेत्र में मौजूद असीम संभावनाओं में भागीदारी काफी कम है। इस भागीदारी को बढ़ाकर ही कृषि से होने वाले मुनाफे को बढ़ाया जा सकता है। महिलाओं की उन्नति में मुख्य बाधा इनकी अपर्याप्त तकनीकी योग्यता है। अगर महिलाओं की तकनीकी योग्यता में सुधार लाने पर ध्यान केन्द्रित किया जाए तो भारत सरकार के आर्थिक विकास, कृषि विकास और खाद्य सुरक्षा के लक्ष्यों को पाने के सपनों को पूरा किया जा सकता है। महिलाओं को कृषि क्षेत्र में आत्मनिर्भर बनाने के लिए यदि उन्हें उचित मौके दिए जाए और जरूरी तकनीकी सुविधा उपलब्ध कराई जाए तो उनकी हिस्सेदारी को और अधिक लाभ के रूप में परिणित किया जा सकता है और भारत जैसे विकासशील देश में कृषि उत्पाद 2.5 से 4 फीसदी तक बढ़ सकता है। इस पहलू में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् द्वारा उठाए गए कदम सराहनीय हैं। अध्ययनों से महिलाओं के श्रम और समय में बचत करने वाले उपकरणों को विकसित किया जा रहा है। महिलाओं के लिए विभिन्न प्रशिक्षण कार्यक्रमों का भी आयोजन किया जाा रहा है। विस्तार गतिविधियां भी आज महिलओं पर केन्द्रित हैं ताकि इन्हें जागरूक किया जा सके। महिलाओं के लिए स्वयं सहायता समूह बनाए गए हैं जिनमें महिलाएं घर के बने उत्पादों अथवा कृषि उत्पादों से आय में वृद्धि कर सकती है।

कृषिरत्त महिला अनुसंधान निदेशालय, भुवनेश्वर में महिलाओं के निहितार्थ कृषि प्रणालियाँ और विशिष्ट प्रोद्योगिकियाँ विकसित की जा रही हैं। यहाँ महिलाओं के लिए विभिन्न परियोजनाएँ चल रही हैं जैसे कि विस्तार तरीकों का विकास, खेती प्रणालियों को विकसित करना, व्यवसायिक स्वास्थ्य खतरों से अवगत कराना, पर्यावरण के अनुकूल कीट प्रबन्धन की जानकारी इत्यादि। विभिन्न अध्ययनों से हाथ से चलाने वाले लगभग 50 उपकरणों को विकसित किया गया है, जिनमें से 30 को महिलाओं के लिए उपयुक्त बनाया गया है।

राष्ट्रीय कृषि प्रोद्योगिकी परियोजना के अंतर्गत आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक और केरल की महिलाओं को तटीय पारिस्थितिक तंत्र से अवगत करया गया है। इस परियाजना में महिलाओं को मछली प्रसंस्करण हेतु सशक्त बनाने का प्रयास किया जा रहा है। विभिन्न स्वयं सहायता समूह महिलाओं को पोषण, स्वास्थ्य, प्राकृतिक आपदा प्रबंधन आदि के बारे में जानकारी देने की दिशा में कार्यरत है।

भारत के गरीब और कमजोर वर्गो की अजीविका और खाद्य सुरक्षा को सुनिश्ति करने के लिए कृषि हेतु नियोजन प्रक्रियाओं का बनाना और उनका सूचारू रूप से पालन होना अत्यन्त आवश्यक है। देश की भावी चुनौतियों का सामना करने के लिए महिलाओं की दशा और दिशा में सुधार लेने की जरूरत है। आने वाली पीढ़ी के गुणात्मक विकास के लिए महिलाएं उत्प्रेरक सिद्ध हो सकती हैं। महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए उनकी आर्थिक स्वतंत्रता आज के समय की जरूरत है। शिक्षा और तकनीकी प्रशिक्षण से महिलाएं विकास के सूत्रधान के रूप में उभर कर आ सकती है। हमारे

देश के नव निर्वाचित प्रधानमंत्री ने भी लाल किले की प्राचीर से स्वतंत्रता दिवस समारोह के भाषण में बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ का नारा दिया है।

दोहरे दायित्वों से लदी महिलाओं ने अपनी दोगुनी शक्ति का प्रदर्शन कर सिद्ध कर दिया है कि समाज की उन्नति आज केवल पुरूषों के कन्धें पर नहीं अपितु उनके हाथों का सहारा लेकर भी ऊंचाईयों की ओर अग्रसर है। उन्नत राष्ट्र की कल्पना तभी यथार्थ का रूप धारण कर सकती है जब महिला सशक्त होकर राष्ट्र को सशक्त करें। नेपोलियन बोनापार्ट ने नारी की महत्ता को बताते हुए कहा था कि मुझे एक योग्य माता दे दो, मैं तुमको एक योग्य राष्ट्र दूंगा। महिला स्वयं सिद्ध, वह गुणों की सम्पदा है। आवश्यकता है इन शक्तियों को महज प्रोत्साहन देने की। यही समय की मांग है क्योंकि शिक्षित और सशक्त महिला ग्रामीण भारत का चेहरा बदल सकती है।

भारत के उत्तर पूर्वी राज्यों में डेरी विकास की संभावनाएँ

प्रिसीला, ए के चौहान एवं बुलबुल जी.नगराले

डेरी अर्थशास्त्र, सांख्यिकी एवं प्रबंधन प्रभाग, भाकृअनुप - राष्ट्रीय डेरी अनुसन्धान संस्थान, करनाल - 132001

दुग्ध उत्पादन, चावल के बाद सकल घरेलु उत्पाद में योगदान करने वाला दूसरा सबसे बड़ा कृषि उत्पाद है। भारतीय कृषि में डेरी उत्पादन किसानों के लिए साल भर नियमित आय के प्रवाह का एक मुख्य साधन या गतिविधि है। डेरी नियमित आय के साथ साथ छोटे व सीमांत किसानों और विशेष रूप से भूमिहीन खेतिहर मजदूरों को नियमित रोजगार भी प्रदान करती है। वर्ष 2013-14 के दौरान दुग्ध उत्पादन करीब 137.6 लाख तक पहुँच गया जिसमें करीब 70 लाख ग्रामीण किसानों का मुख्य सहभाग था। देश में प्रति व्यक्ति दुग्ध उपलब्धता 2011-12 के दौरान 290 प्रति व्यक्ति ग्राम थी। देश में औसतन दुग्ध उत्पादन दर 4.18 प्रतिशत है जबकि यह दुनिया में 2.2 प्रतिशत ही है। जो कि बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए दुग्ध और दुग्ध उत्पादों में निरंतर वृद्धि को दर्शाता है (आर्थिक सर्वेक्षण 2014-15)। दुग्ध क्रांति में सहकारी डेरी रीढ़ की हड्डी या आधार है जो भारत को दुनिया का सबसे बड़ा दुग्ध उत्पादक देश बनाने में मुख्य सार्थक सिद्ध हुई है। भारत में उत्तर पूर्वी हिस्से में पाई जाने वाली डेरी का परिदृश्य देश के अन्य डेयरी परिदृश्य की तुलना में एक अलग तस्वीर प्रस्तुत करती है। भारत के उत्तर पूर्व में आसाम, अरूणाचल प्रदेश, मणिपुर, मेघालय, मिजोरम, नागालैंड, सिक्किम और त्रिपुरा राज्य शामिल हैं। इस क्षेत्र में देश की कुल भूमि का सात प्रतिशत तथा देश की कुल आबादी का चार प्रतिशत हिस्सा शामिल है।

इस क्षेत्र में ग्रामीण आबादी के लिए कृषि, आजीविका चलाने

तालिका 1. भारत के उत्तर पूर्व राज्यों में 2003-04 से 2012-13 के दौरान दुग्ध उत्पादन ('000 टन)

राज्य	2003-04	2004-05	2005-06	2006-07	2007-08	2008-09	2009-10	2010-11	2011-12	2012-13
अरूणाचल	48	48	48	49	32	24	26	28	22	23
असम	727	739	747	750	752	753	756	790	796	800
मणिपुर	71	75	77	77	78	79	78	78	79	80
मेघालय	69	71	73	74	77	78	78	79	80	81
मिजोरम	15	16	15	16	17	17	11	11	14	14
नागालैंड	63	69	74	67	45	53	78	76	78	79
सिक्किम	48	46	48	49	42	42	44	43	45	42
त्रिपुरा	84	86	87	89	91	96	100	104	111	118
उत्तरपूर्वी	112	115	116	117	113	114	117	120	122	123
राज्य	3	0	9	1	4	2	1	9	5	7
भारत	880	924	970	102	107	112	116	121	127	132
	82	84	66	580	934	183	425	848	904	431

तालिका 2 : उत्तर पूर्वी राज्यों में दुग्ध की प्रति व्यक्ति (ग्रा. प्रतिदिन) उपलब्धता

राज्य	2002-03	2003-04	2004-05	2005-06	2006-07	2007-08	2008-09	2009-10	2010-11	2011-12
अरूणाचल प्रदेश	112	109	114	113	114	73	55	59	63	44
असम	71	71	72	72	71	70	70	69	71	70
मणिपुर	85	85	90	92	91	91	90	88	88	80
मेघालय	78	78	81	82	81	83	83	83	83	74
मिजोरम	45	44	46	43	46	47	47	29	31	35
नागालैंड	78	83	90	96	86	58	67	96	93	108
सिक्किम	66	68	70	70	71	72	74	77	80	83
त्रिपुरा	222	231	221	232	231	195	194	200	194	202
भारत	230	231	233	241	251	260	266	273	281	290

का मुख्य स्रोत है। यह कम निवेश, कम उत्पादन की तकनीक, मिश्रित खेती और छोटे भूमि धारकों के कारण पिछड़ा हुआ है। फसल पद्धति में अनाज का सबसे अधिक श्रेय है लेकिन पशुधन, मिश्रित खेती प्रणाली का एक महत्वपूर्ण घटक है और इस प्रकार आय के वैकल्पिक स्रोत के रूप में पशुओं पर निर्भरता है। खाद्य पद्धति तथा दुग्ध कम उपलब्धता के कारण यहाँ दुग्ध और दुग्ध उत्पादों की खपत, कम है।

तालिका 1 और 2 के अनुसार, उत्तर पूर्व राज्यों में दुग्ध उत्पादन और दुग्ध की प्रति व्यक्ति उपलब्धता देश के औसत आँकड़े तुलना में काफी कम दिखाई देते है। वर्ष 1993-94 से 2003-04 के दौरान प्रतिदिन प्रतिव्यक्ति उपलब्धता में समग्र स्तर से गिरावट दर्ज की गई है यह सिफारिश स्तर 220 ग्राम प्रति व्यक्ति से काफी कम पाई गई (कुमार एवं सहयोगी, 2007)। हालंकि वर्ष 2006-04 से इस क्षेत्र के राज्यों में प्रति व्यक्ति दुग्ध उपलब्धता में सतत वृद्धि पाई गयी (तालिका 2) इसके अलावा यह क्षेत्र प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि और जीवन शैली में परिवर्तन के परिणाम स्वरूप दुग्ध और दुग्ध उत्पाद की मांग की वृद्धि अग्रणी

रही है। (फिरोज एवं सहयोगी, 2010)

डेरी सहकारिता का महत्व

उत्तरपूर्व क्षेत्र के किसान भारत के अधिकतर भागों में पाये जाने वाले छोटे और सीमांत किसानों के सामान है। यहां के किसान असंघठित क्षेत्रों को दुग्ध बेचा करते हैं। यह सर्वविदित तथ्य है कि यहाँ के किसानों को इस कारण कई प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है जैसे कीमतों को प्रभावित करने वाले बिचौलिया, सौदे बाजी, भण्डारण व परिवहन के लिए बुनियादी

तालिका 3 : भारत के उत्तरपूर्व क्षेत्र में डेरी विकास के घटकों की उपलब्धियां :

उत्तर पूर्व राज्य	वर्ष	डेरी दुग्ध संस्था	संस्था सदस्य (000)	ग्रामीण दुग्ध विपणन (000 किलो /प्रतिदिन)	तरल दुग्ध बेचना (000 लीटर/प्रतिदिन)
	2005	420	17	17	27
	2007	423	17	21	29
	2010	484	21	28	42
	2010-2011	565	22	27	56
भारत	2000	84289	10608	15780	9534
	2004	109729	12194	17420	14902
	2005	113152	12326	20070	15628
	2007	122534	12964	21691	18123
	2010	140227	14071	25865	18614
	2010-2011	144246	14461	26188	21989

सुविधाओं की कमी और प्रसंस्करण की कमी इत्यादि। लेकिन यदि किसानों को सहकारी डेरी उपलब्ध की जाये तो इन समस्याओं को कम किया जा सकता है। सहकारी डेरी संस्थाएं अपने सदस्यों को इनपुट, पशु स्वास्थ्य देखभाग और विस्तार सेवा प्रदान करती हैं तथा जिला स्तर और गांव स्तर के डेरी सहकारी समितियों के सभी कर्मचारियों को प्रशिक्षण भी देती है। सहकारी डेरी उत्तरपूर्वी क्षेत्रो में छोटे और सीमांत किसानों के लिए ग्रामीण दुग्ध उत्पादन और विपणन की सुविधाओं के द्वारा आय और रोजगार को बढ़ाकर ग्रामीण गरीबी को कम करने में एक प्रमुख भूमिका निभा सकती है। भारत के विभिन्न भागों में सहकारी डेरी का सकारात्मक प्रभाव कई अध्यन्नों के आधार से स्थापित किया गया है। मेघालय राज्य में ग्रामीण परिवारों में एकीकृत डेरी विकास परियोजना के प्रभाव का अध्यन्न किया। जिसमें यह पाया गया कि दुधारू संकर गाय की प्रतिदिन औसल रखरखाओं लागत सहकारी डेरी संस्थाओं के सदस्यों और गैर सदस्यों में क्रमश: 17.51 रूपये और 20.20 रूपये पाई गई । दूध की कुल औसल आय और प्रति लिटर दुग्ध उत्पादन आय क्रमश: 121.11 रूपये और 1.00 रूपये पाई गई है। देश के उत्तरपूर्वी क्षेत्र में सहकारी डेरी देश के अन्य भागों की तुलना में कम विकसित है। लेकिन सहकारी डेयरी की संख्या में बढ़ोतरी देखी गई है। इससे यह पता चलता है कि दुग्ध की खरीद तथा बिक्री में सहकारी डेरी के माध्यम से वृद्धि हुई जोकि नीचे दी गई तालिका से सिद्ध होता है।

अन्तत: भारत ने डेरी में एक लंबा सफर तय किया है और भारत को एक प्रमुख उत्पादक के रूप में स्थापित किया है। सहकारी

डेयरी ने इसमें एक प्रमुख भूमिका निभाई है। लेकिन सहकारी डेरी संस्थाएं देश भर में समान रूप से नहीं फैली हुई। विशेष रूप से देश के उत्तर पूर्वी भाग में डेरी क्षेत्र अपनी पूरी क्षमता तक नहीं पहुंच पाया है। इस क्षेत्र में दुग्ध विपणन मुख्य रूप से असंघठित रूप से किया जाता है। दुग्ध उत्पाद, सहकारी डेयरी संस्थाएं बनाकर, परिवहन सुविधा, प्रसंस्करण, पैकेजिंग, मूल्य निधिकरण और विपणन में बुनियादी चढ़ाने को मजबूत करके अपने उत्पाद के लिए उपयुक्त मूल्य प्राप्त कर सकते हैं। क्योंकि दुग्ध विपणन में बिचौलिये की अनुपस्थिति में ग्राहकों के भाग में उत्पादक अपना भाग बढ़ा सकते हैं। उत्तर पूर्वी क्षेत्र में सहकारी डेरी समितियों की संख्या में बढ़ोतरी देखी गई है। डेरी किसानों के लिए उचित सहायता और जागरूकता को बढ़ाकर इस प्रवृति को कायम रखा जा सकता है और डेयरी किसान डेरी क्षेत्र से संभावित लाभ उठा कर अपना जीवन स्तर ऊँचा कर सकते हैं।

भाषा के बिना व्यक्ति या समाज प्राणहीन और अपंग है। अतः राजभाषा हिन्दी अपनाने में गोवान्वित महसूस करें।

बरसीम चारा फसल का अवलोकन

चारा संग्रहालय

चाय उत्पादन व कृषि

संकर हाथी घास

संस्थान के विद्यार्थी एवं वैज्ञानिक फसल का अवलोकन करते हुए

मृदा की घटती उर्वरता में टिकाऊ खेती के लिये उपाय

बाबू लाल मीना, प्रंशनजीत रे एवं दिनेश कुमार शर्मा

भाकृअनुप - केंद्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल-132001

हमारे देश की बढ़ती जनसंख्या के कारण खाद्य साम्रगी की मांग में भी काफी वृद्धि हो रही है जिससे हमारे प्राकृतिक संसाधनो का भी लगातार दोहन होता जा रहा है। जैसा कि हम जानते हैं कि भारत में चार दशक पहले हरित क्रान्ति में उवर्रको, अधिक उपज देने वाली फसलों की किस्मों और पानी का बहुत बड़ा योगदान रहा था लेकिन समय के साथ हरित क्रान्ति का रंग फीका होता जा रहा है इससे देश की सरकार, कृषि वैज्ञानिको, किसानों के लिए एक चिन्ता का विषय बना हुआ है क्योंकि वार्षिक खाद्यान्न उत्पादन की मांग लगभग 259 मिलियन टन से बढ़कर वर्ष 2025 में लगभग 300 मिलियन टन हो जायेगी और साथ ही कृषि का क्षेत्रफल भी दिनो दिन घटता जा रहा है। अतः यह स्वाभाविक है कि प्रति इकाई क्षेत्र से अधिक से अधिक उत्पादन लिया जाता है। जिससे मृदा में उपस्थित पोषक तत्वों की मात्रा में भी अत्यधिक कमी हो रही है। इन परिस्थितियों में मृदा उर्वरता में होने वाली गिरावट को रोकने के लिए उचित प्रबंधन करना अति आवश्यक है। इसमें दो राय नही है कि दम-तोड़ती मृदा की उर्वरता में सुधार करके टिकाऊ खेती करने की मुहिम चलानी होगी।

मृदा की घटती उर्वरता

मृदा खेती का आधार है और मृदा उर्वरता व मृदा उत्पादकता में आपस में बहुत गहरा सम्बन्ध है। मृदा की उर्वरता घटती है तो मृदा के द्वारा फसल का उत्पादन बढ़ाने की क्षमता भी कम होती है । अतः यह आवश्यक हो जाता है कि फसल उत्पादन के लिए मृदा की उर्वरता हमेंशा अच्छी रहे। फसलों के उत्पादन के परिणामस्वरुप जितना पोषक तत्व फसलें जमीन से उपयोग कर रही है उस मात्रा को हम किसी प्रकार पुनः धरती में लौटाने का ईमानदारी से प्रयास करें। ऐसा न करने पर भूमि के पौषक तत्व भंडार का दोहन होगा और मृदा की उर्वरता में गिरावट होती जायेगी। हम गत 4 दशकों से मृदा के साथ अनैतिक व्यवहार करते आये हैं जिससे फलस्वरुप शुरुआत में मृदा में केवल नाइट्रोजन की कमी थी, वही आज कई आवश्यक तत्वों की कमी हो जाने के कारण मृदा की सेहत एवं उर्वरता खराब हो गयी और उसकी फसलों की टिकाऊ खेती करने के लिए पौषक तत्वों की आपूर्ति करने की क्षमता भी घट गयी।

पौधो के लिए आवश्यक पौषक तत्व

पौधो की उचित वृद्वि एवं विकास के लिए 17 आवश्यक पौषण तत्वों की आवश्यकता होती है। यदि इन आवश्यक पौषक

तालिका-1. हमारे देश में पोषक तत्वों का घटता संतुलन पोषक तत्व

	कुल संतुलन (000 टन)			शुद्ध संतुलन (000 टन)		
पोषक तत्व	कुल आपूर्ति	निष्कासन	संतुलन	कुल आपूर्ति	निष्कासन	संतुलन
नाइट्रोजन	10,923	9,613	1,310	5,461	7,690	-2,229
फास्फोरस,	4,188	3,702	486	1,466	2,961	-1,496
पोटेशियम	1,454	11,657	-10,202	1,018	6,994	-5,976
कुल	16,565	24,971	-8,406	7,945	17,645	-9,701

तत्वों में एक भी कमी हो गयी तो फसल उत्पादन सार्थक रुप से घट जायेगा। पौधों को तीन आवश्यक तत्व कार्बन, हाइड्रोजन और आक्सीजन हवा व जल से प्राप्त होते रहते हैं। और इनको मृदा में अलग से डालने की जरुरत नहीं होती है अन्य 14 में से 6 पोषक तत्व नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटेशियम, गंधक, जिंक एवं आयरन की कमी मृदा में देखने को मिल रही है। देश के अनेक क्षेत्रों में इनकी अत्यधिक कमी हो चुकी है। शेष 8 पोषक तत्व (कैल्शियम, मैग्नीशियम, कॉपर, क्लोरीन, मैंगनीज, बोरोन, मोलिब्ब्डेनम एवं निकिल) की उपलब्धता की कोई खास समस्या नही पायी गयी। जब मृदा में आवश्यक पोषक तत्व की कमी होने से फसल में इन तत्वों की कमी के लक्षण प्रत्यक्ष रुप से बड़े पैमाने पर दिखाई देने लगते है और फसल उत्पादन में गिरावट अथवा ठहराव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। अतः हमें टिकाऊ खेती करने से पहले मृदा उर्वरता में हो रही गिरावट के निम्नलिखित कारणों को संक्षित रूप में जानने की जरूरत है।

मृदा उर्वरता में हो रही गिरावट के कारण

(1) **पोषक तत्वों का दोहनः** हमारे देश में किसानों द्वारा फसल सघनीकरण से फसलें मृदा से पोषक तत्वों की बहुत बड़ी मात्रा का दोहन करती हैं जब किसान इनकी आपूर्ति रासायनिक उर्वरको के द्वारा करता है लेकिन किसान बिना मृदा परीक्षण के ही उर्वरकों का अपर्याप्त एवं असंतुलित प्रयोग करता है जिसके परिणामस्वरुप मृदा की उर्वरता तथा उर्वरको–उपयोग क्षमता दिनों–दिन घट रही है।

(2) **मृदा में पोषक तत्वों का बिगड़ता संतुलनः** हमारे देश में प्रमुख पोषक तत्वों की स्थिति के बारे में जानकारी तालिका–1 में दी गई है। इससे स्पष्ट है कि भारतीय कृषि 97 लाख टन नाइट्रोजन+फास्फोरस+ पोटेशियम की कमी के नकारात्मक संतुलन की मार झेल रही है। इस 97 लाख टन की पोषक तत्वों की मात्रा में 59 लाख टन हिस्सा केवल पोटेशियम का है। नाइट्रोजन की कमी 22 लाख टन और फास्फोरस की 19 लाख टन है। इस तालिका से साफ है कि जितनी मात्रा में नाइट्रोजन और फास्फोरस का प्रयोग किया जाना चाहिए उतनी मात्रा में नाइट्रोजन और फास्फोरस की पूर्ति करने में भी असमर्थ रहे है। साथ ही गौण एवं सूक्ष्म पोषक तत्वों प्रयोग न के बराबर है। इन्हीं कारणों से ही मृदा में पोषक तत्वों का संतुलन बिगड़ता जा रहा है।

(3) **मृदा क्षरणः** मृदा की उपरी सतह में जैव पदार्थ एवं पोषक तत्वों से भरपूर होती है और अधिकांश पौधे पोषक तत्वों की आवश्यकता भी इस सतह से करते है। वनों की कटाई, अत्यधिक पशु–चराई एवं अवैज्ञानिक मृदा प्रबधंन आदि से उपरी सतह से जल एवं वायु द्वारा मृदा क्षरण होने से जैव पदार्थ एवं पोषक तत्वों की एक बड़ी मात्रा का नुकसान हो जाता है। जिससे मृदा की उर्वरता में सार्थक कमी आ गयी।

(4) **मृदा की खराब भौतिक दशाः** धान की फसल में पड़लिगं करने से मृदा की संरचना बिगड़ती है जिससे मृदा उर्वरता एवं फसल उत्पादन में कमी आती है।

(5) **जैविक क्रियाशीलता में कमीः** वर्तमान में किये जा रहे एकल पद्धति फसल चक्र सघनी करण तथा फसल अवशेषों को खेतों में जलाने से मृदा में जैव पदार्थो कमी अनुभव की जा रही है जिससे मृदा की गुणवत्ता में कमी आयी है। घटते जैव पदार्थो के कारण मृदा में मौजूद लाभकारी सूक्ष्मजीवों की क्रियाशीलता में भी कमी आ जाती है। ये सूक्ष्म–जीव मृदा की सेहत में सुधार करते है।

(6) **समस्याग्रस्त मृदाः** इन मृदाओं में अम्लीकरण, क्षारीयकरण ओर लवणीकरण के कारण विभन्न पोषक तत्वों की उपलब्धता प्रभावित होती है। अम्लीय मृदा में लौह तत्व की विषक्तता हो जाती है जबकि क्षारीय मृदा में इसकी कमी आ जाती है इसी प्रकार क्षारीय मृदा में फास्फोरस तत्व की उपलब्धता में कमी आ जाती है साथ ही मृदा उर्वरता में गिरावट आती है।

तालिका -2 : सूक्ष्म-पोषक तत्वों की कमी को दूर करने के लिए मृदा अनुप्रयोग और पर्णीय छिड़काव

उर्वरक	मृदा अनुप्रयोग (कि.ग्रा./हेक्टेयर)	पर्णीय छिड़काव/हेक्टेयर
जिंक सल्फेट	15–25	5 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट+1000 लीटर पानी
फेरस सल्फेट	50–150	(मृदा अनुप्रयोग अधिक उपयोगी नहीं है।) 10 कि.ग्रा. फेरस सल्फेट+1000 लीटर पानी
मैंगनीज सल्फेट	25	5 कि.ग्रा. मैंगनीज सल्फेट+2.5 कि.ग्रा. बुझा चूना +1000 लीटर पानी
बोरैक्स	5–10	1 कि.ग्रा. बोरैक्स+1000 लीटर पानी
सोडियम मोलिबडेट	1–2	10 कि.ग्रा. सोडियम मोलिबडेट +1000 लीटर पानी

(7) **कृषि विविधता का मृदा स्वास्थ्य पर प्रभाव :** मौजूदा समय में की जा रही धान ओर गेहूँ की अधिक उपज देने वाली किस्मों के प्रचलन के बाद भारतीय कृषि की विविधता गायब होती जा रही । कृषि-विविधता दो स्तरों पर कम हुई है एक तो मोटे अनाज, दालों और तिलहनों के फसल-चक्र की जगह गेहूँ और धान के मोनोकल्चर आ गए है। दूसरा गेहूँ और धान की फसलें भी बहुत संकीर्ण आधार पर ली गई है जिससे पोषक तत्वो का दोहन बहुत अधिक मात्रा में होता है। हरित क्रान्ति की शुरुआत से आज तक मिट्टी की उर्वरता में निश्चित रुप से काफी कमी हुयी है।

मृदा उर्वरता कैसे बढ़ाएं

उपरोक्त बिंदुओ से स्पष्ट हो जाता है कि मृदा उर्वरता में गिरावट के अनेक कारण हैं। मृदा उर्वरता में सुधार लाने के लिए निम्न बिंदुओ के तहत चर्चा की जा रही है। खाद्य सुरक्षा बढ़ाने के लिए मृदा की उर्वरता में सुधार लाना परम् आवश्यक है।

1. संतुलित पोषक तत्व

पोषक तत्वों की मात्रा मृदा परीक्षण के अधार पर प्रयोग करनी चाहिए। पोषक तत्वों की संतुलित मात्रा न केवल कम व निम्न गुणवत्ता का उत्पादन देती है, बल्कि मृदा में उपस्थित पोषक तत्वों के भंडार का भी अत्यधिक दोहन करती है। जिन तत्वों को मांग से अधिक मात्रा में डाला जाता है उनकी सम्पूर्ण मात्रा पौधे द्वारा अवशोषित नहीं हो पाती है। साथ ही कुछ पोषक तत्वों (लौह,जिंक, कापर) की अधिक मात्रा के प्रयोग से पौधों में विशेषता हो सकती है। इस प्रकार असंतुलित पोषण प्रबंधन सीमित संसाधनों का दुरुपयोग है। भारत में हुए अनेक दीर्घकालीन प्रयोगों से यह सिद्ध होता है कि मृदा की उर्वरता को बनाए रखने के लिए संतुलित पोषण श्रेष्ठतम विकल्प है। एक पोषक तत्व की अत्यधिक मात्रा में उपस्थिति अन्य तत्व के अवशोषण को प्रभावित करती है। उदाहरण के लिए फलस्फोरस व पोटेशियम उर्वरक की अनुपस्थिति में पौधों की नाइट्रोजन के प्रति अनुक्रिया कम होती रहती है। नाइट्रोजन के साथ यदि फलस्फोरस एवं पोटेशियम की उपयुक्त मात्रा का प्रयोग किया जाए तो फसल के उत्पादन को बढ़ाया जा सकता है तथा पोटाश डालने से उसे और अधिकतम स्तर तक पहुंचाया जा सकता है। साथ ही गंधक एवं सूक्ष्म पोषक त्तत्वों का भी आवश्यकतानुसार प्रयोग किया जाए। गंधक प्रबंधन पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

तालिका-3. दलहनी हरी खाद फसलों का नाइट्रोजन स्थिरीकरण (यौगिकीकरण) में योगदान

फसल का नाम	उगाने की ऋतु	हरे पदार्थ की औसत उपज (टन/हेक्टेयर)	हरे पदार्थ में नाइट्रोजन (प्रतिशत)	मृदा में नाइट्रोजन का योगदान (किग्रा./हेक्टेयर)
ढैंचा	खरीफ, जायद	15	0.45	77
मूंग	खरीफ, जायद	5	0.53	40
लोबिया	खरीफ, जायद	12	0.50	56
ग्वार	खरीफ, जायद	14	0.35	62
बरसीम	रबी	10	0 43	60

भारत में गहन खेती के प्रचलित होने के साथ एक तत्व की अधिक मात्रा वाले उर्वरक को अधिक उपयोग में लिया जाता है जिनमें गंधक का स्तर या तो बहुत निम्न होता है अथवा शून्य होता है। इसी कारणवश भारत को अधिकांश उपजाऊ भूमियों में इसकी कमी देखी गई है। गंधक के साथ अन्य सूक्ष्म तत्वों को भी कमी स्पष्ट दिखाई देनी लगी है। पौधों में वृद्धि तथा उत्पादन को कम करने के लिए जिम्मेदार सूक्ष्म तत्वों में वर्तमान समय में जस्ता अत्यधिक महत्वपूर्ण है जो विस्तृत रूप से सभी गहन कृषि वाले क्षेत्रों में आवश्यक स्तर से कम है। भारत के सभी धान-गेहूं वाले क्षेत्रों में जस्ते की उपयुक्त मात्रा डालने से उत्पादन में दर्शनीय वृद्धि देखी गई है । सूक्ष्म-पोषक तत्वों की कमी को दूर करने के लिए सूक्ष्म-पोषक तत्वों को मिट्टी में डालकर अथवा पर्णीय छिड़काव द्वारा दूर किया जा सकता है (सारणी-3)। संतुलित पोषण प्रबंधन से न केवल उत्पादन में वृद्धि होती है, अपितु पोषक तत्व उपयोग क्षमता व जल उपयोग क्षमता को भी बढाया जा सकता है जो अंततः कृषि के लाभ को बढ़ाता है। इसलिए फसलोत्पादन से अधिकतम लाभ लेने के लिए सभी 17 आवश्यक पोषक तत्व पौधों को संतुलित मात्रा में उपलब्ध होने चाहिए। अतः स्पष्ट हो जाता है कि टिकाऊ खेती के लिए पौधों की उचित वृद्धि के लिए सभी आवश्यक तत्वों का पर्याप्त मात्रा एवं सही अनुपात में होना अनिवार्य है।

ढैंचा व मूंग की महत्वपूर्ण हरी खादे

2. समेकित पोषक तत्व प्रबंधन

इस पादप पोषण तकनीकी के तहत के जैविक स्रोतो का रासायनिक उर्वरको के साथ संयोजित कर उपयोग कर मृदा की उर्वरता को सुधारा जाता है। समेकित पोषक तत्व प्रबंधन में उपयोग होने मुख्य घटकों का संक्षिप्त वर्णन नीचे दिया जा रहा है:

जैविक खाद: जैविक खाद का उपयोग किसान प्राचीनकाल से करते आ रहे हैं परन्तु अधिक पैदावार देने वाली फसल की किस्मों के लिए अधिक पोषक तत्वों की आवश्यकता होने के

कारण जैविक खाद पर निर्भर न रहकर रसायनिक उर्वरकों को मुख्य रूप से प्रयोग में लाते हैं। उर्वरको के लगातार प्रयोग मृदा व पर्यावरण के लिए हानिकारक है। जैविक खाद न केवल पोषक तत्वो की पूर्ति करती है अपितु मृदा की भौतिक, जैविक तथा रासायनिक गुणवता को भी बढ़ाती है भारत मे गोबर की खाद, विभिन्न प्रकार की कम्पोसट, वर्मी कम्पोसट, बायोगैस स्लरी, खालियां, मुर्गी, भेड़ अथवा बकरी से प्राप्त खाद एवं हरी खाद मुख्य रुप से प्रयोग में आने वाले जैविक खाद के स्त्रोत हैं। खेत में हरी खाद के लिए मुख्य रूप से दलहनी फसलें उगाकर मृदा की उर्वरता में सुधार लाया जाना चाहिए। हरी खाद की फसलों में ढैंचा, सन, लोबिया तथा ज्वार इत्यादि मुख्य हैं कुछ महत्वपूर्ण हरी खाद फसलों से प्राप्त हरे पदार्थ की मात्रा एवं नाइट्रोजन की उपलब्धता को सारणी 3 में प्रस्तुत किया गया है।

फसल अवशेष: गेहूँ के अवशेष कपास के डण्ठल, गन्ने की सूखी पत्तियों तथा धान का भूसा इत्यादि की बड़ी मात्रा उपलब्ध है। अनुसंधानो से यह सिद्ध हुआ कि गेहूँ व धान का भूसा के साथ 25 किग्रा. नाइट्रोजन/हेक्टेयर या फली वाली फसल का भूसा डालने से मृदा की उर्वरता पर अवश्य धनात्मक प्रभाव होता है।

प्रैसमड व फ्लाई एश: भारत में वर्ष भर में भारी मात्रा में प्रैसमड, शीरा एवं बैगस (खोई) का चीनी मिलें से उत्पादित होता है जो कि लोहा, जिंक, कैल्शियम तथा मैंग्नीज उपस्थित होता है प्रैसमड का सूक्ष्म जीवों से विघटन करने के पश्चात् खेत में प्रयोग करने से मृदा के रासायनिक, भौतिक व जैविक गुणों में सुधार होता है प्रैसमड व फ्लाई एश को भूमि सुधारक के रुप में प्रयोग करके समस्याग्रस्त एवं सामान्य मृदाओं की उर्वरता में भी सुधार लाया जा सकता है।

जैव-उर्वरक: यह उर्वरको वायुमण्डलीय नाइट्रोजन का स्थिरीकरण, मृदा में उपस्थित फास्फोरस व अन्य पोषक तत्वों को पौधो के लिए उपलब्धता बढ़ाकर मृदा की उर्वरता एवं स्वास्थ्य को ठीक रखते है उदाहरण के लिए फली वाली फसलों में राइजोबियम का सबसे अधिक प्रयोग हुआ।

रासायनिक उर्वरक: आधुनिक कृषि में खाद्यन्न उत्पादन के लिए रासायनिक उर्वरक एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं रसायनिक उर्वरको को मृदा उर्वरता पर धनात्मक प्रभाव इस संदर्भ में लिया जा सकता है कि इनके प्रयोग से मरुस्थलीकरण कम हुआ जैव विविधता बढ़ी, पोषक तत्वों के दोहन में कमी और वनों की कटाई में कमी हुयी है। फसलों में रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग वैज्ञानिक तरीके से करना चाहिए। नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटेशियम के लिए क्रमश: यूरिया, डीएपी ओर म्यूरेट आफ पोटाश उर्वरकों का प्रयोग किया जाता है। गंधक के प्रमुख स्रोत गंधक तत्व, जिप्सम एवं आयरन पाइराइटस है जिंक व आयरन की कमी को दूर करने के लिए क्रमश: जिंक सल्फेट आयरन सल्फेट का प्रयोग किया जाता है। फास्फोरस एवं पोटाशधारी उर्वरकों का प्रयोग प्राय: बुआई के समय तथा नाइट्रोजनधारी उर्वरको (यूरिया/अमोनियम सल्फेट) खाद्यान्न फसलों में, एक बार की बजाय दो या तीन बार करना अधिक उपयोगी रहता है।

उपसंहार

कृषि से जुड़े सभी संस्थानों का कर्तव्य बनता है कि किसानों को टिकाऊ खेती के लिए उपयुक्त सभी संसाधनो के प्रति जागरुक करके और मृदा उर्वरता को बनाये रखना आज के समय की जरुरत है क्योंकि इस मृदा से अधिक से अधिक खाद्यान्न उत्पादन भी लेना। यदि इस ओर पर्याप्त ध्यान नही दिया गया तो आने वाले समय में खाद्य सुरक्षा को संधारित करना असान नही होगा।

पौधों के लिए आवश्यक पोषक तत्वों का वर्गीकरण एवं उनकी कमी के लक्षण

उत्तम कुमार, राकेश कुमार, हरदेव राम, विजेन्द्र कुमार मीना, मगन सिहं एवं राजेश कुमार मीणा

चारा अनुसन्धान एवं प्रबन्ध केन्द्र, भाकृअनुप - राष्ट्रीय डेरी अनुसन्धान संस्थान, करनाल - 132001

पौधे जड़ों द्वारा भूमि से पानी एवं पोषक तत्व, वायु से कार्बन डाई आक्साइड तथा सूर्य से प्रकाश ऊर्जा लेकर अपने विभिन्न भागों का निर्माण करते है।

पोषक तत्वों को पौधों की आवश्यकतानुसार निम्न प्रकार वर्गीकृत किया गया है।

1. मुख्य पोषक तत्व- नाइट्रोजन, फास्फोरस एवं पोटाश।
2. गौण पोषक तत्व- कैल्सियम, मैग्नीशियम एवं गन्धक।
3. सूक्ष्म पोषक तत्व- लोहा, जिंक, कॉपर, मैग्नीज, मोलिब्डेनम, बोरान एवं क्लोरीन।

पौधों में आवश्यक पोषक तत्व

1. पौधों के सामान्य विकास एवं वृद्धि हेतु कुल 16 पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। इनमें से किसी एक पोषक तत्व की कमी होने पर पैदावार पर प्रतिकूल प्रभाव पडता है और भरपूर फसल नहीं मिलती ।
2. कार्बन , हाइड्रोजन व आक्सीजन को पौधे हवा एवं जल से प्राप्त करते है।
3. नाइट्रोजन , फस्फोरस एवं पोटैशियम को पौधे मिट्टी से प्राप्त करते है। इनकी पौधों को काफी मात्रा में जरूरत रहती है। इन्हे प्रमुख पोषक तत्व कहते है।
4. कैल्शियम, मैग्नीशियम एवं गन्धक को पौधे कम मात्रा में ग्रहण करते है। इन्हें गौण अथवा द्वितीयक पोषक तत्व कहते है।
5. लोहा, जस्ता, मैगनीज, तांबा, बोरोन, मोलिब्डेनम और क्लोरीन तत्वों की पौधों को काफी मात्रा में आवश्यकता पडती है। इन्हे सूक्ष्म पोषक तत्व कहते है।

पोषक तत्वों के कार्य

नाइट्रोजन

1. सभी जीवित ऊतकों यानि जड़, तना, पत्ति की वृद्धि और विकास में सहायक है।
2. क्लोरोफिल, प्रोटोप्लाज्मा, प्रोटीन और न्यूक्लिक अम्लों का एक महत्वपूर्ण अवयव है।
3. पत्ती वाली सब्जियों और चारे की गुणवत्ता में सुधार करता है।

फास्फोरस

1. पौधों के वर्धनशील अग्रभाग, बीज और फलों के विकास हेतु आवश्यक है। पुष्प विकास में सहायक है।
2. कोशिका विभाजन के लिए आवश्यक है। जड़ों के विकास में सहायक होता है।
3. न्यूक्लिक अम्लों, प्रोटीन, फास्फोलिपिड और सहविकारों का अवयव है।
4. अमीनों अम्लों का अवयव है।

पोटेशियम

1. एंजाइमों की क्रियाशीलता बढाता है।
2. ठण्डे और बादलयुक्त मौसम में पौधों द्वारा प्रकाश के उपयोग में वृद्धि करता है, जिससे पौधों में ठण्डक और अन्य प्रतिकूल परिस्थितियों को सहन करने की क्षमता बढ जाती है।
3. कार्बोहाइड्रेट के स्थानांतरण, प्रोटीन संश्लेषण और इनकी स्थिरता बनाये रखने में मदद करता है।

4. पौधों की रोग प्रतिरोधी क्षमता में वृद्धि होती है।
5. इसके उपयोग से दाने आकार में बड़े हो जाते है और फलों और सब्जियों की गुणवत्ता में वृद्धि होती है।

कैल्शियम

1. कोशिका भित्ति का एक प्रमुख अवयव है, जो कि सामान्य कोशिका विभाजन के लिए आवश्यक होता है।
2. कोशिका झिल्ली की स्थिरता बनाये रखने में सहायक होता है।
3. एंजाइमों की क्रियाशीलता में वृद्धि करता है।
4. पौधों में जैविक अम्लों को उदासीन बनाकर उनके विषाक्त प्रभाव को समाप्त करता है।
5. कार्बोहाइड्रेड के स्थानांतरण में मदद करता है।

मैग्नीशियम

1. क्लोरोफिल का प्रमुख तत्व है, जिसके बिना प्रकाश संश्लेषण (भोजन निर्माण) संभव नहीं है।
2. कार्बोहाइड्रेड-उपापचय, न्यूक्लिक अम्लों के संश्लेषण आदि में भाग लेने वाले अनेक एंजाइमों की क्रियाशीलता में वृद्धि करता है।
3. फास्फोरस के अवशोषण और स्थानांतरण में वृद्दि करता है।

गंधक

1. प्रोटीन संरचना को स्थिर रखने में सहायता करता है।
2. तेल संश्लेषण और क्लोरोफिल निर्माण में मदद करता है।
3. विटामिन के उपापचय क्रिया में योगदान करता है।

जस्ता

1. पौधों द्वारा फास्फोरस और नाइट्रोजन के उपयोग में सहायक होता है
2. न्यूक्लिक अम्ल और प्रोटीन-संश्लेषण में मदद करता है।
3. हार्मोनों के जैव संश्लेषण में योगदान करता है।
4. अनेक प्रकार के खनिज एंजाइमों का आवश्यक अंग है।

तांबा

1. पौधों में विटामिन 'ए' के निर्माण में वृद्दि करता है।
2. अनेक एंजाइमों का आवश्यक घटक है।

लोहा

1. पौधों में क्लोरोफिल के संश्लेषण और रख रखाव के लिए आवश्यक होता है।
2. न्यूक्लिक अम्ल के उपापचय में एक आवश्यक भूमिका निभाता है।
3. अनेक एंजाइमों का आवश्यक अवयव है।

मैगनीज

1. प्रकाश और अन्धेरे की अवस्था में पादप कोशिकाओं में होने वाली क्रियाओं को नियंत्रित करता है।
2. नाइट्रोजन के उपापचय और क्लोरोफिल के संश्लेषण में भाग लेने वाले एंजाइमों की क्रियाशीलता बढा देता है।
3. पौधों में होने वाली अनेक महत्वपूर्ण एंजाइमयुक्त और कोशिकीय प्रतिक्रियाओं के संचालन में सहायक है।
4. कार्बोहाइड्रेड के आक्सीकरण के फलस्वरूप कार्बन डाईआक्साइड और जल का निर्माण करता है।

बोरोन

1. प्रोटीन-संश्लेषण के लिये आवश्यक है।
2. कोशिका विभाजन को प्रभावित करता है।
3. कैल्शियम के अवशोषण और पौधों द्वारा उसके उपयोग को प्रभावित करता है।
4. कोशिका झिल्ली की पारगम्यता बढ़ाता है, फलस्वरूप कार्बोहाइड्रेड के स्थानांतरण में मदद मिलती है।
5. एंजाइमों की क्रियाशीलता में परिवर्तन लाता है।

मोलिब्डेनम

1. कई एंजाइमों का आवश्यक अवयव है।
2. नाइट्रोजन उपयोग और नाइट्रोजन यौगिकीकरण में मदद

करता है।

3. नाइट्रोजन यौगिकीकरण में राइजोबियम जीवाणु के लिए आवश्यक होता है।

क्लोरीन

1. क्लोरीन पादप हार्मोनों का आवश्यक अवयव है।
2. बीजों में यह इण्डोलएसिटक एसिड का स्थान ग्रहण कर लेता है।
3. एंजाइमों की क्रियाशीलता में वृद्धि करता है।
4. कवकों और जीवाणुओं में पाये जाने वाले अनेक यौगिकों का अवयव है।

पौधों के सर्वांगीण विकास एवं वृद्धि के लिये उपर्युक्त सभी पोषक तत्वों की उपलब्धता आवश्यक है।

पौधों में पोषक तत्वों की कमी के लक्षण

नाइट्रोजन

1. पौधों की बढ़वार रूक जाती है तथा तना छोटा एवं पतला हो जाता है।
2. पत्तियां नोक की तरफ से पीली पडने लगती है। यह प्रभाव पहले पुरानी पत्तियों पर पडता है, नई पत्तियाँ बाद में पीली पडती है।
3. पौधों में टिलरिंग कम होती है।
4. फूल कम या बिल्कुल नही लगते है।
5. फूल और फल गिरना प्रारम्भ कर देते है।
6. दाने कम बनते है।
7. आलू का विकास घट जाता है।

फास्फोरस

1. पौधों की वृद्धि कम हो जाती है।
2. जड़ों का विकास रूक जाता है।
3. पत्तियों का रंग गहरा हरा तथा किनारे कहरदार हो जाते है।

पत्ता गोभी में नाइट्रोजन की कमी के लक्षण

4. पुरानी पत्तियाँ सिरों की तरफ से सूखना शुरू करती है तथा उनका रंग तांबे जैसा या बैंगनी हरा हो जाता है।
5. टिलरिंग घट जाती है।
6. फल कम लगते है, दानो की संख्या भी घट जाती है।
7. अधिक कमी होने पर तना गहरा पीला पड जाता है।

पोटाश

1. पौधों में ऊपर की कलियों की वृद्धि रूक जाती है।
2. पत्तियाँ छोटी पतली व सिरों की तरफ सूखकर भूरी पड जाती है और मुड़ जाती है।
3. पुरानी पत्तियाँ किनारों और सिरों पर झुलसी हुई दिखाई पडती है तथा किनारे से सूखना प्रारम्भ कर देती है।
4. कल्ले बहुत अधिक निकलते है।
5. तने कमजोर हो जाते है।
6. फल तथा बीज पूर्ण रूप से विकसित नहीं होते तथा इनका आकार छोटा, सिकुडा हुआ एवं रंग हल्का हो जाता है।
7. पौधों पर रोग लगने की सम्भावना अधिक हो जाती है।

कैल्शियम

1. पौधों की नयी पत्तियां सबसे पहले प्रभावित होती है। ये

कम पी एच पर मैग्नीशियम की कमी के लक्षण

प्रायरू कुरूप, छेटी और असामान्यता गहरे हरे रंग की हो जाती है। पत्तियों का अग्रभाग हुक के आकार का हो जाता है, जिसे देखकर इस तत्व की कमी बडी आसानी से पहचानी जा सकती है।

2. जड़ो का विकास बुरी तरह प्रभावित होता है और जड़े सड़ने लगती है।
3. अधिक कमी की दशा में पौधों की शीर्ष कलियां (वर्धनशील अग्रभाग) सूख जाती है।
4. कलियां और पुष्प अपरिपक्व अवस्था में गिर जाती है।
5. तने की संरचना कमजोर हो जाती है।

मैग्नीशियम

1. पुरानी पत्तियां किनारों से और शिराओं एवं मध्य भाग से पीली पड़ने लगती है तथा अधिक कमी की स्थिति से प्रभावित पत्तियां सूख जाती है और गिरने लगती है।
2. पत्तियां आमतौर पर आकार में छेटी और अंतिम अवस्था में कडी हो जाती है और किनारों से अन्दर की ओर मुड़ जाती है।
3. कुछ सब्जी वाली फसलों में नसों के बीच पीले धब्बे बन जाते है और अंत में संतरे के रंग के लाल और गुलाबी चमकीले धब्बे बन जाते है।
4. टहनियां कमजोर होकर फफून्दीजनित रोग के प्रति संवेदनशील हो जाती है। साधारणतया अपरिपक्व पत्तियां गिर जाती है।

गन्धक

1. नयी पत्तियां एक साथ पीले हरे रंग की हो जाती है।
2. तने की वृद्दि रूक जाती है।
3. तना सख्त, लकड़ी जैसा और पतला हो जाता है।

जस्ता

1. जस्ते की कमी के लक्षण मुख्यतः पौधों के ऊपरी भाग से दूसरी या तीसरी पूर्ण परिपक्व पत्तियों से प्रारम्भ होते है।
2. मक्का में प्रारम्भ में हल्के पीले रंग की धारियां बन जाती है और बाद में चौड़े सफेद या पीले रंग के धब्बे बन जाते है। शिराओं का रंग लाल गुलाबी हो जाता है। ये लक्षण पत्तियों की मध्य शिरा और किनारों के बीच दृष्टिगोचर होती है, जो कि मुख्यतः पत्ती के आधे भाग में ही सीमित रहते है।
3. धान की रोपाई के 15-20 दिन बाद पुरानी पत्तियों पर छोटे-छोटे हल्के पीले रंग के धब्बे दिखाई देते है, जो कि बाद में आकार में बड़े होकर आपस में मिल जाते है। पत्तियां (लोहे पर जंग की तरह) गहरे भूरे रंग की हो जाती है और एक महीने के अन्दर ही सूख जाती है। सभी फसलों में वृद्दि रूक जाती है। मक्का में रेशे और फूल देर से निकलते है और अन्य फसलों में भी बालें देर से निकलती है।

तांबा

1. गेहूँ की ऊपरी या सबसे नयी पत्तियां पीली पड़ जाती है और पत्तियों का अग्रभाग मुड़ जाता है। नयी पत्तियां पीली हो जाती है। पत्तियों के किनारे कट-फट जाते हैं तने की गांठों के बीच का भाग छोटा हो जाता है।
2. नीबूं के नये वर्धनशील अंग मर जाते है जिन्हें ''एक्जैनथीमा'' कहते है। छाल और लकड़ी के मध्य गोन्द

की थैली सी बन जाती है और फलों से भूरे रंग का स्राव (रस) निकलता रहता है।

लोहा

1. मध्य शिरा के बीच और उसके पास हरा रंग उडने लगता है। नयी पत्तियां सबसे पहले प्रभावित होती है। पत्तियों के अग्रभाग और किनारे काफी समय तक आना हरा रंग बनाये रहते है।
2. अधिक कमी की दशा में, पूरी पत्ती, शिराएं और शिराओं के बीच का भाग पीला पड़ जाता है। कभी कभी हरा रंग बिल्कुल उड़ जाता है।

मैगनीज

1. नयी पत्तियों के शिराओं के बीच का भाग पीला पड़ जाता है, बाद में प्रभावित पत्तियां मर जाती है।
2. नयी पत्तियों के आधार के निकट का भाग धूसर रंग का हो जाता है, जो धीरे-धीरे पीला और बाद में पीला- नारंगी रंग का हो जाता है।
3. अनाज वाली फसलों में ग्रे स्प्रेक खेत वाली मटर में मार्श स्पाट और गन्ने में स्टीक रोग आदि रोग लग जाते है।

बोरोन

1. पौधो के वर्धनशील अग्रभाग सूखने लगते है और मर जाते है।
2. पत्तियों मोटे गठन की हो जाती है, जो कभी- कभी मुड़ जाती है और काफी सख्त हो जाती है।
3. फूल नहीं बन पाते और जड़ों का विकास रूक जाता है।
4. जड वाली फसलों में ''ब्राउन हार्ट'' नामक बीमारी हो जाती है, जिसमें जड के सबसे मोटे हिस्से में गहरे रंग के धब्बे बन जाते है। कभी-कभी जड़े मध्य से फट भी जाती है।
5. सेब जैसे फलों में आंतरिक और बाह्य कार्क के लक्षण दिखायी देते है।

मोलिब्डेनम

1. इसकी कमी में नीचे की पतियों की शिराओं के मध्य भाग में पीले रंग के धब्बे दिखाई देते है। बाद में पत्तियों के किनारे सूखने लगते है और पत्तियां अन्दर की ओर मुड़ जाती है।
2. फूल गोभी की पत्तियां कट-फट जाती है, जिससे केवल मध्य शिरा और पत्र दल के कुछ छोटे-छोटे टुकडे ही शेष रह जाते है। इस प्रकार पत्तियां पूंछ के सामान दिखायी देने लगती है, जिसे "हिप टेल" कहते है।
3. मोलिब्डेनम की कमी दलहनी फसलों में विशेष रूप से देखी जाती है ।

क्लोरीन

1. पत्तियों का अग्रभाग मुरझा जाता है, जो अंत में लाल रंग का हो कर सूख जाता है।

बेबी कोर्न की खेती, किसानों की आत्मनिर्भरता का एक उत्तम विकल्प

हरदेव राम, राजेश कुमार मीणा, राकेश कुमार, मगन सिहं, उत्तम कुमार, मालूराम यादव एवं वी.के. मीणा

चारा अनुसन्धान एवं प्रबन्ध कैन्द्र, भाकृअनुप - राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल-132001

मक्का एक महत्त्वपूर्ण लोकप्रिय एवं सुगमता से वर्ष भर उगाई जाने वाली खाद्यय फसल है। इनका उत्पादन सभी प्रकार की जलवायुवीय परिस्थितियों में किया जा सकता है। इस फसल की उच्चतम आनुवांशिक उत्पादन क्षमता के कारण अनाज कुल की फसलों की रानी कहा गया है। विश्व भर के लगभग 140 देशों द्वारा इसे 150 मीलियन हैक्टेयर मे बोया जाकर 780 मीलीयन उत्पादन प्रति वर्ष किया जाता है भारतवर्ष मे धान व गेहूँ के बाद मक्का सबसे अधिक क्षैत्रफल मे (9.3 मीलियन हैक्टेयर) बोई जाती है तथा 23.70 मीलियन टन उत्पादन के साथ उत्पादन मे द्वितीय स्थान पर है। इसकी खेती प्रमुख रूप से खरीफ ऋतु (70-80%) मे होती है परन्तु इसे वर्षभर उगाया जा सकता है।

राष्ट्रीय खाद्यय सुरक्षा मे इसका योगदान 9-10% है। इसका उपयो मानव आहार (25%), मुर्गी आहार (49%), पशुआहार (12%), स्आर्च (2%) एवं बीज (1%) के रूप में किया जाता है। शहरों के आसपास इसकी खेती भुट्टो के लिए की जाती है। इसे पापकार्न , स्वीट कार्न व बेबी कार्न तथा हरे चारे के लिए भी उगाया जाता है।द भुट्टो को पूर्ण पकने पर तथा बेबी कार्न के रूप में विक्रय कर रोजगार व आय प्राप्त होने के साथ हरा चारा भी प्राप्त होता है।

बेबी कार्न

यह अगुलीनुमा , अनिसेचित भुट्टा होता है जिससे 2-3 ऐ. मी. तक सिल्क (बाल) निकले रहते है। इसे मुख्यता सिल्क निकलने के 1-3 दिन मे पौधो से तोड़ लिया जाता है। इसका उपयोग सलाद, अचार, पकोड़े, खीर व सब्जी आदि बनाने मे किया जाता है। बेबी कार्न 55-65 दिन की अवधी मे तैयार होने के कारण फसल विविधीकरण में भी लाभ दायक है। भुट्टे का छिल्का हटाकर बाजार मे 50-80 रू प्रती किलो मे बेचा जा सकता है तथा इसकी अर्न्तराष्ट्रीय बाजार मे भी अच्छी मांग है। अतः इसके निर्यात की भी अपार सम्भावनाऐं है। इसकी खेती करने से निम्न प्रमुख लाभ है।

1. **पशुओं के लिए उत्तम हराचारा :-** बेबी कार्न की तुड़ाई के पश्चात शेष फसल को हरे चारे के रूप मे काम लिया जा सकता है।
2. **रोजगार सर्जन एवं आर्थिक लाभ :-** बेबी कार्न के बहुउपयोग के कारण अच्छी बाजार मांग है तथा मूल्य अच्छा मिलता है। साथ ही इसके प्रसंस्करण में रोजगार के भी अवसर है।
3. **फसल विविधीकरण :-** बेबी कार्न की खेती अत्यधिक ठण्ड वाले समय (दिसम्बर/जनवरी) को छोड़कर वर्षभर की जा सकती है। यह शहरी क्षेत्रों के आसपास उगाये जाने के लिए उपयुक्त है।
4. **मुल्य सवर्धन :-** बेबी कार्न से विभिन्न प्रकार के व्यंजन बनाये जा सकते है जैसे - खीर, सलाद, पकौड़ा, सूप, सब्जी, अचर, कैंडी, मुरब्बा, बर्फी एवं जैम आदि।
5. **अन्तः फसल के लिए उपयोगी :-** अल्पावधि होने के कारण किसान भाई बेबी कार्न के साथ सब्जियों , दालों , फूलों , इत्यादि को अन्तःफसल के रूप में उपयोग ले सकते है।

बेबीकोर्न एवं सामान्य मक्का में अंतर

सामान्यतः बेबी कार्न की खेती सामान्य मक्का की तरह ही की जाती है परन्तु कुछ विधिन्नताओं को ध्यान में रखना चाहिए जो निम्नांकित है।

1. अल्प अवधी के तैयार होने वाली एकल क्रास संकर बीज एवं किस्म को प्राथमिकता दे। जैसे HM-4 , VL-1
2. अधिक पौध संख्या के लिए 60X15-20 से.मी. पर बुवाई करे।

3. अधिक नत्रजन की आवश्यकता क्योंकि अधिक पौध संख्या के कारण नत्रजन की अधिक जरूरत होती है।

4. डिन्टेसलिंग – समय पर नर मंजरी को निकालना

5. तुड़ाई – सिल्क निकलने के 1-3 दिन में अनिषेचित भुट्टो की तुड़ाई अत्यादि।

बेबी कार्न उत्पादन के लिए महत्त्वपूर्ण एवं आवश्यक शस्य क्रियाएँ

1. भूमि प्रबन्धन

बेबी कार्न की खेती विभिन्न प्रकार की मिट्टियों में सफलतापूर्वक की जा सकती है। उचित जलनिकास युक्त बलूई मटियार से दोमट मृदा जिसमें वायु संचार अच्छा हो तथा पी. एच मान 6.5 से 7.5 के मध्य हो में सफलतापूर्वक इसकी खेती कर सकते है। खरीफ में फसल लेने के लिए एक गहरी गुताई मिट्टी पलटने वाले हल से करके तुरन्त पाटा लगाना लाभदायक रहता है इसके अलावा आजकल शुन्य भू परिस्करण (जीरो टिलेज) द्वारा भी इसकी खेती आसानी से कर सकते है।

2. बीज एवं बुवाई

अच्छी पैदावार हेतु बेबी कार्न की पौध संख्या अधिक रखना आवश्यक है इसके लिए 20-25 किग्रा बीज ही काम में लेना चाहिए साथ ही साथ पौध से पौध की दूरी 15-20 से.मी. रखनी चाहिए।

3. बीज उपचार

बीजों को बुवाई से पूर्व कवक-नाशियों तथा कीटनाशियों से उपचारित करना चाहिए जैसे :- एण्डान 35 एसडी 4g। कि.ग्रा. बीज अथवा केप्टान 2.5 ग्राम मिलीलीटर/कि.ग्रा. बीज की दर से प्रयोग करना चाहिए।

4. उपयुक्त किस्में

बेबी कार्न के लिए सबसे उपयुक्त किस्में HM-4 एवं VL-1 है.

5. बुवाई का उपयुक्त समय

बेबी कार्न को अधिक ठण्डे माह दिसम्बर और जनवरी को छोड़कर किसी भी समय कर सकते है। रबी एवं स्प्रीगं सीजन मे इसकी उत्पाकता दूसरे सीजन से अधिक होती है।

खरीफ :- अंतिम जून से मध्य जूलाई

रबी :- अंतिम अक्टूबर से मध्य नवम्बर

स्प्रींग :- जनवरी प्रारम्भ

6. फसल स्थापना

अनुकूल पादप संख्या प्राप्त करने के लिये फसल स्थापना महत्वपूर्ण भाग हैं। फसल स्थापना में बुआई से लेकरअधिक पौध संख्या प्राप्त करने तक सम्मिलित है। इसमें मुख्यतया पौधों को अधिक और अनुकूलित वृद्धि वातावरण प्रदान करना है। जिसमें किसी तरह का कोई तनाव पौधे को नहीं हो। बेबीकार्न को निम्न विधि द्वारा लगाया जा सकता है। जिसमें (Raised bed/उठा हुआ लाईन) समतल बैड और शुन्य जुताई विधि महत्वपूर्ण है।

क) **उठा हुआ बैड :-** बेबीकार्न की उचित पादप संख्या के लिए सबसे उचित तरीका है। यह तरीका अधिक पानी एवं सीमित पानी दोनों स्थित में अनुकूल है। इसमें बीज की बुआई बैड पर नियमित दूरी पर की जाती है। इस विधि में बीज एवं खाद दोनों का प्रबन्धन अधिक उन्नत तरीके से किया जा सकता है। इसकी बुआई के लिए रेज़्ड बैड प्लान्टर उपलब्ध है। इस विधि के द्वारा हम आदान उपयोग क्षमता 20-25 प्रतिशत तक बढ़ा सकते हैं तथा एक से दौ पानी की बचत कर सकते हैं।

ख) **समतल बुआई :** इस विधि में सामान्यतया बीज की बुआई ड्रील विधि से की जाती है ।

ग) **शुन्य जुताई विधि :** यह विधि मुख्यतया संरक्षण कृषि में उपयोग की जाती है। इसके बिना किसी जुताई किये सीधा जीरों प्लान्टर से बीज को जमीन में डालकर ढ़क दिया जाता है। इसमें स्थापना लागत बहुत कम हो है। यह विधि मुख्यतया चावल-गन्ना और गन्ना-गेहूँ वाले क्षेत्र में प्रसिद्ध हो रही है। यह संसाधन उन्नत

विधि है। जिसमें लागत की मात्रा को घटाकर मुनाफा से बचाया जा सकता है।

7. उर्वरक एवं खाद प्रबचन

उर्वरक का उपयोग जमीन की उर्वरक शक्ति के आधार पर करना चाहिए। पौधों की अनुकुलित वृद्धि के लिए उर्वरक का उपयोग स्वास्थ्य सन्तुलित भाग में करना चाहिए। अगर मृदा की उर्वरता ज्ञात नहीं हो तो 110-112 कि.ग्रा. युरिया, 50 कि.ग्रा. डी. ए.पी., 40 कि.ग्रा. म्यूरेट ऑफ खैराश एवं 15-20 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट/हेक्टर देना चाहिए।

एक तिहाई यूरिया, पूरा डी.ए.पी., म्यूरेट आफ पोटाश एवं जिंक सल्फेट बुआई से पहले तथा एक तिहाई यूरिया को दो भागों में 20-25 दिन एवं 40-45 दिन के बाद छिड़काव करना चाहिए।

8. सिंचाई प्रबंधन

सिंचाई की मात्रा मौसम के अनुसार परिवर्तित होती है पर साधारणतया 3-4 सिंचाई प्रर्याप्त मानी जाती है। सिंचाई अन्तराल 15-20 दिन मौसम अनुसार परिवर्तित होता है।

9. खरपतवार प्रबंधन

बेबीकार्न की अनुकुल उपज के लिए खरपतवार प्रबन्धन एक आवश्यक घटक है। अगर इसका प्रबन्धक सही समय पर नहीं किया जाये तो यह 35 प्रतिशत तक उत्पादन में कमी कर सकता है। इसलिए अनुकुल समय पर खरपतवार प्रबन्धन इसका एक अहम पहलू/घटक है। इसमें लिये बिजाई के तुरंत बाद एयजीन 500 ग्राम एण्ड (सक्रिय तत्व) को 250 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें तथा आवश्यकता पड़ने पर एक बार खुरपी या कसोले से गुड़ाई करे।

10. नरपुष्प को हटाना

बेबीकार्न की गुणवत्ता को बनाये रखने के लिये जब नर पुष्प जैसे ही बाहर आये उसको तोड़कर पशुओं को खिला देना चाहिए तथा इस दौरान ध्वज पति को नुकसान नहीं पहुंचाना चाहिए तथा यह कार्य लाइन से लाइन में करना चाहिये।

11. तुड़ाई (हारवैस्टिंग)

बेबीकार्न के गुल्ले को 3-4 से.मी. लम्बी रेशमी कोयले आने पर तोड़ लें। गुल्ले तोड़ते समय उसके उपर की पत्तिया नहीं हटानी चाहिये, सामान्य तथा पत्तिया हटने से गुल्ले जल्दी खराब हो जाते हैं। इसकी तुड़ाई या तो आवश्यकता अनुसार करनी चाहिए। गुल्ले तोड़ने के बाद बाकी का बचा हुआ भाग आवश्यकतानुसार हरे चारे में जानवरों के लिये किया जा सकता है।

12. उपज

बेबीकार्न की उपज मुख्यता इसकी किस्में एवं मौसम पर निर्भर करती है। जिसमें इसको लगाया जाता है पर सामान्यतया: आवश्यक शस्य क्रियाऐं अपनाते हुये 6-7 क्विंटल बेबीकार्न एवं 90-100 क्विंटल हरा चारा प्रति एकड़ प्राप्त किया जा सकता है।

कृषक महिला प्रशिक्षण

हॉलिस्टिन फ्रिजियन गाय

विविध

भ्रमण कार्यक्रम

बकरी पालन

बकरी पालन का आर्थिक महत्व

आलोक कुमार यादव, अनुपमा मुखर्जी एवं अविनाश सिंह

पशु अनुवांशिकी एवं प्रजनन विभाग, भाकृअनुप - राष्ट्रीय डेरी अनुसन्धान संस्थान, करनाल - 132001

भारत एक कृषि प्रधान देश है। हमारे देश में कृषि मुख्यत: वर्षा पर आधारित होती है। वर्षा अलग-अलग क्षेत्रों में विभिन्न मात्राओं में समय असमय होती है। इसलिए कुछ क्षेत्रों में कृषक बंधुओं को उनकी खेती के लिए सही पानी सही समय पर नहीं मिलने से उनके सामने जीवकोपार्जन की समस्या खड़ी हो जाती है। ऐसी स्थिति में लघु, सीमांत एवं भूमिहीन कृषकों के लिए बकरी पालन कम लागत में अधिक लाभ देने वाला व्यवसाय हो सकता है।

बकरी का दूध उत्तम गुणों वाला हल्के वसा कणों के कारण शीघ्रता से पच जाता है। अत: छोटे बच्चों एवं वृद्ध, तपेदिक, अल्सर, टी.बी. एवं अतिसार के रोगियों के लिए बकरी का दूध अत्यंत उपयोगी साबित होता है। बकरियों से अधिक प्रोटीनयुक्त मांस उपलब्ध होता है। बकरियों की मींगनी से भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ती है, क्योंकि इसमें गोबर की खाद की तुलना में अधिक उपजाऊ शक्ति है। बकरी की इन्हीं विशेषताओं के कारण, राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी को बकरियों से विशेष लगाव था। वे स्वयं भी बकरी के दूध का सेवन करते थे तथा इसे ''गरीब की गाय'' के नाम से सम्बोधित करते थे।

भारतवर्ष में बकरियों की लगभग 23 प्रकार की नस्लें पाली जाती हैं। इनमें जमुनापारी, बारबरी, बीटल, सुरती, उस्मानबादी, चेगू, गड्डी एवं ब्लेक बंगाल प्रमुख हैं। इन नस्लों में जमुनापारी, बारबरी एवं ब्लैक बंगाल क्रमश: दूध देने वाली, द्विकाजी एवं मांस देने वाली नस्लें प्राय: उत्तर भारत में बहुतायत से पाली जाती हैं।

बकरियों से दूध एवं मांस उत्पादन हेतु अच्छी नस्लों के चुनाव के साथ-साथ उत्तम पोषक एवं पौष्टिक आहार भी प्रदान करना चाहिए। बकरियों को प्रतिदिन 8 से 10 घंटे तक यदि चराई हेतु भेजा जाये तो उनके जीवन यापन के लिए पर्याप्त भोजन प्राप्त हो जाता है। बकरियों को खिलाने वाले मुख्य चारे इस प्रकार हैं:-

1. उगाने वाले चारे- बरसीम, लूसर्न, जई, मक्का, रिजका, लोविया इत्यादि।
2. घासें- दूब, मैथी, अन्जन, पैरा, कनकौवा इत्यादि।
3. पत्तियाँ- नीम, बबूल, गूलर, बेरी, झरबेरी, पीपल, बरगद, सीरस और खेजड़ी आदि वृक्षों की पत्तियाँ।
4. खरपतवार- गोखरू, आक, मूंज, मखनी इत्यादि।
5. सूखे चारे- चना, मूंग, सोयाबीन, मटर, उर्द एवं अरहर का भूसा।

बकरियों को गाभिन काल में एवं दूध देते समय लगभग 200 से 250 ग्राम दाना जिसमें मक्का, मूंगफली की खली, चूनी, गेहूँ का चोकर एवं नमक तथा खनिज लवण मिले हुए हो, प्रदान करने से उनकी शारीरिक वृद्धि को अच्छा रखा जा सकता है।

बकरियों के आवास व्यवस्था के लिए प्रति व्यस्क बकरी 15 से 20 वर्ग फुट जगह की आवश्यकता होती है। मेमनों के लिए लगभग 5 से 10 प्रति वर्ग फुट जगह उम्र के हिसाब से उपलब्ध कराना चाहिए।

बकरियों को स्वस्थ रखने के लिए यह आवश्यक है कि उन्हें समय-समय पर कृमि नाशक दवाएँ एवं आवश्यक टीकाकरण अवश्य प्रदान करें। बकरियों को संक्रामक रोगों से बचाने के लिए वर्ष में एक बार मातारोग का टीका, (मानसून से पूर्व) तथा गलघोंटू रोग एवं एकटंगिया रोग वर्ष में दो बार (फरवरी-मार्च) तथा (सितम्बर-अक्तूबर) में मुंहपका खुरपका रोग के बचावकारी टीका अवश्य लगवा लेना चाहिए।

कृषक बंधुओं को जानकारी के लिए बकरी पालन को एक लघु इकाई के रूप से अपनाने हेतु एक अनुमानित आय-व्यय का लेखा-जोखा यहाँ पर दिया जा रहा है जिसमें कि निम्नलिखित मापदण्डों के आधार पर परियोजना को बनाया गया है:-

1. बकरियों का पालन ग्रामीण परिवेश में होगा जहाँ पर चारे की उपलब्धता पर्याप्त मात्रा में होगी।
2. बकरियाँ प्रतिदिन 8 से 10 घण्टे चरने हेतु जायेंगी।
3. वयस्क बकरियों एवे बकरों को दाना गर्भ काल के एक माह पूर्व एवं एक माह पश्चात् तक ही प्रदान किया

जायेगा।

4. एक बार में लगभग 75 प्रतिशत बकरियाँ गाभिन होने का अनुमान है।

5. बकरियों का गर्भ काल लगभग 5 माह है, अतः 15 माह में एक बकरी से 2 ब्याँत प्राप्त की जा सकती हैं।

6. बकरियों से एक ब्यात में उनकी संख्या से डेढ़ गुने मेमने

बकरियों की लघु इकाई हेतु आय-व्यय
(25 बकरियाँ एंव 1 बकरे हेतु)

1.	**स्थायी पूंजी :**		
(अ)	बकरियों की कीमत रूपये 3000 प्रतिनग Xबकरियाँ	=	रू. 75000
(ब)	बकरे की कीमत रूपये 5000 X1	=	रू. 5000
(स)	घास-फूस वं बल्लियों से बने आवास 15 व.फु./बकरी X 100 रू./व.फु. X 25 बकरियाँ	=	रू. 37500
(द)	खाने पीने के बर्तन एवं अन्य उपकरण	=	रू. 2500
	कुल व्यय	=	**रू. 1,20,000**
2.	**अस्थायी पूंजी :**		
(अ)	चारे की कीमत (2 कि.ग्रा/बकरी 25 X120 दिन X 2 रू0 प्रति कि.ग्रा.	=	रू. 12000
(ब)	दाने की कीमत 250 ग्रा. X 26 X120 दिन X 15 रू. प्रति कि.ग्रा.	=	रू. 11250
(स)	मेमनों के लिए 2 से 6 माह तक दाने की मात्रा (100 ग्रा. प्रतिदिन X 50 मेमने X 120 दिन X 15 रू. प्रति कि.ग्रा.	=	रू. 9000
(द)	मेमनों के लिए 6 से 9 माह तक दाने की मात्रा (250 ग्रा. प्रतिदिन X 50 मेमने X 90 दिन X 15 रू. प्रति कि.ग्रा.	=	रू. 16875
(य)	बिजली पानी एवं दवा हेतु 25 रूपये/75 वयस्क/माह X15 माह	=	रू. 28125
(र)	बीमा राशि 13.5% पशुओं की कीमत का 15 माह के लिए	=	रू. 10800
	कुल व्यय	=	**रू. 88050**
3.	**मूल्य ह्रास :**		
(अ)	आवास की कीमत का 10%वार्षिक से 15 माह के लिए	=	रू. 4700
(ब)	उपकरणों की कीमत का 10%वार्षिक से 15 माह के लिए	=	रू. 1000
(स)	बकरियों की कीमत का 15%वार्षिक से 15 माह के लिए	=	रू. 16000
	कुल ह्रास	=	**रू. 21700**
4.	**इकाई की कुल लागत:** (2+3) 88050 + 21700	=	**रू. 109750**
5.	**इकाई से प्राप्त आय:**		
(अ)	दुग्ध विक्रय (75 ली./बकरी X 18 X 20 रू./ली.)	=	रू. 27000
(ब)	पशु विक्रय से (20 नर एवं 20 मादा 9 माह की आयु में) 5000 रू. प्रति नर = 20 X5000	=	रू. 100000
	3000 रू. प्रति मादा = 20 X 3000	=	रू. 60000
(स)	मेगनी एवं बोरे की बिक्री से आय	=	रू. 1000
	कुल आय	=	**रू. 1,88,000**
शुद्ध आय = कुल आय (188000) - कुल व्यय (109750)		=	रू. 78250
प्रतिमाह शुद्ध आय 87625 भाग 15 माह		=	रू. 5216

इस प्रकार हम देखते हैं कि एक बकरी पालक लगभग 5216 रूपये प्रतिमाह एक लघु इकाई से प्राप्त कर सकता है।

प्राप्त होंगे।

7. मेमने की मृत्यु दर 10 प्रतिशत होगी।

8. बकरियों से एक किलो/दिन/बकरी दूध लगभग 150 दिनों तक प्राप्त होगा।

9. बकरियों का दूध 60 दिनों तक मेमनों को पिलाया जायेगा। 90 दिनों में लगभग 75 लीटर प्रति ब्यात दूध बाजार में विक्रय किया जायेगा।

10. समस्त वयस्क नर एवं मादा 9 माह की उम्र में विक्रय हेतु उपलब्ध रहेंगे।

11. चारे की कीमत दो रूपये प्रतिकिलो एवं दाना 15 रूपये प्रति किलों के हिसाब से गणना की गई है।

12. बकरियों का दूध 20 रूपये प्रति लीटर की दर से बेचा जायेगा।

किसी दूसरी भाषा को जानना सम्मान की बात है, लेकिन दूसरी भाषा को अपनी राष्ट्र भाषा के बराबर दर्ज देना शर्म की बात है।

महादेवी वर्मा

बकरी के दूध व माँस से निर्मित उत्पाद

आलोक कुमार यादव, अनुपमा मुखजी, आई.डी. गुप्ता, ए.के.गुप्ता
राज कुमार साह एवं पुष्पराज शिवहरे

पशु आनुवांशिकी एवं प्रजनन प्रभाग, भाकृअनुप - राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल - 132001

बकरी का दूध अधिक पाचक होता है, क्योंकि गायं एवं भैंस के दूध की तुलना में बकरी के दूध में छोटे-छोटे प्रोटीन के अणु पाये जाते है तथा बकरी के दूध के वसा के अणु बहुत पतले कोमल आवरण युक्त और गाय के दूध की तुलना में सूक्ष्म आकार के होते हैं। बकरी का दूध कम गरिष्ठ होता है अर्थात आसानी से पच जाता है।

लैक्टोज पचाने में अक्षम व्यक्तियों के लिए बकरी का दूध एक अच्छा विकल्प है क्योंकि बकरी के दूध में गाय की अपेक्षा 7% कम लैक्टोज होता है तथा जो व्यक्ति लैक्टोज को पचाने में पूर्ण रूप से सक्षम नही होते वे भी अधिकतर बकरी के दूध व दूध से निर्मित उत्पादों को पचा लेते है।

बकरी का दूध पीने से एलर्जी नहीं होती है। बकरी का दूध प्राकृतिक रूप से समांगीकृत एंव एक सुरक्षित उत्पाद है।

बकरी के दूध से निर्मित दुग्ध उत्पाद

बकरी का दूध ज्यादा मात्रा में उपलब्ध नहीं होने के कारण या तो इसे उपयोग कर लिया जाता है या गाय एवं भैंस के दूध के साथ मिलाकर बेचा जाता है। अधिक लाभ कमाने के लिए बकरी के दूध का प्रसंस्करण आवश्यक है। बकरी के दूध का निम्न उत्पादों के रूप में प्रसंस्करण किया जा सकता है।

1. पनीर

बकरी के दूध से पनीर उत्पादन कर बकरी दूध की खपत को बढ़ाया जा सकता है। बकरी के दूध से बने पनीर में किसी प्रकार की अप्रिय गंध नहीं आती है तथा ये गाय के या भैंस के दूध से बने पनीर से अधिक स्पंजी (मुलायम) होता है, जिसे उपभोक्ता ज्यादा पसंद करते हैं। एक प्रतिशत लैक्टिक अम्ल या साइट्रिक अम्ल का घोल मिलाकर स्कंदन करने के बाद मलमल के कपडे में आधा घंटा दबाकर तैयार किया जाता है। पनीर को पैक करके फ्रिज में 3 दिन तक रख सकते है। पनीर की 12-18 प्रतिशत तक मात्रा प्राप्त की जा सकती है।

2. चीज

बकरी के दूध से मुलायम एवं अर्धकठोर चीज निर्मित की जाती है। यूरोप के देशों में बकरी के दूध से निर्मित चीज 'प्रीमियम चीज' के नाम से बेची जाती है।

3. योगर्ट

मुलायम गठन एवं निम्न दही तनाव के कारण उत्तम किस्म का योगर्ट बकरी के दूध से बनाया जा सकता है। इसमें स्ट्रेप्टोकोकस थर्मोफिलस एवं लैक्टोबैसिलस बल्गेरिकस के मिश्रण से किण्वीकृत करके तैयार किया जाता है।

4. खोआ

खोआ एक देशी उत्पाद है जो कि अनेक प्रकार की मिठाईयां बनाने में प्रयोग होता है। बकरी के दूध से तैयार खोआ मुलायम, नरम तथा नमकीन स्वाद वाला होता है। पैदावार लगभग 18 प्रतिशत होती है।

5. श्रीखण्ड

श्रीखण्ड एक अर्धमुलायम खट्टा-मीठा किण्वीकृत दुग्ध उत्पाद है। इसे बनाने के लिए दही को महीने कपडे में स्थानान्तरित कर दिया जाता है और 7-8 घण्टे तक छाछ हटाने के लिये लटका दिया जाता है। चक्का के वजन के आधार पर 70 प्रतिशत पिसी हुई चीनी मिला

देते है, पिसा हुआ इलायची दाना स्वाद को अच्छा करने के लिए मिला दिया जाता है। पूर्णतः बकरी के दूध से तैयार श्रीखण्ड बहुत ही कम कठोरता वाला होता है तथा चम्मच से निकालने पर बहता है इस समस्या का हल चक्का में सभी अवयवों के मिश्रण के समय 2.0-2.5 प्रतिशत जिलेटिन मिलाकर किया जा सकता है।

6. छैना

छैना बकरी के दूध से प्राप्त पारंपरिक दुग्ध उत्पाद है इसे बनाने की प्रक्रिया पनीर बनाने की प्रक्रिया के समान ही है अंतर इतना कि दूध स्कंदन के बाद चक्के को महीन कपड़े में पोटली बनाकर लटका दिया जाता है जिसमें अनावश्यक छाछ निकल जाती है।

7. संदेश

एक बंगाली मिठाई है जो कि बकरी के दूध के छैने से बनायी जाती है। छैने में 35 प्रतिशत चीनी तथा 0.1 प्रतिशत इलायची दाना मिलाकर इसे बनाया जा सकता है।

8. रसगुल्ला

रसगुल्ला एक छैना आधारित मिठाई है। छैना को मैदा के साथ मिलाकर तथा रसगुल्ले बनाकर 60 प्रतिशत चासनी के घोल में पकाया जाता है, बाद में इन्हें 40 प्रतिशत चासनी के पतले द्रव में डुबोकर रखा जाता है।

बकरी के माँस से निर्मित उत्पाद

बकरी को एशिया महाद्वीप का पशुधन कहा जाता है। बकरी एक बहुउपयोगी पशु है जिसका उपयोग दूध एवं माँस दोनों के उत्पादन में किया जा सकता है। बकरी का माँस बहुत ही पोषक होता है। 100 ग्राम बकरी के माँस में लगभग 75 प्रतिशत नमी, 20 प्रतिशत प्रोटीन, 4 प्रतिशत वसा, 1 प्रतिशत राख होती है। इससे निम्न उत्पाद तैयार किए जा सकते है।

1. आचार

बकरी के माँस का आचार एक स्वस्थिर माँस उत्पाद है।

सिरका एवं तेल में नमक मसाले आदि मिलाकर अधिक आयु के बकरे-बकरियों के माँस से निर्मित अचार को कमरे के तापक्रम पर दो महीने तक सुरक्षित रखा जा सकता है। नमक मसाला आदि सही प्रकार मिश्रित अचार तैयार होने में लगभग एक सप्ताह का समय लगता है।

2. सौसेज

सौसेज बकरी के माँस से बने कीमा में मसाले आदि मिलाकर तथा आंतों के खोल (केसिंग्स) अथवा सिथेटिक केसिंग्स में भरकर तैयार किये जाते हैं। सौसेज बनाने में अधिक आयु के बकरे-बकरियों से प्राप्त सख्त एवं रेशेदार माँस को सफलतापूर्वक प्रयोग किया जा सकता है। अनुपयोगी माँस के टुकड़ों एवं उप-उत्पादों का प्रयोग भी सौसेज बनाने में कर सकते हैं।

3. नगेट्स

नगेट्स कीमा में मसाले, वनस्पति तेल, फॉस्फेट एंव नाईट्राइट मिलाकर तैयार किये जाते हैं। नगेट्स पोषक एवं मांस उपभोक्ताओं का पसंदीदा मांस उत्पाद है। इनके बनाने में प्रयोग होने वली खाद्य सामग्री निम्न प्रकार है।

1.	कीमा	700 ग्राम
2.	बर्फ के टुकडे	100 ग्राम
3.	वनस्पति तेल	70 ग्राम

4.	मैदा	30 ग्राम
5.	हरा मसाला	50 ग्राम
6.	नमक	15 ग्राम
7.	सूखा मसाला	18 ग्राम
8.	फॉस्फेट	03 ग्राम
9.	चीनी	03 ग्राम
10.	नाइट्राइट	150 मिलीग्राम

4. पैटीज

पैटीज कीमा से बनाये जाने वाला एक लोकप्रिय माँस उत्पाद है। अच्छे स्वाद के कारण उपभोक्ताओं द्वारा इसे अधिक पसंद किया जाता है। पेटीज सामान्यत: अधिक मसालेयुक्त उत्पाद है, जिसे कीमा, रिफाइन्ड, वनस्पति तेल, गेहू का आटा, मसाले संरक्षी एवं फॉस्फेट मिलाकर तैयार किया जाता है।

5. कवाब

कवाब पारंपरिक मांस उत्पाद है जिसे फास्ट फूड के रूप में विकसित किये जाने के अच्छे अवसर है। कवाब हमारे देश में काफी लोकप्रिय है। उपभोक्तओं की पंसद के अनुसार इसे सीक सामी एंव बोटी कवाब के रूप में तैयार किया जाता है। 2.5 किलोग्राम कवाब के लिये आवश्यक सामग्री निम्न प्रकार है।

1.	कीमा	2.0 किलोग्रम
2.	वनस्पति	200 ग्राम
3.	हरा मसाला	120 ग्राम
4.	चने की दाल	100 ग्राम
5.	मैदा	50 ग्राम
6.	नमक	25 ग्राम
7.	फॉस्फेट	10 ग्राम

बकरियों में नस्ल सुधार हेतु चयन व प्रजनन पद्धतियाँ

आलोक कुमार यादव, अनुपमा मुखर्जी, ए.के.गुप्ता एवं ए.के. चक्रवर्ती

पशु आनुवांशिकि एवं प्रजनन प्रभाग, भाकृअनुप - राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल - 132001

भारतीय बकरियों की अधिकांश नस्लें मांस उत्पादन के लिये प्रसिद्ध हैं, परन्तु उत्तर-पश्चिमी राज्यों की कुछ नस्लें जैसे जमुनापारी,बीटल,जखराना,जालावादी एवं सुरती अधिक दुग्ध उत्पादन के लिये जानी जाती हैं। इन बकरियों की प्रति ब्यांत दूध उत्पादन क्षमता 400-500 लीटर तक तथा दुग्ध काल लगभग 200 दिन का होता है। परन्तु प्रजनन की आधुनिक विधियों के अभाव, अल्प पोषण एवं कुप्रबंधन के कारण ये प्रति ब्यांत लगभग 150-200 लीटर दूध देती हैं। ग्रामीण परिवेश में प्राय: उच्च कोटि एवं नस्ल के बकरों का भारी अभाव रहता है। सामान्यत: बकरी पालक अच्छी बढ़वार वाले बच्चे को जो कि उच्च दूध व मांस उत्पादन वाली बकरी से पैदा होता है, उसे 6 माह की आयु तक थोड़े से लालच में बेच देते हैं तथा सबसे कम वृद्धि/भार वाले बच्चे को बीजू बकरे के रूप में पालते हैं। इस तरह के बकरे संतति में नकारात्मक योगदान करते हैं जिससे पीढ़ी दर पीढ़ी बकरियों की उत्पादन क्षमता में कमी होती जाती है। एक ही बकरे को लगातार 4-6 वर्ष तक प्रजनन हेतु प्रयोग में लाया जाता है, इसके बाद इसी बकरे के नर बच्चों को पुन: नये बकरे के रूप में प्रजनन के लिये चुन लिया जाता है, जिससे रेबड़ में अन्त: प्रजनन की दर में भारी वृद्धि हो जाती है। परिणाम स्वरूप रेबड़ की बकरियों के दूध उत्पादन, भारवृद्धि दर एवं स्वास्थ पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। केवल बड़े-बड़े रेबड़ वाले बकरी पालक (50 से अधिक बकरियां) ही बीजू बकरा रखते है। छोटे रेबड़ वाले बकरी पालक अपनी बकरियों के प्रजनन हेतु इन्ही बकरों के ऊपर निर्भर रहते हैं। बीजू बकरे की अनुपलब्धता के चलते बकरियां सही समय पर गाभिन नहीं हो पाती हैं, जिससे बकरियों की प्रथम ब्यांत के बीच अंतराल में भारी वृद्धि हो जाती है।

अनुवांशिकी सिद्धान्तों को ध्यान में रखकर अच्छी आनुवांशिकी क्षमता वाले पशुओं का चयन कर उन्हें उच्च आनुवांशिक गुणों वाली संतति उत्पन्न करने के लिए प्रजनन हेतु प्रयोग में लाना चाहिये। प्रजनन हेतु ऐसी पद्धतियों को प्रयोग में लाया जाए जिनके फलस्वरूप उत्पन्न होने वाली बकरियों की उत्पादकता में उत्तरोत्तर बढ़ोत्तरी हो, अगली पीढ़ी उपलब्ध जलवायु के प्रति अधिक सहिष्णु और बीमारियों से कम प्रभावित हो। प्रजनन के लिए बकरे-बकरियों का चयन व्यवसाय शुरू करते समय ही आरम्भ हो जाता है। यह वैज्ञानिक सत्य है कि संतान में आधे गुण मां से तथा आधे पिता से आते हैं। इस तरह एक बकरे से जितनी बकरियां गाभिन करायी जाती हैं उनसे उत्पन्न होने वाले सभी बच्चों की आनुवांशिक क्षमता में उस नर का बराबर का योगदान होने से नर की उपयोगिता बहुत बढ़ जाती है। दुग्ध उत्पादन का लक्षण सिर्फ मादा में देखा जाता है जबकि इसके लिए नर में भी गुण होते हैं। इसलिये प्रजनन हेतु उच्च गुणवत्ता वाले बकरों तथा बकरियों का चयन करने के लिये वैज्ञानिक विधि का सहारा लेना आवश्यक है। बकरियों की दूध मांस उत्पादन क्षमता बढ़ाने के लिये प्रजनन की आधुनिक विधियों को अपनाना आवश्यक है। इसके लिये सर्वप्रथम प्रजनन हेतु उन्नत प्रकार के नर एवं मादा का चुनाव करते हैं, उसके बाद उपयुक्त प्रजनन पद्धति को अपनाते हुये चयनित नर एवं मादा को प्रजनन हेतु प्रयोग में लाते हैं।

प्रजनक बकरों का चयन

बकरों के चयन हेतु क्रमिक चयन प्रकिया अपनानी चाहिए। यह व्यवहार में सरल तथा किसानों के लिये अधिक उपयोगी चयन प्रक्रिया है। जिससे आयु बढ़ने के साथ-साथ

अपेक्षाकृत निम्न स्तरीय बकरों का निश्कलन किया जाता रहता है । इस विधि में प्रारम्भिक चयन वंशावली उसके बाद व्यक्तिगत तथा संतति के आधार पर किया जाता है। एक ही गुण के लिये चुनाव पशु की विभिन्न अवस्थाओं पर भी किया जाता है। जैसे-दूध के लिये विभिन्न ब्यांतों में उत्पादन। बकरों के क्रमिक चयन का प्रारूप निम्न प्रकार है।

बकरों के लिये चयन का प्रारूप

50 नर बच्चे आयु 3 माह

40 बच्चे निष्कासित (चयन मां-बाप की उत्पादन क्षमता के आधार पर)

10 नर, आयु 6 माह (चयन बच्चों के बाह्य रंगरूप, जन्म, 3 माह तथा 6 माह की आयु पर वजन के अधार पर)

2 नर निष्कासित (कम शारीरिक वृद्धि)

8 नर, आयु 12 माह

2 नर निष्कासित (कामुकता का अभाव)

6 नर, आयु 18 माह

2 नर निष्कासित (निम्न गर्भ धारण एवं गुणों को संतति में छोड़ने की अक्षमता)

4 नर, आयु 36 माह

2 नर निष्कासित, (बच्चियों के औसत दुग्ध उत्पादन के आधार पर)

2 नर, आयु 40 माह

जिन मादाओं का दूध उत्पादन एवं दूध काल उच्चकोटि का हो उनमें पैदा हुये नर बच्चों को प्रारम्भिक चुनाव प्रक्रिया में वरीयता देनी चाहिये।

प्रजनन हेतु बकरियों का चयन

दूध उत्पादन बढ़ाने हेतु प्रजनन के लिये प्रयोग की जाने वाली बकरियों में प्रमुख रूप से दो गुणों- प्रथम ब्यांत में अधिक दूध उत्पादन तथा लम्बा दुग्धकाल-का होना आवश्यक है।दूध उत्पादन हेतु प्रजनन के लिये बकरियों का चयन भी बकरों की

भांति कमिक चयन प्रकिया द्वारा निम्न प्रकार किया जाता है।

वंशावली चयनः-अन्यसूचनाओं के अभाव में बकरियों का चयन उनके मां अथवा दादी-नानी के दूध उत्पादन एवं दुग्धकाल के आधार पर किया जाता है।

वैयक्तिक चयनः-इस विधि में बकरियों का चयन उनके स्वयं के दूध उत्पादन के आधार पर किया जाता है।

प्रजनन पद्धतियाँ

1. **चयनधर्मी प्रजननः**- इस प्रजनन योजना के अन्तर्गत एक ही शुद्व नस्ल के नर एवं मादाओं का आपस में समागम कराया जाता है। जिन बकरी पालकों के पास शुद्व नस्ल की मादायें हैं वे हमेशा उसी नस्ल का बीजू बकरा रखें। प्रजनन योजना ऐसी रखें की बीजू बकरे का गाभिन कराई जाने वाली बकरियों से पुत्र, पिता, बाबा या भाई का संम्बन्ध न हो। भले ही नर एवं मादा का चयन बड़े ही ध्यानपूर्वक किया हो, उन्हे सर्वगुण संपन्न नरों से गाभिन कराया गया हों तो भी उनकी संतानों में कुछ अवांछनीय गुण प्रदर्शित होने लगते हैं। ऐसे अवांछनीय गुण प्रदर्शित करने वाले बच्चों को उचित समय पर छांट कर निकाल देना चाहिये।

2. **क्रमोन्नाति प्रजननः** इस पद्यति में एक नस्ल विशेष (उच्य क्षमता) के नर को अशुद्ध एवं निम्न क्षमता वाली नस्ल के पशुओं से समागम कराया जाता है। इसके फलस्वरूप 6-7 पीढ़ी के अन्तराल के पश्चात अशुद्ध/निम्न क्षमता वाली नस्ल शारीरिक एवं उत्पादन की दृष्टि से मूल नस्ल के समान गुणधर्म वाली हो जाती है। जिन क्षेत्रों में अवर्गीकृत बकरियां बहुलता में हों, नस्ल सुधार के लिये क्रमोन्नाति अति सहज,सस्ती एवं प्रभावी विधि है। इसके लिए बकरी पालक को क्षेत्र विशेष की जलवायु एवं उदेश्य के अनुरूप वर्गीकृत उन्नत किस्म का बकरा प्रजनन हेतु उपयोग में लाना चाहिये। सभी बकरियों को पीढ़ी दर पीढ़ी में उसी नस्ल के बकरे से पुनः प्रजनन करावें, परन्तु ध्यान रखें कि प्रत्येक पीढ़ी में बकरा बदला जावे जिससे नस्ल सुधार की क्रिया लगातार जारी रहे। क्रमोन्नाति विधि का प्रारूप पिछले पृष्ठ पर दर्शाया गया है। बकरे के उपयोग के संबन्ध में निम्नलिखित सावधानियां बर्तनी चाहिए।

1. प्रजनन हेतु प्रति 25-30 बकरियों के समूह के लिए एक बकरा होना आवश्यक है।

2. एक बकरे को 2 वर्ष से अधिक उसी रेबड़ में कदापि प्रयोग में न लायें।

3. अंतः प्रजनन (इनब्रिडिंग) से बचने के लिए नये बीजू बकरे का चयन लगातार अपने बकरियों के झुण्ड से न करें। ऐसा करने पर अन्तः प्रजनन के स्वाभाविक दोष रेबड़ में दिखाई देगें। संभव हो तो दूसरे रेबड़ से उच्च कोटि का नर/बकरा बदल कर या खरीद कर प्रजनन के लिये उपयोग में लायें।

3. **संकरण (संकर प्रजनन) :-** इस विधि में दो या दो से अधिक नस्ल (जिनमें कम से कम एक नस्ल विदेशी होती है) के बकरों व बकरियों का आपस में समागम कराया जाता है। यह विधि किसानों को विशेषज्ञों के परामर्श के बिना नहीं अपनानी चाहिए क्योंकि प्रथम पीढ़ी के बाद संतानों के अन्दर जो गुण होते हैं, वे धीरे-धीरे नई पीढ़ियों में कम होने लगते हैं और कभी-कभी तो 4-5 पीढ़ी के बाद पशु अपने माता-पिता से भी ज्यादा खराब पाये गये हैं। भावी सन्तानें प्रतिकूल वातावरण को भी सहन नहीं कर पाती हैं। अतः संकरण अधिकतर उस समय प्रयोग किया जाता है, जब बच्चों को सीधा बाजार में बेचा जाये (मुख्य रूप से मांस के लिये) परन्तु उन्हें प्रजनन में प्रयुक्त नहीं किया जाना चाहिए। इस विधि के वैज्ञानिक प्रयोग से नई जाति भी उत्पन्न की जा सकती है एवं सन्तान के आकार, उत्पादन व शरीरिक भार में वृद्धि भी की जा सकती है।

मांस उत्पादन में वृद्धि हेतु ध्यान देने योग्य विशेष बातें

मांस के लिए बकरी पालन की आनुवांशिक चयन पद्धति दूध वाली प्रजातियों से सर्वथा अलग होगी। मांस हेतु बकरी पालन के उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुये प्रजनन हेतु प्रयोग किये जाने वाले नर एवं मादा में निम्न गुणों का होना आवश्यक है।

1. कम उम्र में वयस्क होना।
2. ज्यादा से ज्यादा बच्चे देना।
3. ब्यांत अन्तराल का कम होना।
4. उच्च शारीरिक वृद्धि।
5. बच्चों को पोषित करने हेतु आवश्यक दूध उत्पादन ।

1. **शरीर भार के लिए चयनः-** प्रायः यह देखा गया हैं कि बकरियों में प्रौढ़ावस्था आने से 1-2 महीने पहले शरीर बृद्धि कम हो जाती है। अतः चयनित बकरी जाति के लिए आयु निर्धारण कर लेना चाहिए। इसी आयु के भार को देखकर बकरियों का चयन किया जाना चाहिए । बड़े, मध्यम व छोटे आकार वाली बकरियों में वयस्कता कमशः 12-15, 8-10 व 6-8 महीने में आ जाती है। उसी श्रेणी में वर्गीकृत बकरियों का चयन कमशः 9-10, 8-9, 6-7 महीने की आयु में करें।

2. **ज्यादा बच्चे उत्पादन हेतु चयनः-** क्षेत्र पर जितने बच्चे पैदा होंगे उतना ही अधिक मांस मिलेगा। अतः प्रयत्न किया जाना चाहिए कि बकरियां अपने जीवन काल में ज्यादा से ज्यादा बच्चे पैदा करें। प्राति ब्यातं बच्चों की संख्या बढ़ाकर या दो ब्यांत के बीच के अन्तराल को कम करके अधिक बच्चे पैदा किये जा सकते हैं। उचित प्रबधंन एवं परिवारिक चयन द्वारा वांछित सुधार लाया जा सकता है।

ऊँटनी के दूध के गुणकारी प्रभाव

सुनीता मीणा, विवेक कुमार सिंह, सुमन कपिला एवं वाई.एस.राजपूत

पशु जीव रसायन प्रभाग, भाकृअनुप - राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल - 132001

रेगिस्तानी क्षेत्रों के लाखों लोगों का जीवन ऊँट पालन पर निर्भर करता है। ऊँट जिसे रेगिस्तान का जहाज कहते हैं, शुष्क तथा अर्ध-शुष्क क्षेत्रों के प्रतिकूल वातावरण में भी बड़ी सुगमता से दुग्ध उत्पादन, यातायात तथा कृषि कार्य सम्पन्न करता है। ऊँटनी का दूध अपने स्वास्थ्य वर्धक गुणों के लिए वैश्विक स्तर पर प्रसिद्ध है। यह दूध मरू क्षेत्र में बच्चों का कुपोषण दूर कर पूरे दिन का आहार उपलब्ध कराता है। पोषक होने के साथ-साथ इसमें अनेक बीमारियों को दूर करने की क्षमता भी होती है। अत: यह पारम्परिक इलाज के लिए प्रयोग में लाया जाता है।

ऊँटनी के दूध में शर्करा का स्तर कम मात्रा में तथा खनिज (सोडियम, पोटेशियम, जिंक, मैगनीशियम, लोहा तथा तांबा) एवं विटामिन प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं जोकि अत्याधिक लाभप्रद है। ऊँटनी का दूध मधुमेह के रोगियों के लिए संजीवनी बूटी साबित हो सकता है क्योंकि इसमें इन्सुलिन जैसे पेप्टाइड अत्यधिक मात्रा में पाए जाते हैं। ऊँटनी का दूध का सेवन अनेक रोग जैसे दस्त, उच्च रक्त चाप, पेट के छाले, पीलिया, पित्त की बीमारी, खून की कमी, दमा, मधुमेह इत्यादि में लाभप्रद होता है। ऊँटनी के दूध में लाइसोज़ाइम, लैक्टोफेरिन, लैक्टो पर ऑक्सीडेज़ तथा इम्यूनोग्लोबुलिन जैसे गुणकारी तत्व मौजूद होते हैं। मानव दूध बीटा-लैक्टोग्लोबुलिन रहित होता है। गाय या भैंस के दूध (जिसमें बीटा-लैक्टोग्लोबुलिन उपस्थित है) जब शिशु आहार के रूप में प्रयोग में लाया जाता है तो कुछ शिशुओं में बीटा-लैक्टोग्लोबुलिन के लिए प्रत्यूर्जता एलर्जी हो जाती है। ऐसे शिशुओं में ऊँटनी का दूध (बीटा-लैक्टोग्लोबुलिन अनुपस्थिति के कारण) एक उचित विकल्प है।

शराब व मादक पदार्थ के विनाशकारी प्रभाव

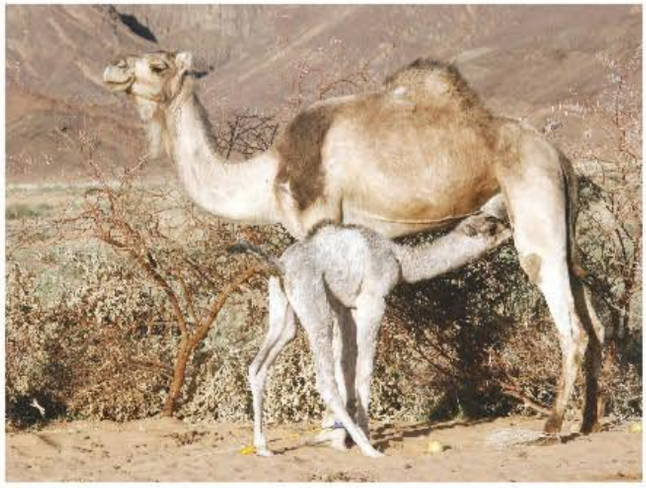

दुनियाभर में अनेकों बीमारी और मृत्यु का प्रमुख कारण है। मादक पदार्थों के सेवन से उत्पन्न जिगर के विकारों की चिकित्सा में ऊँटनी के दूध का सेवन सकारात्मक परिणाम देता है। मधुमेह के रोगियों के रक्त में इन्सुलिन की अपर्याप्त मात्रा उच्च रक्त शर्करा उत्पन्न करती है जिससे उच्च रक्तचाप व हृदय की अनेक बीमारियाँ जन्म लेती हैं। एक तरफ जहाँ ऊँटनी के दूध में शर्करा का निम्नस्तर मधुमेह रोग में उपयुक्त माना गया है वहीं दूसरी तरफ इन्सुलिन व इन्सुलिन जैसे प्रोटीन की उपस्थिति उच्च रक्त शर्करा को नियन्त्रित कर हृदय के विकारों को दूर करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। आमतौर पर किसी भी प्रोटीन को खाने पर आमाश्य की अमलियता उसे घटितकर देती है किन्तु आश्चर्य की बात है कि ऊँटनी के दूध की विशिष्ठता उसे आमाशय की अमलियता से बचाती है। अत: ऊँटनी के दूध में उपस्थित लगभग 52 यूनिट इन्सुलिन प्रति लीटर प्रभावशाली ढंग से पहले प्रकार के मधुमेह के रोगियों में उच्च रक्त शर्करा को नियंत्रित करता है।

अनेक रोग और दोष में ऑक्सीकरण की प्रक्रिया अहम् भूमिका निभाती है। अनियन्त्रित ऑक्सीकरण को

प्रभावशाली ढंग से नियन्त्रित कर ऊँटनी का दूध शरीर को रोग और दोष से मुक्त करता है। ऊँटनी के दूध में गाय के दूध की तुलना में लगभग तीन गुणा विटामिन-सी होता है। जो कि एक सिद्ध ऑक्सीकरण निवारक तत्व है।

आज दुनिया भर में ऊँटनी के दूध में उपस्थित गुणकारी तत्व तथा उनका प्रभाव शोध का प्रमुख केन्द्र बना हुआ है। राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान में किए गए शोध से यह सिद्ध हुआ है कि ऊँटनी के दूध का पाचन गाय या भैंस की तुलना में सरल है। चूहों में किए गए शोध से यह भी पता चला है कि इसका प्रयोग मधुमेह में लाभकारी है। इसकी चिकित्सीय क्षमता और पोषक मूल्यों को देखते हुए यह कहना सार्थक होगा कि आने वाले समय में ऊँटनी के दूध तथा इससे बने उत्पादों का वैकल्पिक दवाओं के रूप में उपयोग बिना पार्श्व दुष्परिणामों के संभव होगा। निःसंदेह ही ऊँटनी के दूध का सेवन गुणकारी, स्वास्थ्य वर्धक एवं प्राकृतिक औषधी साबित हो सकता है।

हिन्दी की परम्परा
साम्प्रदायिकता की परम्परा
नहीं, अपितु एकता,
उदारता, सामाजिक एवं
वैयक्तिक स्वतंत्रता की
परम्परा है।

रामधारी सिंह दिनकर

वर्तमान परिदृश्य में गधी के दुध की महता : एक उपेक्षित प्रजाति को सुरक्षित करने का आधार

तन्मय हाजरा,[1] पुष्प राज शिवहरे[1], सोनिका अलावत[2], रेखा शर्मा[2], विवेक शर्मा एवं एन के वर्मा[2]

1. भाकृअनुप - राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान सस्थान, करनाल -132001
2. भाकृअनुप - राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल - 132001

गधा पहली बार 4000 ईसा पूर्व के आसपास पालतू बनाया गया था और इसके बाद मनुष्यों के साथ दुनिया भर में फैल गया। ये कई स्थानों में महत्वपूर्ण भूमिकाएं निभाने (यद्यपि मानवीय कारकों के परिणाम स्वरूप अफ्रीकी और भारतीय जंगली गधा आज विलुप्त होने की कगार पर हैं) भार ढ़ोने और साथी के रूप में, गधों ने सदियों से मनुष्यों के साथ काम किया है। यह जीवों के एक दूसरे के उद्देश्य को पूरा करने की प्रकृति को प्रदर्शित करता है। विश्व में गधों की संख्या लगभग 44 मिलियन है। इसमें सबसे ज्यादा चीन (11 मीलियन) में पाए जाते हैं इसके बाद इथोपिया व मैक्सिको का नाम आता है। कई शोधकर्ताओं के अनुसार गधों की वास्तविक संख्या इससे कहीं अधिक है क्योंकि इनकी गण्ना सही से नहीं होती।

भारत में गधों की स्थिति

भारत में कुल पशुधन आबादी 512.05 मिलियन है। 2012 की पशुधन गणना के अनुसार देश में खच्चर और गधों की कुल संख्या 0.5 मिलियन है, कुल खच्चर एवं गधों का कुल पशुधन आबादी का लगभग 0.10 प्रतिशत योगदान है। खच्चर आबादी के परिपेक्ष में उत्तर प्रदेश प्रथम स्थान पर है एवं इसके बाद क्रमशः जम्मू-कश्मीर, उत्तराखण्ड , बिहार और हिमाचल प्रदेश का नाम आता है, लेकिन गधों की आबादी में मामले में राजस्थान प्रथम स्थान पर आता है और इसके बाद क्रमशः उत्तरप्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र और बिहार राज्य आते हैं। पिछले पांच पशुधन गणना के अनुसार गधों की संख्या में गिरावट की प्रवृति देखी गई है। भारत में केवल एक ही गधा नस्ल है जिसको मान्यता प्राप्त है वो है स्पिति (परिग्रहण संख्या भारत गधा 0600 स्पिति 05001) जो कि हिमाचल प्रदेश में पाया जाता है।

गधे की उपयोगिता

अधिकांश गधे (लगभग 95 प्रतिशत) छः हजार साल से एक ही प्रकार के काम में इस्तेमाल हो रहे हैं, उनमें सबसे आम भूमिका परिवहन-सवारी या माल ढुलाई या गाड़ी खींचना ही है, इनका प्रयोग खेत जुताई खलियान, पानी खींचने पिसाई आदि में भी हो सकता है। गधे का उपयोग पालतू पशु के रूप में, खच्चर के पिता के रूप में, भेड़ों की रक्षा के लिए, घोड़ों के साथी के रूप में भी हो सकता है। कुछ दुग्ध उत्पादन एवं मांस उत्पादन के लिए भी प्रयोग में लाये जाते हैं।

गधों की कार्यक्षमता का गुण

गधों का सामान्य वजन 125-150 किलोग्राम होता है और अपने वचन का आधा या उससे अधिक भार उठा सकते हैं। गधा कितना भार ले जा सकता है यह उसकी स्थिति व आकार पर निर्भर करता है। एक स्वस्थ व शारीरिक रूप से तन्दुरूस्त गधा एक बीमार व कमजोर गधें की तुलना में अधिक भार उठा सकता है व लम्बे समय तक काम कर सकता है। वांछित गति, काठी, दूरी, इलाके की ऊंचाई, भार की स्थूलता और जानवर का आकार भी उसकी कार्य क्षमता को प्रभावित करता है। माल ढुलाई के अलावा गधे को जुताई अन्य कृषि कार्यों के लिए भी इस्तेमाल किए जाते हैं। लेकिन इनके हलके वजन की वजह से ये केवल वो औजार ही खींच सकते हैं जिसको खींचने के लिए कम बल की आवश्यकता होती है। सामान्यता यह माना जाता है कि एक स्वस्थ गधा दिन भर में अपने वचन के 16 प्रतिशत के बराबर बल लगा कर काम कर सकता है। गधा इससे भी ज्यादा कार्य कर सकता है लेकिन लगातार अन्तराल में आराम के बिना कार्य की क्षमता प्रभावित होती है। सामान्यता: गधे जिस क्षेत्र में पाये जाते है। उसके अनुसार ही कार्य उपयोग में आते हैं, जैसे रेतीली मिट्टी में निराई, स्थानीय सड़कों पर भार ढुलाई आदि हालाँकि पहाड़ी क्षेत्रों में गाडियों की खिंचाई के लिए व जुताई के लिए गधों की अत्यत जरूरत है, पूर्वी अफ्रीका के कुछ हिस्सों में 4-6 गधों को हल खींचते देखना आम बात है। मोरक्को एवं पाकिस्तान में एक गधा एक ऊंट के साथ काम में लगाया जाता है। गधा मार्ग दर्शन एवं मुड़ने में आसान है जबकि ऊंट खींचने के लिए शक्ति प्रदान करता है। ऐसे बहुत से कारण है जो गधें की निम्न स्थिति को प्रदर्शित करते हैं ये आम तौर पर सबसे सस्ता कम लागत पर, कार्य कुशल गरीबों से जुड़ा हुआ जानवर है। अन्य जानवरों (जैसे गाय, भैंस, ऊंट) जिनसे दूध, मांस, खाल,

गोबर जैसे उत्पाद प्राप्त होते है। जो गधों से पाप्त नहीं होते लेकिन नाइजीरिया में गधों का मांस, दुध उत्तर भाग उत्पादन करता है और दक्षिण भाग उपयोग करता है। कुछ और उदाहरण है जैसे की उपसहारा प्रेस्ट्रोरालिस्ट जनजाति उत्तरी केन्या की टरकाना जनजाति एवं इटली में गधे का मांस (सलामी) प्रयोग में लाया जाता है। कोमैक (1989) में यह रिपोर्ट दी कि पिछली सदी में लंदन में गधे का दूध प्रयोग में लाया जाता था। आमतौर पर गधा बहुउद्देश्य जानवर नहीं माना जाता है इसलिए घरेलू अर्थव्यवस्था में इसका प्रयोग बहुत ही सीमित है अधिक समृद्ध समाजों में गधों की सतत कम स्थिति शायद इसी तरह की एक भूमिका का ही परिणाम है की आजकल गधें अपनी उपयोगिता एवं सामाजिक जरूरतों के आधार पर घोड़े, टटुओं के साथी के रूप में प्रयोग में ले जाने के कारण खरीदे जाने लगे हैं।

आज मशीनीकरण की दुनिया में गधा अपनी उपयोगिता खोता जा रहा है जोकि इसकी गिरती पशुगणना का एक प्रमुख कारण है। अत: हमें इसमें अन्य उपयोगिताओं पर ध्यान देना होगा जैसे की इसके दूध की उपयोगिता।

गधे का दूध :

1. गधें के दूध की संरचना मानव के दूध के बहुत करीब है।
2. इसके दूध के प्रोटीन में आठ आवश्यक एमिनो एसिड गाय के दूध की अपेक्षा 38 प्रतिशत अधिक होते हैं।
3. गधे का दूध उन व्यक्तियों के लिए अति उपयोगी है जिनको गाय के दूध से एलर्जी उत्पन्न होती है।
4. अनुसंधानों द्वारा गधे के दूध की कैंसर विरोधी तथा धमनियों में वसा सूजन विरोधी क्षमता निर्धारित की गई है।
5. गधे के दूध से बनने वाली चीज (पुले) विश्व की सबसे कीमती चीज मानी जाती है।
6. भारत में भी गधे के दूध की कीमत 2000 रू प्रतिकिलो तक आंकी गई है।

मानव दूध की तुलना में गधे का दूध :

वसा को छोड़ गधे के दूध की संरचना मानव दूध के बहुत ही करीब है जिसका कारण इसमें पाए जाने वाली प्रोटीन व्हे (मट्ठा) प्रोटीन की प्रचूरता, लैक्टोज का उच्च स्तर तथा खजिन सम्मिश्रण हैं इसका औसत दूध उत्पाद 0.6-1.66 कि.ग्रा./दिन होता है। इसके दूध की संरचना लैक्टेशन की स्टेज, चारे, नस्ल तथा प्रसव के मौसम पर निर्भर करती है।

1. कार्बोहाईड्रेटस : मुख्य घटक लैक्टोज है जिसकी मात्र लगभग मानव के दूध के सामान है (तालिका 1) अधिक लैक्टोज, आटोजेनेसिस प्रक्रिया द्वारा अंत में कैल्शियम तथा फास्फोरस जैसे खनिज तत्वों के अवशोषण में सुधार करता है जिससे कि हड्डियों में खजिन संचय की प्रक्रिया सुशक्त होती है और अतत: ओस्टियोपोरोसिस के रोकथाम में बहुत उपयोगी सिद्ध होता है। गधे में उपस्थित लैक्टोज उसके अच्छे स्वाद प्रदान करता है इसमें पाया जाने वाला गैलेक्टोज मानव तंत्रिका तंत्र के विकास के लिए बहुमूल्य स्त्रोत भी है।

तालिका : 1 तीन प्रजातियों के दूध की संरचना

घटक	गाय	गधा	मानव
पी.एच	6.6-6.8	7.0-7.2	7.0-7.5
प्रोटीन (ग्रा/100 ग्रा)	3.1-3.2	1.5-1.8	0.7-1.9
लैक्टोज (ग्रा/100 ग्रा)	4.4-4.9	5.8-7.4	6.3-7.0
भस्म (ग्रा/100)	0.7-08	0.3-0.5	0.2-0.3
फैट (ग्रा/100 ग्रा)	3.5-3.4	0.3-1.8	3.5-4.0
कुल ठोस (ग्रा/100 ग्रा)	12.5-13.0	8.8-11.7	11.7-12.9

2. दूध की प्रोटीन संरचना : गधे के दूध में गाय के दूध की अपेक्षा न सिर्फ कम प्रोटीन पाया जाता है (तालिका-2) अपितु / व्हे प्रोटीन गधे के दूध में 35-50 प्रतिशत तक पाया जाता है, जबकि गाय के दूध में इसकी मात्र 20 प्रतिशत से अधिक नहीं होती है, व्हे प्रोटीन की मात्रा लैक्टेशन स्टेज के बढ़ने के साथ घटती चली जाती है तथा केजीन गधे के दूध में पाए जाने वाले मुख्य केजीन हैं जबकि के 2, केजीन गधे के दूध में नहीं पाये जाते हैं। इसके मट्ठा में मुख्यत: लैक्टअल्ब्युमिन, लैक्टोग्लोब्यूलिन एवं एंजाइम मिलते हैं जिनकी औसत मात्रा क्रमश: 1-8, 3. 75 तथा 1 मिलि. ग्राम/मिली तक होते हैं। आवश्यक अमिनो एसिड की मात्रा गधे के दूध में गाय की अपेक्षा बहुत अधिक पाई जाती है।

तालिका : 2 विभिन्न प्रजातियों के दूध की प्रोटीन संरचना :

क्र. सं.	घटक	गाय	गधा	मानव
1.	कूड नाईट्रोजन (ग्रा./100 ग्रा)	2.46-2.80	0.64-1.03	0.32-0.42
2	व्हे प्रोटीन (ग्रा./100 ग्रा)	0.55-0.70	0.49-0.80	0.68-0.83
3.	नॉन प्रोटी नाईट्रोजन (ग्रा/100 ग्रा)	0.1-0.19	0.18-0.41	0.29-0.32
4.	कूड नाईट्रोजन (%)	80	47.28	26.06
5.	व्हे प्रोटोन (%)	17.54	36.96	50
6.	कुल ठोस (ग्रा./100 ग्रा)	12.5-13.0	8.8-11.7	11.7-12.9

एमू पालन – एक नवीन व्यवसाय

अविनाश सिंह, अलोक कुमार यादव एवं आई.डी. गुप्ता

भा कृ अनु प – राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान सस्थान, करनाल-132001

आज हर कोई रमणीय जीवन जीने के लिए महत्वाकांक्षी है। आज मनुष्य धन के साथ ऐसे परियोजना की खोज में है जहां से वह कम निवेश में ज्यादा मुनाफा प्राप्त कर सकता है। कम्प्यूटर के इस प्रतिस्पर्धी युग में यह व्यवहारिक रूप से मुश्किल है। परन्तु पशुपालन के साथ मिश्रित व्यवसाय में यह सरल है एवं इसके लिए पशुपालन की विविधता अत्यन्त आवश्यक है। हमें पोल्ट्री की अन्य प्रजातियों की विविधता से अधिक लाभ लेने की जरूरत है। इस क्रम में एमू पालन एक सर्वोत्तम चुनाव हो सकता है।

नाबार्ड परियोजना ने कहा है कि "एमू खेती अनुपूरक आय: अतिरिक्त व्यवसाय एवं सादगी के माध्यम से एक महान व्यवसायिक क्षेत्र एवं क्षमता प्रदान करता है"।

भारत में मुर्गी पालन पिछड़ी जातियों में सबसे अधिक लोकप्रिय है एवं इसके बाद बत्तख एवं बटेर पालन का क्रम आता है। मुर्गी पालन का व्यवसाय भी बहुत बड़ा एंव आय देने वाला है। परन्तु अब एमू पालन भी सभी पशुपालकों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर रहा है।

एमू की विशेषताएं

एमू पक्षी व्यस्कता की अवधि में 65-75 किग्रा. का होता है जिनकी ऊँचाई 5-6 फीट तक होती है। एमू रटीरी नस्ल का पक्षी है। जो कि आस्ट्रीच एवं कैसोवरी के बाद तीसरा बड़ा पक्षी है। इसके पंख छोटे होते हैं एवं यह उड़ने में अक्षम होती है। यह एक सामाजिक प्राणी है। जो कि समूह में रहता है इसका रंग सफेद एवं गहरे रंग का मिश्रण होता है। यह सर्वाहारी पक्षी हैं। पत्तियां, सब्जी, फल, कीड़े एवं संशोधित पोल्ट्री फीड भी खा लेता है। मुख्य संरक्षक वन विभाग द्वारा यह स्पष्ट कर दिया गया है कि एमू एक विदेशी पक्षी है (इसका जन्म स्थान ऑस्ट्रेलिया है।) अत: इसे किसी भी वन जीव संरक्षण अधिनियम में शामिल नहीं किया गया है। अत: इनके पालन खेती एंव बिक्री के लिए वन विभाग की अनुमति की आवश्यकता नहीं होती है।

वर्तमान स्थिति

एमू के आर्थिक महत्व को स्वीकारते हुए आस्ट्रेलियन सरकार ने 1975 मे इसके पालन एवं खेती को मान्य कर दिया था एवं इसके लिए बड़े पैमाने पर फार्म भी बनवाये। धीरे-धीरे एमू की लोकप्रियता एवं उपयोगिता को देखते हुए एमू खेती अमेरिका, यूरोप, फ्रांस सभी तरफ फैल गया।

भारत में एमू पालन पी. सत्य नारायन द्वारा आंध्रप्रदेश में 1996 में छोटे रूप में शुरू किया गया। कुछ ही समय में उन्होने इस व्यवसाय से अच्छा मुनाफा प्राप्त किया, जिसनें बड़े व्यवसायियों एवं विविध पशुपालकों का ध्यान आकर्षित किया। जिससे 2002 तक एमू पालन तमिलनाडु, महाराष्ट्र, कर्नाटक व राजस्थान सभी तरफ फैल गया।

वर्तमान में भारत में चार एमू संगठन है जिनमें दो अखिल भारतीय स्तर पर कार्य कर रहे है।

1. हैदराबाद भारतीय एमू संगठन
2. मुम्बई राष्ट्रीय एमू संगठन

इसके अतिरिक्त एमू फ्यूचर फार्म प्राइवेट लिमिटेड गांधीनगर, गुजरात भी कार्यरत्त है।

आर्थिक महत्व

एमू का मांस

(अ) एमू का मांस एक स्वादिष्ट सुखदायक लाल मांस हैं जो कि प्रोटीन से युक्त होता है।

(ब) एमू का मांस 97% वसा मुक्त एवं 100% प्राकृतिक होता है।

(स) एमू का मांस लोहा विटामिन बी 12, विटामिन सी तथा कोलेस्ट्राल में कम होता है।

(द) इसकी कोमलता एवं मांस की बनावट से इसे एक विशेष किस्म के मांस उत्पाद बनाये जाते है।

(इ) अमेरिका ह्रदय संगठन ने एमू मांस को ह्रदय स्वस्थ रखने वाले मांस का दर्जा दिया है।

एमू के अंडे

1 अंडे अद्भुत गहरे हरे रंग या नीले रंग का होता है।

2 यह 5-6 इंच लंबाई का होता है।

3 इसका वनज 600-800 ग्राम होता है।

4 इसका उपयोग अलग-अलग कला एवं शिल्प अनुप्रयोगों में किया जाता है।

एमू पंख:

एमू के पंख नरम्, सुंदर एलर्जी विरोधी होते है इसका उपयोग टी.वी., कम्प्यूटर, कार, टोपी, बैग, कपड़े और सजावटी वस्तुओं में सजावट के लिए होता है इससे साफ सफाई भी की जा सकती है। एक व्यस्क एमू से 400-600 ग्राम पंख प्राप्त किया जा सकता है।

एमू की त्वचा

एमू की त्वचा पतली मुलायम परन्तु मजबूत होती है। अच्छी गुणवत्ता वाली त्वचा का मूल्य 700-1000 प्रति वर्ग मी. होता है, एवं एक व्यस्क एमू से 8-12 वर्ग मी. त्वचा प्राप्त की जा सकती है। त्वचा का उपयोग जूते, बैग, बेल्ट, पर्स, जर्किन, कवर, मंहगी कारों के सीटकवर बनाने में किया जाता है।

एमू से तेल

एमू से प्राप्त होने वाले उत्पादों में से सर्वाधिक उपयोगी एवं गुणवत्ता वाला उत्पाद है। एक व्यस्क एमू से 4-6 लीटर तेल प्राप्त किया जा सकता है। जो कि बिना गंध, रंग या स्वाद का होता है। वर्तमान बाजार में इसकी (परिष्कृत) की कीमत 4000/- से 5000/- प्रति लीटर है। एवं इसका कच्चा तेल 1000 रू. प्रति लीटर तक बिकता है।

चिकित्सालयीन अनुभवों से पता चला है कि एमू का तेल ज्वलन विरोधी विशेषता से युक्त होता है। यह गैर फास्फोरस होने के कारण हमारी त्वचा को भेद रखता है। वैज्ञानिकों ने बताया है कि एमू तेल में कोलेजन अत्यन्त केन्द्रीत रूप से पाया जाता हैं इसलिए यह और भी प्रभावी होता है। इसका उपयोग सौदर्य, क्रीम, लोशन, साबुन, बालों का तेल, शेंपू, इत्र, मालिश, दवाईयाँ, इत्यादि बनाने में किया जाता है।

एमू तेल में पाये जाने वाले कारक

(अ) ज्वलन विरोधी कारक।

(ब) विष रोधी

(स) कोमलता प्रदान करने वाला

(द) कोलेस्ट्रोल कम करने वाला

(ड) जीवाणु रोधक

(फ) मर्मज्ञ प्रभाव

(ग) घाव भरने वाला कारक

(घ) दाग धब्बे हटाने वाला

(इ) गठिया विरोधी

(ज) उत्कृष्ठ पायसीकारक

(क) दर्द रोधी कारक

(ख) उत्तकों को ताजगी एवं शीतलता देने वाला कारक

उपयोग

(अ) परंपरागत रूप से एमू के तेल का उपयोग मांस पेशियों में व जोड़ों में दर्द के लिए होता है।

(ब) एमू का तेल जलने से होने वाले जख्म पर दर्द कम करता है एवं उसे जल्द ही ठीक करता है।

(स) कास्मेटिकशल्य क्रिया में तेजी से उपचार के लिए शल्य क्रिया उपरांत इसका उपयोग किया जाता है।

(द) शुष्क त्वचा में नमी एवं कोमलता लाने हेतु एमू का तेल प्रभावी है।

(इ) त्वचा में होने वाली खुजली एवं एक्जिमा से छुटकारा दिलाता है।

(फ) कीड़े के काटने पर यह तेल प्रभावी है जो कि सूजन को कम करता है एवं उसे जल्द ही ठीक करता है।

(ग) कमजोर नाखून को मजबूत करता है एवं बालों को मजबूत और रेशम बनाता है।

(घ) उम्र बढ़ने की वजह से त्वचा में होने वाले धब्बे एवं झुरियों को कम करता है एवं त्वचा में ताजगी लाता है।

(इ) सिरदर्द में भी एमू तेल लाभदायक है।

(ज) नहाने के बाद एवं सोने से पहले एमू का तेल लगाना अच्छा होता है।

मृदा एवं जल परीक्षण का कृषि में महत्व

मालु राम यादव[1], हरदेव राम[1], राकेश कुमार[1], अविनाश गोयल[2], तारामणी यादव[1] एवं महेश कुमार[1]

1. भाकृअनुप - राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल-132001
2. भाकृअनुप - भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान - नई दिल्ली - 110012

कृषि व्यवसाय में कम लागत में अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए मृदा एवं जल की जाँच का उतना ही महत्व है जितना मानव जीवन में स्वास्थ्य हेतु चिकित्सक जाँच एवं सलाह का है। मृदा परिक्षण पौधो को पोषक तत्व प्रदान करने की क्षमता का निर्धारण करने की एक रासायनिक विधि है। मृदा जाँच के द्वारा हम फसल बोने से पूर्व मृदा द्वारा पौधो को पोषक तत्व प्रदान करने की क्षमता ज्ञात कर सकते है एवं फसल बोने से पूर्व मृदा में आवश्यक पोषक तत्वो के स्तर का पता लग जाता है जिससे फसल में आवश्यकतानुसार उर्वरको की मात्रा का प्रयोग कर सकते है। इस प्रकार आवश्यक मात्रा में पोषक तत्वों की मात्रा की पूर्ति उर्वरक प्रयोग करके पूरी की जा सकती है जिससे न उर्वरक एवं पोषक तत्वों की हानी होती है एवं न ही पोषक तत्वों की कमी के कारण फसल की उपज घटती है। इस प्रकार कृषि व्यवसाय में मृदा परिक्षण कम लागत में अधिक मुनाफा देनें वाली अति आवश्यक क्रिया है।

मृदा परीक्षण के उद्देश्य

1. मृदा द्वारा पौधो को आसानी एवं सरल रूप में कौनसा पोषक तत्व कितनी मात्रा में उपलब्ध है एवं इस के आधार पर मृदा परीक्षक यह सस्तुति कर सकता है कि अमुक फसल को कौनसा पोषक तत्व कितनी मात्रा में और आवश्यक है।
2. मृदा परीक्षण द्वारा मृदा को पोषक तत्व प्रदान करने की क्षमता ज्ञात होने पर उनकी आपूर्ति के लिए कौन सा उर्वरक कितनी मात्रा में डालना है कि सिफारिश करना।
3. मृदा में उपस्थित विकार जैसे अम्लीयता, लवणीयता एवं क्षारीयता का पता लगाना।
4. मृदा परीक्षण द्वारा मृदा वर्गीकरण की दृष्टि से मृदा उर्वरता समूह की जानकारी प्राप्त की जा सकती है जिससे मृदा उर्वरता मानचित्र बनाने में सुविधा मिल जाती है।
5. मृदा परीक्षण द्वारा मृदा की भौतिक संरचना के बारे में जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

मृदा परीक्षण का समय

मृदा परीक्षण कभी भी करवाया जा सकता है परन्तु जँहा तक सम्भव हो मृदा परीक्षण फसल बोने के एक माह पूर्व करवाना चाहिए। जिससे हम मृदा परीक्षण रिपोर्ट के आधार पर फसल का चयन कर सके एवं समय रहते यह भी पता चल जाए की फसल उत्पादन हेतु कितनी मात्रा में एवं कौनसा उर्वरक देना है। ऐसे क्षेत्र जहाँ सघन खेती की जाती है वहाँ हर साल मृदा परीक्षण करवाया जाना चाहिए एवं जहाँ साल में केवल एक ही बार फसल बोते है वहाँ तीन साल में एक बार मिट्टी का परीक्षण करवाया जाना चाहिए। खड़ी फसल में कभी भी मृदा परीक्षण नही करवाना चाहिए।

मृदा परीक्षण हेतु नमूने एकत्रित करना

मृदा परीक्षण हेतु लिए जाने वाले नमुने को एकत्रित करने में पूर्ण सावधानी बरतनी चाहिए क्योंकि भूमी के बहुत बडे भाग से एक प्रतिनिधी नमूना लेना होता है। अतः लिया गया नमूना उस क्षेत्र का प्रतिनिधीत्व होना चाहिए अन्यथा मृदा नमूने के परीक्षण के आधार पर दी गई संस्कृति गलत सिद्व हो सकती है।

जाँच हेतू नमुना लेते समय निम्न सावधानियां रखी जानी चाहिए

1. मृदा नमूना कभी भी खेत के किनारे, पेड़ के पास या निचे, रास्तें, सिंचाई की नाली, खाद एकत्रित करने के

स्थान या गड्डे आदि के पास से एकत्रित नही किया जाना चाहिए।

2. कभी भी सिंचित खेत से नमूना नही लिया जाना चाहिए।
3. समस्याग्रस्त खेतो का नमूना अलग से लेना चाहिए।
4. मृदा परीक्षण में अगर सुक्ष्म पोषक तत्वों का भी विश्लेषण करना हो तो धातु से बने बर्तन एवं उपकरणो का प्रयोग नही किया जाना चाहिए।
5. मृदा नमूना लेते समय नमूने लिए जाने वाली मृदा गहराई का भी ध्यान रखा जाना चाहिए जैसे शस्य फसलों हेतु 0-20 ऐसी उधानिक फसलों 0-60 सेमी गहराई से मृदा के नमूने लिए जाने चाहिए।
6. एकत्रित प्रतिनिधी नमूने को खेत से प्रयोगशाला में लानें तक किसी प्रकार की मिलावट नही होनी चाहिए।
7. नमूने हमेशां साफ सुथरे कपड़े या प्लास्टिक के थैले में लिया जाना चाहिए।

विधि

1. सर्वप्रथम नमूना लिए जाने वाले स्थान पर से मिट्टी की उपरी सतह से घास-फुस, कचरा आदि हटाकर अंग्रेजी के V आकार का गड्डा (0-15 सेमी गहरा) बनाकर उसकी दोनो दिशाओं से खुरपी की सहायता से ऊपर से निचे तक पतली परत खरोंच का मृदा का नमूना एकत्रित किया जाता है।
2. इस प्रकार खेत से 10-15 स्थानों से नमुने इक्टठा करके भली-भांति मिलाकर एक मिश्रित प्रतिनिधी नमूना तैयार करते है। धूप में सुखानें से नमूने में उपस्थित पोषक तत्वों में अवांछनीय परिवर्तन हो सकता है।
3. एकत्रित मृदा नमुने को चार बराबर भागों में बांट दिया जाता है एवं आमनें सामनें के दो भागों को रख लिया जाता है तथा दो भागो को फेंक दिया जाता है। इस प्रकिया का तब तक अपनाते है जब तक मृदा नमूना का भार लगभग आधा किलो रह जाएं।
4. आधा किलो एकत्रित मिश्रित प्रतिनिधी नमूने को किसी साफ कपड़े या पालिथीन की थैली में भरकर पूरे विवरण के साथ प्रयोगशाला में भेज दिया जाता है।

सिचांई जल परीक्षण

मृदा परीक्षण के साथ-साथ हमे भरपूर फसल उत्पादन हेतु सिंचाई की भी जाँच करवानी चाहिए कयोंकि सिंचाई जल की गुणवत्ता भी फसल उत्पादन को प्रभावित करती है। कई बार बहुत सारे कुओं, नलकुपों का पानी खारा हो जाता है और उससे लगातार लम्बें समय तक सिंचाई करते रहनें से मिट्टी लवणीय या क्षारिय हो जाती है एवं पौधो की वृद्वि पर्याप्त नही हो पाती है। परिणामस्वरूप ऊपज कम होने लगती है। अत: सिंचाई जल के गुणवत्ता परीक्षण को कम महत्व नही दिया जाना चाहिए।

नमूने लेने की विधि

1. सिंचाई जल जाँच हेतु नमूना लेने के लिए आधा लीटर कांच या प्लास्टिक की बोतल उपयुक्त रहती है, जिसे नमूना लेने से पूर्व अच्छी साफ करना चाहिए।
2. नमूना बोतल को दो-तीन बार नमूना लेने वाले जल से भी साफ करना चाहिए एवं उसके बाद उससे नमूना जल भरा जाना चाहिए।
3. नलकूप या हैण्डलूप जल का परीक्षण हेतु नमूना लेना हो तो इसे पहले आधा घण्टें तक चलाना चाहिए। उसके बाद जल का नमूना लिया जाना चाहिए। जल की दूसरा नमूना 3-4 घण्टें चलने के बाद लिया जाना चाहिए।
4. नमूना बोतल के ढक्कन को अच्छी तरह से साफ करना चाहिए। उसमें किसी प्रकार की अशुद्वि नही होनी चाहिए।
5. नमूना बोतल पर सभी सूचनाएं लिखकर प्रयोगशाला में भेज देना चाहिए।

डेरी विकास में चरागाह घासों, वृक्षों एवं झाड़ियों का महत्त्व

राकेश कुमार, बी.एस. मीणा, पुजा गुप्ता सोनी एवं सुब्रमणयम डी.जे.

भाकृअनुप - राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल-132001

अकृष्य भूमि पर प्राकृतिक रूप से उगी घास पेड व झाडियों की प्रति हैक्टेयर उत्पादकता कम होने के कारण चारे का उत्पादन बहुत कम है। अत: चारे का उत्पादन, उत्पादकता व उसकी नियमित उपलब्धता को बनाये रखने के लिए अच्छी किस्म की घास, दलहन तथा पेड व झाडियो से चरागाह व वानिकी-चरागाह का विकास एंव प्रबध आवश्यक है। उपयुक्त वनस्पतियों का चयन कर चरागाह व वानिकी चरागाह के विकास से चारे की उत्पादकता को प्राकृतिक चरागाह के मुकाबले 4 से 8 गुणा तक अधिक बढ़ाया जा सकता है।

1 चरागाह घासें

सेवन

सेवन रेतीले क्षेत्रों के लिए वार्षिक वर्षा 100 से 350 मि. मी के बीच होती है सबसे उपयुक्त घास है। यह राजस्थान, हरियाणा व गुजराज के शुष्क क्षेत्रों में रेतीली भूमियों पर पाई जाती है। राजस्थान के सबसे अधिक सूखाग्रस्त जिलों जैसलमेर, बीकानेर व बाड़मेर की सबसे महत्वपूर्ण घास सेवन है यह घास बहुत ही सूखारोधी है, इसका जडतत्र बहुत विकसित होता है जो क्षैतिज फैलाव में 50-55 मीटर व गहराई में करीब 4 मीटर तक पहुंच जाता है। पौधे की लम्बाई 0.90-1.50 मीटर होती है और इसकी पत्तियों की लम्बाई 30-45 सेमी होती है।

घास की बुवाई पक्तियों में 75 सेमी की दूरी पर 5-9 किलो बीज प्रति हैक्टेयर की दर से की जाती है। सेवन घास के चरागाह से शुष्क क्षेत्रों में 30-35 क्विंटल सूखा चारा व करीब 20 किलो बीज प्रति हैक्टेयरमिलता है। सेवन घास में बीज उत्पादन की समस्या है। अधिक वर्षा में या क्षेत्रों में चारे का उत्पादन 50-70 क्विंटल प्रति हैक्टेयरतक मिलता है। सेवन घास के चारागार से प्रति हैक्टेयर7-8 भेडो को वर्षभर चारा उपलब्ध कराया जा सकता है।

घास की छोटी अवस्था में सभी प्रकार के पशु बड़े चाव से खाते है। परिपक्व घास का तना सख्त हो जाता है जिसके कारण परिपक्व घास को पशु कम खाते है साथ ही परिपक्व घास की गुणवत्ता व पाचकता भी कम हो जाती है सेवन घास में वृद्वि की विभिन्न अवस्थाओं पर 6-14 प्रतिशत प्रोटीन होती है। प्रोटीन का स्तर छोटी अवस्था में अधिक होता है जो परिपक्वता के साथ घट जाता है। घास की शुष्क पदार्थ पाचकता करीब 75 प्रतिशत होती है।

उन्नत किस्में:-काजरी एम-30-5, काजरी-317, काजरी-319

अंजन

अंजन शुष्क व अर्द्धशुष्क क्षेत्रों के लिए चारे की सबसे महत्वपूर्ण घासों में से एक है। यह राजस्थान, पंजाब, हरियाणा, गुजरात, आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु, कर्नाटक, मध्य प्रदेश, पश्चिमी उत्तर प्रदेश व जम्मू की तलहटी में पाई जाती है। राजस्थान में फतेहपुर शेखावाटी क्षेत्र को इसका प्राकृतिक निवास स्थान माना जाता है। अंजन भारी भूमियों से लेकर रेतीले व पथरीले क्षेत्रों तक जहाँ वार्षिक वर्षा 100-1250 मि.मी. के बीच होती है उगाया जा सकता है लेकिन 250-750 मि.मी. वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्र इस घास के लिए अधिक उपयुक्त है। अंजन घास को मध्यम क्षारिय भूमि पर भी उगाया जा सकता है। ऐसी भूमि जिसका पी.एच. मान 7-8 होता है, अंजन घास के लिए उपयुक्त है वैसे इसे 5.5 पी.एच. तक भी उगाया जा सकता है। जलमग्न भूमि अंजन घास के लिए उपयुक्त नहीं है। घास की अच्छी वृद्धि और विकास के लिए 30-35 डिग्री सेन्टीग्रेड तापमान उपयुक्त है लेकिन घास 48 डिग्री सेन्टीग्रेड तापमान तक भी सहन करने में सक्षम है। घास की वृद्धि के लिए कम से कम 5 डिग्री सेन्टीग्रेड तापमान जरूरी है। इसकी

प्रति हैक्टेयरहै। शुष्क क्षेत्रों में ग्रामना घास के चरागाह से प्रति हैक्टेयर3-4 व अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में 4-5 भेडो को वर्षभर चारा उपलब्ध कराया जा सकता है।

पशु ग्रामना को अन्य घासो जैसे अंजन, मोडा धामन, करड व सेवन के मुकाबले कम खाना पसन्द करते हैं। परिपक्व होने पर इसका तना सख्त हो जाता है जिसके खाने से पक्षुओं के मुँह में घास बन जाते है। अत: परिपक्व घास को पशु सामान्यतया नहीं खाते है, छोटी आवस्था में पशु इसे खा लेते है। इसकी शुष्क पदार्थ पाचकता करीब 85 प्रतिशत के बीच होती है। वृद्धि की विभिन्न अवस्थाओं पर घास में 4-14 प्रतिशत के बीच प्रोटीन होती है। ग्रामना घास में ऑक्जेलिक अम्ल भी अन्य घासों से अधिक होता है जो पशुओं के लिए हानिकारक है। लम्बे समय तक ग्रामना घास पशुओं को खिलाने से उनके शरीर में कैल्शियम की कमी हो जाती है। दलहन चारो में कैल्शियम की अधिकता होती है अत: ग्रामना घास को दलहन चारों के साथ मिलाकर खिलाना चाहिए।

उन्नत किस्में:-काजरी-28, काजरी-330, काजरी-627

करड

करड पशुओं की सबसे पसन्द घास है, इसे वृद्धि की सभी अवस्थाओं पर सभी प्रकार के पशु बडे चाव से खाते है। यह मध्यम से भारी भूमियों के लिए जहाँ वार्षिक वर्षा 400-1200 मि. मी. होती है, उपयुक्त घास है। इसे मध्यम लवणीय भूमियों पर भी उगाया जा सकता है। करड मध्यम सूखारोधी घास है, इसका जडतंत्र क्षैतिज फैलाव में 1 मीटर व गहराई में 1.2 मीटर तक पहुँच जाता है। घास की लम्बाई 75-125 से.मी. रहती है, घास की बुवाई पक्तियों में 50-75 से.मी. की दूरी पर 2-3 किलो बीज प्रति हैक्टेयरकी दर से की जाती है। इसके चरागाह से विभिन्न क्षेत्रो में 30-70 क्विंटल प्रति हैक्टेयरसूखा चारा और करीब 30 किलो प्रति हैक्टेयरबीज मिलता है। करड घास में बीज उत्पादन अन्य घासो के मुकाबले अधिक कठिन है। करड़ चरागाह से प्रति हैक्टेयर4-7 भेड़ों को वर्ष भर चारा उपलब्ध कराया जा सकता है। चारे में वृद्धि की विभिन्न अवस्थाओं पर 4-7 प्रतिशत प्रोटीन होती है।

उन्नत किस्में:-काजरी-490, काजरी-491, मारवल-8, आई.जी.एफ.आर.आई.-495-1

रोड्स

इस घास को जहाँ वार्षिक वर्षा 625 से 1250 मि.मी. होती है, सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। यह घास शुष्क व अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में अन्य भूमियों के साथ-साथ उसर व क्षारीय भूमियों पर भी उगाया जा सकता है। घास की बुवाई पक्तियों में 50 सेमी की दूरी पर 4-6 किलो बीज प्रति हैक्टेयर की दर से करते है। इस घास का औसत सूखा चारा उत्पादन 30-40 क्विंटल प्रति हैक्टेयर है। लेकिन अच्छी तरह प्रबन्धित चरागाह से 60-70 क्विंटल प्रति हैक्टेयरसूखा चारा प्राप्त किया जा सकता है। इस घास का चारा काफी पौष्टिक होता है जिसमें वृद्धि की विभिन्न अवस्थाओं पर 8-18 प्रतिशत क्रुड प्रोटीन व 26-35 प्रतिशत रेशा होता है। इस घास का बीज उत्पादन 100-150 किलो प्रति हैक्टेयर है। बीज अक्टुबर-नवम्बर में पककर तैयार हो जाता है।

धवलू

इस घास को 200 से 850 मिमी वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्रों में कंकरीन पथरीली भूमियों पर जिनकी पानी रोकने की क्षमता बहुत कम है, आसानी से उगाया जा सकता है। इसमें सूखा सहन करने की क्षमता बहुत अधिक होती है। घास को पंक्तियों में 50 सेमी की दूरी पर 6-7 किलो बीज प्रति हैक्टेयर की दर से बोते है। इस घास का औसत सूखा चारा उत्पादन 35-40 क्विंटल प्रति हैक्टेयर है लेकिन अच्छी तरह प्रबन्धित चरागाह से 75-80 क्विंटल प्रति हैक्टेयर तक सूखा चारा प्राप्त किया जा सकता है। धवलू घास का चारा अंजन घास के मुकाबले कम स्वादिष्ट होता है, जिसमें वृद्धि की विभिन्न अवस्थाओं पर 3-7 प्रतिशत प्रोटीन व 27-14 प्रतिशत रेशा होता है। इस घास का औसत बीज उत्पादन 60-100 किलो प्रति हैक्टेयर है।

सेन

इस घास को 300 से 2000 मिमी वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्रों में कंकरील, पथरीली व लाल हल्की मिट्टीयों में उगाया जाता है, लेकिन 500-600 मिमी वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्र इस घास के लिए

अच्छी वृद्वि और विकास के लिए गर्म व आर्द्र जलवायु उपयुक्त है।

अंजन सूखारोधी घास है इसका जड़तत्र काफी विकसित होता है जड़ो का क्षेतिज फैलाव करीब 2.5 मीटर व गहराई में 1.5-1.75 मीटर तक पहुंच जाती है। अच्छी तरह विकसित किये गये चरागाह से वर्षा ऋतु में घास की लम्बाई 1.0-1.5 मीटर रहती है जबकि सिंचित भूमियों पर घास की लम्बाई सर्दियों में 40-70 से.मी. व गर्मियों में 60-85 से.मी. रहती है। घास पत्तियाँ 10-30 से.मी. लम्बी व 0.-1.0 से.मी. चौड़ी होती हैं। अंजन घास की वृद्धि स्वभाव इसकी स्पाईक (बाली) व स्पाइकलेटस के रंग व आकार में बहुत विभिन्नता मिलती है। इसमें 8 गुणसूत्र वंश (2 एन् 32 .34. 36. 40. 52 .54 तथा 56) होते है। घास साधारणतया एपोमिक्टिक है लेकिन लैंगिक प्रजनन भी इस घास में पाया जाता है।

घास की बुवाई पक्तियों में 50-75 से.मी. की दूरी पर 5-8 किलो बीज प्रति हैक्टेयरकी दर से करते है। अंजन घास वृद्वि विकसित किये गये चरागाह से शुष्क क्षेत्रो में 4-6 व अर्द्धशुष्क क्षेत्रो में 8-10 भेड़ों को वर्ष भर चारा उत्पादन कराया जा सकता है। अंजन घास के चरागाह से 30-80 क्विंटल प्रति हैक्टेयर सूखा व 50-80 किलो बीज प्रति हैक्टेयर मिलता है।

अंजन घास को सभी प्रकार के पशु छोटी अवस्था से परिपक्व अवस्था तक बड़े आराम से खाते हैं, जबकि छोटी अवस्था में घास की गुणवत्ता, स्वादिष्टता व पाचकता घट जाती है। वृद्वि की विभिन्न अवस्थाओं पर इसके चारे में 4-12 प्रतिकत के बीच प्रोटीन होती है, इसके चारे में तने व पत्तियों का अनुपात करीब 50 प्रतिशत होता है, चारे की पाचकता करीब 80 प्रतिशत होती है।

उन्नत किस्में:-काजरी-357, काजरी-358, काजरी-1106, मारवाड अंजन, बुन्देल अंजन-1, नीला अंजन मोलोपो, वाइलोला

मोडा धामन

जिस जलवायु व भूमि पर अंजन घास उगाई जाती है, यहाँ मोडा धामन को भी उगाया जा सकता है लेकिन 400 मि.मी. से अधिक वर्षा वाले क्षेत्र इसके लिए अधिक उपयुक्त है। प्राकृतिक रूप से मोडा धामन उन सभी क्षेत्रो में मिलती है जहाँ अंजन पाई जाती है। मोडा धामन, अंजन के मुकाबले में कुछ कम सूखारोधी होती है इसका जडतंत्र भी अंजन से कुछ कम विकसित होता है, जडतंत्र का क्षैतिज फैलाव 248 से.मी. व गहराई 140 से.मी. तक पहुँच जाती है। घास की पत्तियाँ 10-25 से.मी. लम्बी व 3-7 मि.मी. चोड़ी होती है। घास के वृद्धि स्वभाव, स्पाईक व स्पाइकलैट्स के रंग तथा आकार में काफी विभिन्नता मिलती है।

मोडा धामन को पंक्तियों में 50-70 से.मी. की दूरी पर 6-10 किलो बीज प्रति हैक्टेअय की दर से बोया जाता है। इस घास के चरागाह से शुष्क क्षेत्रों में 2-5 टन व अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में 8-10 टन सूखा चारा तथा 100-120 किलो बीज प्रति हैक्टेयरमिलता है। घास की वृद्वि की विभिन्न अवस्थाओं पर इसके चारे में 4-11 प्रतिशत प्रोटीन होती है। घास की शुष्क पदार्थ पाचकता करीब 70 प्रतिशत होती है, मोडा धामन छोटी अवस्था से लेकर परिपक्व अवस्था तक सभी प्रकार के पशुओं द्वारा बडे चाव से खाई जाती है लेकिन परिपक्व होने पर घास की गुणवत्ता व पाचकता कम हो जाती है।

उन्नत किस्में:-मारवाड धामन, पूसा येलो अंजन

ग्रामना

ग्रामना बालूमिट्टी से लेकर चिकनी मिट्टी वाले क्षेत्रों के लिए जहाँ वार्षिक वर्षा 250-900 मि.मी. के बीच होती है, उपयुक्त घास है। यह महाराष्ट्र, कर्नाटक,उत्तर प्रदेश व गुजरात में पाई जाती है। घास का जडतंत्र काफी विकसित होता है, जिसका क्षैतिज फैलाव 3 मीटर व गहराई 2 मीटर से भी अधिक पहुँच जाता है। घास की लम्बाई 1.25-1.50 मीटर होती है।

इसकी बुवाई पक्तियों में 50-75 से.मी. की दूरी पर 2.5-3.5 किलो बीज प्रति हैक्टेयरकी दर से की जाती है। इसके चरागाह से प्रति हैक्टेयर40-70 क्विंटल सूखा चारा मिलता है जो अच्छी वर्षा वाले क्षेत्रो में उर्वरक भूमियों पर 100 क्विंटल तक पहुँच जाता है। ग्रामना घास का बीज उत्पादन करीब 70 किलो

अधिक उपयुक्त है। इस घास को 6-8 किलो बीज प्रति हैक्टेयर की दर से बोते है। यह पोष्टिक घास है जिसे जानवर वर्षा ऋतु में खाना काफी पसन्द करते है। चारे में क्रुड प्रोटीन की मात्रा 5-11 प्रतिशत व रेशा करीब 40 प्रतिशत होता है। इस घास का औसत सूखा चारा उत्पादन 50-60 क्विंटल प्रति हैक्टेयर है।

2 वृक्ष व झाडियाँ

खेजडी

राजस्थान का कल्पवृक्ष है, पत्तियाँ (लूंग) चारे व फलियॉ (सांगरी) सब्जी (पंचकुटा) बनाने के काम आती है। बहुत ही सूखारोधी वृक्ष है मगर धीमी गति से बढ़ता है, इसकी शाखाएँ ईधन व बाड़ लगाने में प्रयोग की जाती है। इसके एक पेड़ से औसतन 10-15 किलो सूखी पत्तियाँ व 4-6 किलो सूखी फलियाँ मिलती है। पत्तियों में 12-18 प्रतिशत प्रोटीन होती है, सभी प्रकार के पशु इसकी पत्तियाँ खाते है। कृषि वानिकी चरागाह के लिए उपयुक्त है। क्योंकि फसलो व घासो के वृद्धि व विकास को सामान्यतया प्रभावित नहीं करता है। इसके बीजो को बोने से 24 घंटे पहले पानी में भिगो दें।

बोडी

शुष्क, रेतीले व पथरीले क्षेत्रों के लिए बहुत ही उपयोगी है, अगर खेजडी को शुष्क क्षेत्रों में पाये जाने वाले वृक्षो का राजा कहा जाये तो बोरडी वहाँ की रानी है। इसकी पत्तियाँ (पाला) पशुओं को खिलाने तथा शाखाएँ ईधन व बाड़ लगाने में प्रयोग की जाती है। इसकी पत्तियाँ सभी प्रकार के पशु खाते है, पत्तियों में 14-16 प्रतिशत प्रोटीन होती है। इस झाड़ी की उंचाई कम होने के कारण बिना लोपिंग किये सीधा ही पशुओं को खिलाया जा सकता है। यह वानिकी-चरागाह (ऐले-क्रोपिंग) के लिए बहुत ही उपयुक्त है। इसके बीज को बोने से पहले बीज कवच तोड दें या हटा दें।

मोपेन

तेज बढ़ने वाली काँटें रहित झाडी है, इसकी पत्तियाँ चारे व शाखाएँ ईधन के रूप में प्रयोग की जाती है। इसे बालू, दोमट व पथरीली भूमियों पर उगाया जा सकता है। इससे प्रति पौधा 6-8 किलो हरा चारा मिलता है। जिसमें करीब 14 प्रतिशत प्रोटीन होती है। सभी प्रकार के पशु इसकी पत्तियाँ खाते हैं, इसके बीजो को बोने से 1-2 घण्टे पहने पानी में भिगो दें।

अंजन

यह दोमट से बालू भूमियों के लिए उपयुक्त है, इससे प्रति पौध 15-20 किलो हरी पत्तियाँ मिलती है जिन्हे सभी प्रकार के पशु खाते है, पत्तियों में करीब 9 प्रतिशत प्रोटीन होती है। छत्र कम फैला होने की वजह से प्रति हैक्टेयर अधिक पौधे लगाये जा सकते है। यह कृषि-वानिकी व वानिकी चरागाह के लिए सबसे उपयुक्त वृक्षों में से एक है। इसकी लकड़ी इमारती सामान बनाने के लिए बहुत अच्छी है, इसका बीज बोने से 1-2 घण्टे पहले पानी में भिगो दें।

इजरायली बबूल

यह बहुत सूखारोधी वृक्ष है इसकी पत्तियाँ व फलियाँ पशु खाते है। यह सड़कों के किनारे, वायुरोधक, पट्टी के रूप में तथा कृषि-वानिकी व वानिकी चरागाह के लिए उपयुक्त है। इससे प्रति पौधा 4-5 किलो सूखी पत्तियाँ व 10-12 किलो फलियाँ मिलती है। पत्तियाँ भेड़, बकरी व ऊँट वृद्धि खाई जाती है। पत्तियों में करीब 15 प्रतिशत प्रोटीन होती है। इसका बीज बोने से पहले करीब 20-25 मिनट तक गंधक के अम्ल से उपचारित करे।

सू-बबुल

बहुत तेज बढ़ने वाला वृक्ष है, अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में कृषि-वानिकी (ऐले क्रोपिग) व वानिकी चरागाह के लिए उपयुक्त है। इसके पेड़ से पत्तियों के साथ-साथ ईधन के लिए भी पर्याप्त लकडी मिलती है। इसकी पत्तियाँ व कोमल शाखाएँ हरी खाद के रूप में भी प्रयोग की जाती है। यह दोमट भूमि के लिए अधिक उपयुक्त है। इससे प्रति पौधा 1-2 किलो पत्तियाँ मिलती है, पत्तियाँ सभी प्रकार के पशु खाते हैं, पत्तियों में 17-20 प्रतिशत प्रोटीन होती है। बीज को बोने से 4-6 घण्टे पहले पानी में भिगो दे।

नीम

शुष्क व अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में सड़कों के किनारे तथा घरों में, सार्वजनिक स्थानों व खेतो पर छायादार वृक्ष के रूप में लगाने के लिए सबसे महत्वपूर्ण वृक्षों में से एक है। लकड़ी इमारती सामान बनाने व ईंधन के रूप में तथा बीज, पत्तियाँ व छाल दवाईयाँ, कीटनाशक व फंफुदीनाशक बनाने के काम आते हैं। खली कार्बनिक खाद के रूप में प्रयोग की जाती है जो पोषक तत्वों के साथ-साथ फंफुदीनाशक व कीटनाशक का भी काम करती है। कम बढ़ने वाली फसलों के साथ कृषि-वानिकी में तथा वानिकी-चरागाह के लिए भी लगाया जा सकता है। इससे प्रति पौधा 250-350 किलो हरी पत्तियाँ मिलती है जिनमें 12-18 प्रतिशत प्रोटीन होती है। यह भेड़, बकरी, ऊँट के खाने के लिए उपयुक्त है।

यूटान

यह एक झाड़ी है इसके पौधे की ऊंचाई कम होने के कारण बिना लोपिंग किये सीधा ही पशुओं को खिलाया जा सकता है। यह वानिकी-चरागाह (ऐले क्रोपिंग) के लिए बहुत ही उपयुक्त झाड़ी है। इसे बालू, दोमट व पथरीले क्षेत्रों में उगाया जा सकता है। भेड़, बकरी तथा ऊँट इसकी पत्तियाँ खाते है। इसके बीज बोने से 6-8 घण्टें पहले पानी में भिगों दें।

शीशम

इमारती सामान बनाने के लिए सबसे मजबुत लकडियों में से एक है। इसे शुष्क व अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में छायादार वृक्ष के रूप में सड़कों के किनारे, सार्वजनिक स्थानों पर घरों में तथा खेतों के चारो तरफ लगाया जाता है, इसकी पत्तियाँ सभी पशु खाते है।

सिरस

तेज बढ़ने वाला वृक्ष है, छत्र बड़ा होने के कारण सड़कों के किनारे, सार्वजनिक स्थानों व खेत पर छायादार वृक्ष के रूप में लगाया जाता है। इसकी लकड़ी इमारती सामान बनाने के काम आती है। इससे प्रति पौधा 300-400 किलो हरी पत्तियाँ मिलती है, जिनमें करीब 20 प्रतिशत प्रोटीन होती है। इसकी पत्तियाँ सभी पशु खाते हैं।

अकेशिया एलबिडा

इसकी लकडी इमारती सामान बनाने के लिए उपयुक्त है। इसकी पत्तियाँ व फलियां सभी पशु खाते हैं। अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में कृषि-वानिकी व वानिकी-चरागाह के लिए उपयुक्त है। इससे प्रति पौधा 10-25 किलो पत्तियाँ मिलती है। इसके बीज को बोने से थोडी देर पहले पानी में भिगो दें।

एट्रीप्लेक्स झाडी

क्षारीय मृदाओं के लिए जहाँ 150-200 मि.मी. वर्षा होती है, एट्रीप्लेक्स की प्रजातियाँ सर्वोत्तम है। यह वर्षभर हरी रहती है। इसकी पत्तियाँ हरे चारे के रूप में काम आती है।

कुमट

कुमट मरू प्रदेश में पाया जाने वाला बहुउपयोगी वृक्ष है। इसकी फली व बीज को भोजन में सब्जी की तरह उपयोग किया जाता है। पत्ते चारे के काम में आते है और लकडी का उपयोग ईंधन व कृषियुक्त बहुमूल्य गोंद का महत्वपूर्ण स्त्रोत है। कुमट के पेड़ को खेत के चारो ओर बाड के रूप में लगाने से फसल की जानवरों से सुरक्षा होती है क्योंकि कुमट की शाखाएँ घनी एवं कॉटेंदार होती है।

जाल

इसका विस्तार भारत में पंजाब, गुजरात व पश्चमी राजस्थान और पाकिस्तान के सिन्ध-बलुस्चिस्तान तक है। यह बहुशाखीय सदाबहार छोटा पेड होता है। इसकी पत्तियों को ऊँट व बकरियाँ खाते है। इसके फल मई माह में पककर तैयार हो जाते है। फल गोलाकार होते है जिनका व्यास 5.6 मि.मी. होता है। फल चिकने व पकने पर भूरे लाल रंग के होते है जो स्वाद में मीठे होते है। स्थानीय लोगो की धारणा है कि पीलू खाने से शरीर में स्फूर्ति व शीतलता बनी रहती है तथा मस्तिष्क में ताजगी व ठंडक पहुंचती है। फलों के सेवन से लू का प्रभाव कम होता है।

पशुपालन व्यवसाय में जैव सुरक्षा की भूमिका एवं महत्व

स्वाति शिवानी, ऋतिका गुप्ता, मयंक गौतम, दिग्विजय सिंह, आकाश मिश्रा, खुशबू जैन एवं चन्द्र दत्त

भाकृअनुप - राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल-132001

किसी डेरी फार्म पर संक्रामक रोगो के होने से सिर्फ पशुओं की आबादी प्रभावित नही होती बल्कि राष्ट्रीय एवं अंतराष्ट्रीय अर्थव्यवस्था भी गंभीर रूप से प्रभावित होती है। पशुपालन व्यवस्था में डेरी पशुओं को स्वस्थ एवं विभिन्न संक्रामक रोगो से मुक्त रखना एक बहुत महत्वपूर्ण कार्य है। विभिन्न संक्रामक रोगो से बचाव के उपायों में जैव सुरक्षा के विभिन्न उपाय एकमात्र ऐसा तरीका है जिससे की रोग चक्र को तोड़ा जा सकता है एवं पशुओं को स्वस्थ एवं रोग मुक्त रखा जा सकता है। जैव सुरक्षा मे जैव ग्रीक शब्द वायोस से लिया गया है जिसका अर्थ है जीवन एवम् सुरक्षा का अर्थ है खतरा और जोखिम से मुक्ति। अतः संयुक्त शब्द जैव सुरक्षा का अर्थ विभिन्न संक्रामक जैविक कारकों जीवाणु, विषाणु, फफूँदी, परजीवी एवं अन्य रोग फेलाने वाले कारक से सुरक्षा।

जैव सुरक्षा पशु के जीवन एवं स्वास्थ्य, खाद्य सुरक्षा तथा पर्यावरण की तरफ बनाई गई एक सुनियोजित गतिविधि है। अतः जैव सुरक्षा किसी डेरी ईकाई के प्रदर्शन को बढाता है साथ ही पशुओं में होने वाले रोगों एवं चिकित्सा व्यय को कम करता है तथा पशु उत्पादन प्रणाली की गुणवता को उत्कृष्ट बनाता है।

पशुधन व्यवसाय एक तेजी से बढ़ता हुआ एवं स्वच्छता के प्रति अत्यंत जागरूक स्त्रोत है। वैश्विक पशुधन उद्योग मुख्य रूप से पशुओं के व्यवसायिक गतिविधि एवम् सघन पद्धती से पशुपालन व्यवसाय जहाँ अधिक संख्या में पशु एक साथ पाले जाते है एवं उनमें रोगो के होने तथा संक्रमण के फैलने की संभावना अधिक होती है, उनसे संबध रखता है। फार्म पर रहने वाले पशु बीमारी पैदा करने वाले जीवों की वृद्धि करने के अनुकूल माध्यम होते है। अतः स्वच्छ एवं साफ वातावरण पशुओं की जैव सुरक्षा के लिए अत्यंत आवश्यक है एवं किसी फार्म पर रोग के आने तथा मौजूद संक्रमण के प्रसार को रोकने का सस्ता एवं कारगर उपाय है।

जैव सुरक्षा की अवधारणा

किसी क्षेत्र में पशुजनित रोगों के अचानक प्रादुर्भाव से कम समय में अत्यधिक संख्या में पशु प्रभावित हो जाते हैं जिससे पशुपालकों को बडी आर्थिक हानी का सामना करना पडता है एवं ये संक्रमण पशुओं में अधिक रोग एवं मृत्यु दर के कारण होते है। अतः इस हानि को कम करने के लिए पशुओं में रोग के रोकथाम एवं बचाव के उपाय का पालन करना अत्यत जरूरी है। जिस प्रकार हम अपने आपको स्वच्छ एवं स्वस्थ रहने के लिए विभिन्न उपायों का पालन करते है ठीक उसी प्रकार पशुओं को स्वस्थ एवं रोग मुक्त रखने के लिए विभिन्न स्वास्थकर उपायों को अपनाना चाहिए। इसलिए किसी फार्म पर पशु रोग एवं संक्रमण को फैलने या रोकने के लिए जैव सुरक्षा सबसे आसान एवं प्रभावकारी साधन है।

जैव सुरक्षा का महत्व

1. डेरी संचालन के दौरान विभिन्न संक्रामक रोगो का समावेश डेरी व्यवसाय को गंभीर रूप से प्रभावित करता है, एवं इससे पशु व्यवसायिकों को आर्थिक नुकसान सहना पडता है। उदाहरणार्थ-भारत मे पशुओं में खूरपका एवं मुहँपका संक्रमण से प्रतिवर्ष लगभग 20,000 करोड़ रूपये की अर्थव्यवस्था का नुकसान होता है।
2. विभिन्न पशु उत्पादों में रोगाणुओं की मौजूदगी उसकी गुणवता को प्रभावित करते है जिससे बाजार में उत्पादों का मूल्य कम हो जाता है एवं अंतराष्ट्रीय बाजारों उत्पादों की मांग कम हो जाती है। उदाहरण-क्षय रोग(टी.बी.)

3. कुछ विषाणु (आई.बी.आर., बी. भी. डी.) विभिन्न प्रकार के एंटीबायोटिक एवम् टीका के लिए प्रतिरोधी होते है, अत: अतिरिक्त एंटीबायोटिक के उपायोग से पैसो की बर्बादी होती है एवं एंटीबायोटिक के अंश डेरी उत्पादों में आने लगते है।

4. अच्छी जन स्वास्थ्य व्यवस्था प्रदान करने में जैव सुरक्षा का अत्यत महत्वपूर्ण योगदान है कयोंकि कुछ पशु जनित रोग पशुओं से इंसानो में स्थानान्तरित हो जाते है। उदाहरणर्थ–ब्रुसेलोसिस, क्षय रोग, लेप्टोस्पाइरोसिस इत्यादि

5. जैव सुरक्षा के उपाय किसी पशु समुह के सिर्फ वर्तमान स्वास्थ्य स्थिति एवं उत्पादन क्षमता से संबध नही रखते बल्कि यह भविष्य में भी उनकें स्वास्थ्य स्थिति एवं उत्पादन क्षमता को प्रभावित करतें हैं।

भारत मे जैव सुरक्षा के विभिन्न आयाम

सामान्यत: भारत में जैव सुरक्षा के उपायों को राष्ट्रीय, राजकीय एवं फार्म स्तर पर पालन किया जाता है। सबसे बाह्यतम परत (जैव सुरक्षा कवच)और राष्ट्रीय जैव सुरक्षा अत्यधिक संक्रामक रोग (खुरपका, मुहँपका) के समावेश की रोकथाम के लिए महत्वपूर्ण है। राजकीय स्तर पर जैव सुरक्षा किसी विशेष राज्य या प्रदेशों में किसी विशिष्ट भौगोलिक क्षेत्र के अंदर पशु समूह के स्वास्थ को नियंत्रित करने के लिए होता है। यह नियंत्रण विभिन्न क्षेत्रों में पशुओं की गतिविधियों को सीमित करके पूरा किया जाता है। जब राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय जैव सुरक्षा उपाय विफल हो जाते है तो स्थानीय जैव सुरक्षा फार्म स्तर पर लागु किया जाता है , जिसमें किसी विशेष फार्म पर रोग एवं विभिन्न फार्मो के बीच रोग के स्थानातरंण को रोका जाता है। उदाहरणर्थ–थनैला रोग संक्रमण। अत: जैव सुरक्षा के विभिन्न आयाम की मजबूती हमारें देश के डेरी पशुओं के संपूर्ण स्वास्थय की स्थिति को निर्धारित करता है।

फार्म पर बीमारियों के विभिन्न स्त्रोत

किसी पशु फार्म पर रोगो के समावेश का कारण आने वाले आंगतुक, दुषित उपकरण, पशु ले जाने वाले वाहन, पशु चिकित्सक इत्यादि हो सकते हैं। इसके अलावा कृत्रिम गर्भाधन, प्रजनन योग्य पशुओं के पुन: स्थापन इत्यादि से भी संक्रमण स्थानान्तरित होते है। दूषित एवं अनुचित तरीके से साफ परिसर भी संक्रमण का प्रमुख श्रोत होता है। चुहा, जंगली पक्षी, हवा, पानी, प्रवासी पक्षी इत्यादि पशुओं में विभिन्न प्रकार के विषाणु जनित रोगों को फैलाने के लिए रोगवाहक का कार्य करते है। दूषित पानी, चारा एवं अनुचित तरीकें से नष्ट किया हुआ शव से भी संक्रमण फैलने की आंशका रहती है।

फार्म पर रोग संक्रमण को रोकने के लिए जैव सुरक्षा के उपाय

किसी फार्म पर रोग संक्रमण को रोकने के समावेशन तथा रोग के प्रसार को कम करने तथा प्रमुख रोगों के उन्मुलन हेतु अच्छी जैव सुरक्षा का पालन करना अत्यंत महत्वपूर्ण है। फार्म स्तर पर जैव सुरक्षा नियंत्रण कार्यक्रम के कुछ महत्वपूर्ण तथ्य निम्नलिखित है एवं प्रभावकारी रोग नियंत्रण एवं बचाव के लिए जैव सुरक्षा नियंत्रण का प्रत्येक कार्य विवेकपूर्ण एवं प्रभावकारी तरीके से निष्पादित करना चाहिए।

1. फार्म संबंधित

- फार्म ऐसी जगह पर स्थित होना चाहिए जहाँ आस–पास समान प्रजाति का कोई अन्य फार्म मौजूद नहीं हो, इससे फार्म पर रोग संक्रमण के समावेशन का खतरा कम रहता है।
- फार्म की आधारिक संरचना पूरी तरह से घेरा हुआ होना चाहिए एवं केवल एक मुख्य प्रवेश द्वारा होना चाहिए ताकि आंगुतकों एवं वाहनों का प्रवेश मुख्य द्वारा पर ही सीमित किया जा सकें।
- फार्म के अन्दर बिजली, पीने की पानी, उचित जल निकासी एवं अच्छी सड़क की सुविधा होनी चाहिए।
- बिना उचित जैव स्वच्छता उपाय के आगंतुकों एवं बाहर से आने वाले वाहनो का फार्म में प्रवेश वर्जित करना चाहिए।
- फार्म एवं उत्पादन क्षेत्र के मुख्य द्वार पर वाहनों, कपड़े,

पशुओं का टीकाकरण कार्यक्रम निम्नलिखित तरीकें से करवानी चाहिए।

क्रम सख्या	टीका	प्रारंभिक टीकाकरण	पुन: टीकाकरण
1.	खुरपका मुहँपका	6 से 8 सप्ताह की उम्र पर	प्रत्येक 6 महीने के अतंराल पर
2.	लंगडियां बुखार	6 महीना या अधिक उम्र पर	वार्षिक अंतराल पर
3.	एन्थ्रेक्स	6 महीना या अधिक उम्र पर	वार्षिक अंतराल पर
4.	ब्रुसेला	मादा पशु में 4-6 महीनें की उम्र पर	वार्षिक अंतराल पर

गोबर एवम् मूत्र रोगाणुओं की वृद्धि का अच्छा माध्यम होता है अत: इसका नियमित तरीके से निस्तारण अत्यंत आवश्यक है।

जुते, इत्यादि के विसंक्रमण की उचित व्यवस्था होनी चाहिए। फिनाइल आधारित मिश्रण फार्म पर विसंक्रमण का सस्ता एवम् अच्छा माध्यम है।

- फार्म के अंदर कोई फलदार वृक्ष नहीं होना चाहिए। फार्म के सभी प्रवेश द्वार पर पोटेशियम परमैंगनेट (1:1000) एवं फारमेलिन (5%) का घोल उपलब्ध कराना चाहिए।
- फार्म की रूपरेखा इस तरह से तैयार करना चाहिए कि विभिन्न जीव जैसे कि चमगादड़, चिड़िया, मक्खी, मच्छर एवं कीट फार्म के अंदर प्रवेश नही कर सकें। फार्म पर हानिकारक जैसे कि चूहे इत्यादि से बचाव के लिए प्रभावकारी नियंत्रण योजना होनी चाहिए। चूहो की संख्या को नियंत्रण करने के लिए पशुधन उत्पादन क्षेत्र के समीप गन्ना, शकरकंद, टेपीओका इत्यादि की खेती नहीं करनी चाहिए।

2. पशु संबधित

- उत्पादन क्षेत्र के अंदर फार्म के पशुओं के अलावा अन्य पशुओं का प्रवेश वर्जित रखना चाहिए।
- फार्म में विभिन्न कार्य एवम् गतिविधियों जैसे कि आंगतुकों के आगमन, प्रस्थान, आने का उद्देश्य, जानवरों का प्रर्दशन, अस्वस्थ पशुओं की संख्या, मृत पशुओं की संख्या उनकें कारण, पशुओं के उपचार इत्यादि का उचित एवं व्यापक रिकार्ड की व्यवस्था होनी चाहिए।

नए प्रतिस्थापित पशुओं को फार्म पर मौजूद पशुओं के साथ रखने से पहले कम से कम 4 सप्ताह के लिए अलग रखना चाहिए। जैव सुरक्षा निकटतम पशु ईकाई की दूरी के वर्गमूल का अनुपातिक होता है एवं अधिक दूरी अधिक सुरक्षा देती है।

3. रोग की रोकथाम एवम् नियंत्रण संबधित

- फार्म पर टीकाकरण एवं अन्य रोग के निरीक्षण का दस्तावेजिक कार्यक्रम का पालन करना चाहिए। विभिन्न प्रकार के संक्रमण को फैलने से रोकने के लिए समय पर रोग सर्वेक्षण कार्यक्रम करना चाहिए एवं पशुओं का टीकाकरण अवश्य करवाना चाहिए। पशुओं में खुरपका मुहँपका, सूकर ज्वर, सेप्टीसीमिया, लंगडी बुखार इत्यादि से बचाव के लिए प्रतिवर्ष टीकाकरण करवाना चाहिए। अंत: परजीवी से बचाव के लिए प्रत्येक 3 महीनें के अंतराल पर कृमिनाशक देना चाहिए, विशेष रूप से जब कृमि का संक्रमण प्रारंभिक अवस्था में हो। बाह्य परजीवी से बचाव के लिए 20% नियोसिडोल घोल का प्रयोग करना चाहिए एवं 15 दिन के बाद दुबारा प्रयोग करना चाहिए। परजीवी संक्रमण का पता करने के लिए समय समय पर पशु के गोबर की जाँच करानी चाहिए।

- कम से कम एक सप्ताह के अंतराल पर पशुचिकित्सक द्वारा फार्म के पशुओं का निरीक्षण अत्यंत महत्वपूर्ण है।
- मृत पशुओं का शव परीक्षण नियमित रूप से करना चाहिए ताकि मृत्यु का सही कारण पता किया जा सके।

4. पशु चारा से संबधित

- चारा भंडार परिसर की बनावट इस तरह की होनी चाहिए ताकि विभिन्न प्रकार के रोगवाहक कम से कम अंदर जा सके।
- फार्म पर पशुओं के चारा अनुमोदित गुणवत्ता नियंत्रण फीड से ही प्राप्त किया जाना चाहिए। विभिन्न वर्ग के पशुओं को उनकी आयु, उत्पादन अवस्था इत्यादि को ध्यान में रखकर उनकी जरूरत के हिसाब से संतुलित आहार देना चाहिए।
- पशुओं के चारा एवं पानी का नाँद प्रतिदिन अच्छी तरह से साफ करना चाहिए।

5. अपशिष्ट निस्तारण एवं सफाई संबधित

- गोबर, मूत्र एवं बिस्तर साम्रगी का निस्तारण वैज्ञानिक तरीके से वातावरण के अनुकूल करना चाहिए।
- गोबर एवं मूत्र रोगाणुओं की वृद्धि का अच्छा माध्यम होता है अत: इसका नियमित तरीके से निस्तारण अत्यंत आवश्यक है।
- विभिन्न प्रकार के रोग जैसे कि एन्थ्रेक्स आदि के संक्रमण को रोकने के लिए मृत पशुओं का निस्तारण उचित से दफनाकर या जलाकर करना चाहिए। मृत पशुओं के निस्तारण प्रबंधन में अत्यधिक सावधानी बर्तनी चाहिए।

6. कार्मिक संबधित

- फार्म पर काम करते समय कर्मचारी को रक्षात्मक कपड़े जैसे कि दस्ताना, नकाब, जूते, एप्रान इत्यादि का उपयोग करना चाहिए। फार्म पर आने वाले आगंतुकों को भी रक्षात्मक कपड़े उपलब्ध कराना चाहिए।
- अन्य जगहों (अपने घर) पर जानवर के संपर्क में आने वाले कर्मचारी को मुख्य फार्म करते समय जैव सुरक्षा के उपायों का यर्थाथ तरीकें से पालन करना चाहिए।

फार्म के कर्मचारियों को विभिन्न बीमारियों का पहचानने एवम् गंभीर बीमारियों की आंरभिक अवस्था में पहचान के लिए प्रशिक्षण देना चाहिए तकि फार्म पर रोग के संक्रमण को फैलने से रोका जा सके।

अत: संक्रामक एवं पशुजन्य रोगों के चक्र को तोड़ने के लिए जैव सुरक्षा अत्यंत महत्वपूर्ण उपाय है। जैव सुरक्षा एक सतत् प्रयास है एवं इसका पालन करना चाहिए। दुर्भाग्यवश, सभी एहतियाती उपायों का पालन करने के बाद भी फार्म पर बीमारियों का प्रकोप आता है, लेकिन यह स्पष्ट है कि जो लोग ज्यादा सावधानी बरतते है उनके पशु स्वस्थ रहतें है एवं रोग से लंबे समय तक मुक्त रहते है।

हिंदी भाषा के महत्त्व पर आत्ममंथन (कविता)

अक्सर मेरे दिमाग में यह ख्याल आता है कि,
राजभाषा हिन्दी को विधिवत् सम्मान, क्यों प्राप्त नहीं हो पाता है।।

अंग्रेजियत की चकाचौंध में एक पढ़ा-लिखा इंसान भी क्यों,
आधुनिक बनने की होड़ में अपनी मातृभाषा को भूल जाता है।।

थैंक-यू, बाय-बाय, गुड मॉर्निंग, हेलो-हाय के फेर में,
सुप्रभात, नमस्ते, चरण-स्पर्श, धन्यवाद कहने के संस्कार भूल जाता है।।

क्यों भूल जाते है हम कि हिन्दी जन संपर्क की सबसे मधुर भाषा है।
क्या नहीं यह दुनिया की बोली जाने वाली तीसरी सबसे बड़ी भाषा है।

हिन्दी भाषा को आपनाकर अपना उल्लू साध रहे उद्योग व विज्ञापन कंपनियां,
दोहरे मापदण्ड फिर भी हैं अपनाते, पता इसे बता छिपाते हैं अपनी कमियां।।

विज्ञापन व मार्केटिंग के जरिए छोटे गावों शहरों तक, उत्पादों को घर-घर पहुंचा रही है हिन्दी,
टेलीविजन की टीआरपी व सिनेमाघरों की सफलता, क्या तय नहीं करती है हिन्दी
कॉर्पोरेट-टेलीफॉन सेक्टर हो या दृश्य श्रव्य-प्रिंट मीडिया, सबका हित साधती है हिंदी,
इंटरनेट, सर्च इंजन, वेव पोर्टेल हो या अत्याधुनिक गेजेट्स, सबको समृद्ध करती है हिन्दी

हम नहीं चाहते कि अंग्रेजी या अन्य भाषा का अपमान हो,
पर हिन्दी ना बने दासी व केवल अंग्रेजी का ही गुणगान हो।
कम से कम इसे बोलने-लिखने में, महसूस ना अपमान हो,
राजभाषा को मिले विधिवत्त सम्मान, यही हमारा स्वाभिमान हो।
हमारी तो बस यही इच्छा है कि हिन्दी भाषा सर्वोपरि रहे,
इसकी उपलब्धियों व इतिहास का सर्वदा गुणगान हो।

राकेश कुमार कुशवाहा

राजभाषा खंड

राजभाषा कार्यकलाप

- संस्थान में गठित संस्थान राजभाषा कार्यान्वयन समिति की वर्ष में चार बैठकें प्रत्येक तिमाही में एक आयोजित की गई। इन बैठकों में राजभाषा कार्यान्वयन के क्षेत्र में संस्थान की प्रगति का आकलन किया जाता है एवं भावी कार्यक्रमों हेतु रूपरेखा तैयार कर उन्हें कार्यान्वित किया जाता है।
- संस्थान में विगत वर्षों की भांति इस वर्ष भी 14 सितम्बर से 29 अक्टूबर 2015 तक राजभाषा मास का आयोजन किया गया। हिन्दी चेतना मास का शुभारंभ दिनांक 14.09.2015 को किया गया। दिनांक 15/9/2015 को संस्थान के सभी वर्गों के कार्मिकों हेतु 'टिप्पण एव मसौदा लेखन' तथा दिनांक 24.09.2015 को संस्थान के वैज्ञानिकों, तकनीकी वर्ग के अधिकारियों एवं शोध-छात्रों हेतु 'शोधपत्र/पोस्टर प्रदर्शन प्रतियोगिता आयोजित की गई। इसके अतिरिक्त इस चेतना मास के दौरान नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति के सदस्य कार्यालयों हेतु दिनांक 01.10.2016 को गीत-गायन प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। इस कार्यक्रम में 16 कार्यालयों के 28 कर्मिकों ने भाग लिया। दिनांक 29.10.2015 को पुरस्कार वितरण समारोह आयोजित किया गया जिसमें सभी प्रतियोगिताओं के विजेताओं को प्रथम, द्वितीय, तृतीय एवं प्रोत्साहन नकद पुरस्कारों से पुरस्कृत किया गया।
- संस्थान के निदेशक महोदय जो कि नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति अध्यक्ष हैं, उनकी अध्यक्षता में इस समिति की पहली छःमाही बैठक दिनांक 24 जून, 2015 को एवं दूसरी छःमाही बैठक 18 नवम्बर, 2015 को संस्थान में आयोजित की गई। इन बैठकों में सस्थान की ओर से निदेशक महोदय, मुख्य प्रशासनिक अधिकारी, उपनिदेशक (राजभाषा) वरिष्ठ तकनीकी अधिकारी, ने भाग लिया। प्रत्येक कार्यालय में सरकारी काम-काज राजभाषा हिन्दी में करने के लिए विभिन्न बिन्दुओं पर चर्चा कर निर्णय लिए गए।
- नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति, करनाल द्वारा संस्थान में किए जा रहे नगर राजभाषा कार्यान्वयन संबंधी उल्लेखनीय कार्यकलापों हेतु वर्ष 2014-15 के लिए प्रथम पुरस्कार दिया गया।
- संस्थान के प्रशासनिक वर्ग के सहायकों एवं सहायक प्रशासनिक अधिकारियों के लिए दिनांक 19 सितम्बर, 2015 को राजभाषा प्रशासनिक कार्यशाला आयोजित की गई।
- संस्थान के वैज्ञानिकों से प्राप्त वैज्ञानिक एवं लोकप्रिय लेख, छात्रों के शोध सांरांश, वार्षिक प्रतिवेदन, प्रशासनिक पत्र/परिपत्र/ज्ञापन, गोपनिय प्रश्नपत्र, विभिन्न समारोहों की प्रेस रिपोर्ट, गणमान्य अतिथियों, मंत्रियों आदि के उद्बोधन, व्याख्यान एवं अनेक प्रकार का अनुवाद कार्य इस एकक द्वारा किया जाता है।
- गैर हिन्दी क्षेत्रों से अध्ययन हेतु आए एम.एस.सी./एम. टैक/पीएच.डी. के छात्र जिन्हें मैट्रिक स्तर तक हिंदी शिक्षण नहीं किया है का कार्य इस एकक के स्टाफ द्वारा करवाया जाता है।
- मूल रूप से हिंदी में टिप्पण एवं मसौदा लेखन प्रोत्साहन योजना के अन्तर्गत राजभाषा हिंदी में अपना कार्य करने वाले संस्थान के 11 कार्मिकों को पुरस्कृत किया गया।
- संस्थान के वैज्ञानिकों एवं तकनीकी अधिकारियों को मूल हिंदी वैज्ञानिक लेख लेखन हेतु प्रोत्साहित करने के लिए 48 वैज्ञानिकों एवं तकनीकी अधिकारियों को पुरस्कृत किया गया।

राजभाषा मुख्य समारोह एवं पुरस्कार वितरण 2015

भाकृअनुप – राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान

करनाल-132 001 (हरियाणा)